अंधी गांधारी के सपने

घनश्याम प्रसाद 'शलभ'

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

कृष्णा ब्रदर्स
महात्मा गाँधी मार्ग, अजमेर (राज.)

△

कॉपीराइट : शलभ

△

प्रथम संस्करण : 1985

△

आवरण
प्रकाश

△

मेहता फाईन आर्ट प्रेस
द्वारा मुद्रित

मूल्य : साठ रुपये मात्र

तुम्हारे पास,
हमारे पास
सिर्फ एक चीज है ।
ईमान का डंडा है,
बुद्धि का वल्लम है,
अभय की गेंती—
हृदय की तगारी है,
तसला है—
नए-नए बनाने के लिए
भवन—
आत्मा के, मनुष्य के !

—मुक्तिबोध

एक

वीणावादिनी वर दे"""""स्वरों की अनुगुंज से ऋता के हृदय की धड़कन थिरक उठी, लगा कि समय की धूल में धूसरित वह अतीत फिर उल्लास की आभा से मन के गहन अंधेरे की पिछवई पर यकायक चमक उठा है—कैसी प्रेरक ध्वनि है यह—उल्लास !"""""और ऋतुम्भरा क्षणभर के लिए जैसे *समाधि-लीन हो गयी। मन के अतल अंधेरे से न जाने कौन* फिर पुकार उठा"""""रति ! रति ! रति—क्या ? क्या सचमुच यह उल्लास की पुकार है—सजग होते हुए मन बोल उठा। उसके प्राण विकल हो उठे। प्रश्नों की सैकड़ों आलपिनों की तीखी चुभन से मन आहत हो गया। क्यों नहीं वह उसी के साथ उसी समय जेल चली गयी। उसने भी न जाने क्यों निषेध ही का संकेत दिया ?"""""जेल की इन नारकीय यातनाओं को सहने का साहस क्या उसमें नहीं है ? या"""""या वह उसे इस योग्य समझता ही नहीं"""""? वह सारा अतीत फिर आंखों में झिलमिला उठा।

सूखी-सी ठठरी है हड्डियों की"""""उल्लास है वह"""""मेरा उल्लास ! पाँच वर्षों की घोर यंत्रणाओं की जोंकों ने उसके रक्त की बूंद-बूंद चूस ली है, फिर भी कोई सुनवायी नहीं। क्रूरता का शासन अंधा होता ही है पर उस समाज को क्या कहियेगा जिसके दुखों की दहकती बलिवेदी पर उल्लास-से सैंकड़ों युवक अब तक अपने सिर चढ़ा चुके हैं ?

और उल्लास आज भी बिना किसी सुनवायी के—विचाराधीन अपराधी की उस काल कोठरी में सड़ रहा है"""सड़ ही रहा है, ऋतुम्भरा ! ये सुनहली चहकती-महकती ऋतुएँ, ये अठखेलियाँ करती सोहनजुहिया हवाएं, थरथराती लहरों पर नाचती ये सुनहरी किरणें"""""मेरे उल्लास के लिए

जैसे अव हैं ही नही ।"""""कोकिल—मन के इस उपवन की बोलो तो ?—बोलो न । क्या मेरा उल्लास एक भारतीय आत्मा भी नही है ? हिमकिरीटिनी इस माँ भारती की वंदना न जाने कितने गीतों मे उसने गायी है अव तक । अक्षर अक्षर की अनुगूंज उल्लास से भरी भरी—आज भी सैकड़ों युवा मनो को उल्लसित करती रहती है। न जाने कितने कारागारो में कितने उल्लास वदी है—यह कि ककालकाय हो गये हैं, पर आज भी उनकी आस्था की वह वसंती बयार अब भी मन पर छा रही है।—और उसने उन दो चार पत्रो को फिर खोलकर देखा, दृष्टि अक्षर अक्षर के अंतरग से मर्म को छू गयी। उसने फिर उन्हे सहेज कर रख दिया अपनी डायरी के अदर। उठी और अपने मटमैले खादी के झोले मे डाल दिया। पीछे मुड़ी ही थी कि आवाज आई—ऋतुम्भरा गुप्ता !'

दौडकर सीखचों के पास आ गयी। चीफ वार्डन बत्रा खडी हैं—हाथ में है एक सफेद कागज। पाँचेक जेल परिचारिकाएँ भी उत्सुकता से ऋता के चेहरे की ओर ताक रही हैं।

'कहिए।'—उसकी रूखी आवाज धीरे से गूंज गई। 'लो, यहाँ करो दस्तखत। कल ही छुट्टी तुम्हारी।'—और ऋता ने कागज सीखचों के अंदर खीच लिया। पढा तो चेहरा तमतमा उठा। अवज्ञा से मन भर गया। लौटाते हुए बोली—'मुझे क्षमा-वमा की जरूरत नही है, बत्राजी ! अपना यह फरमान अपने पास रखें। जीवन के जिन सकल्पो को हमने अब तक खून पसीने से सींचा है—क्या आप समझती हैं कि उन्हें इस सहजता से छोड़ देंगे ? यह भ्रम है, आपका नही आपके शासन का—जो इतना निर्मम और वेदर्द हो रहा है कि इसी पहाड़ जेल में हमारी माँ-बहिनों और वेटियों के साथ क्या-क्या नही हो रहा है अव ? बत्राजी ! आप भी तो महिला ही हैं, शायद माँ भी हों—और क्यों नही, मेरी माँ भी अगर जिन्दा होती तो आपकी ही हमउम्र होती' !—और एक सर्द उच्छ्वास वातावरण के मर्म को छू गयी।

'कितना घिनौना और अमानवीय जीवन जी रही हैं ये सब ! माना कि इनमें कुछ हत्यारिनें भी है। जघन्य अपराध भी किये हैं—लेकिन वेश्याओ से भी बदतर जिन्दगी जीती हुई इन आत्माओं को, जिन्दा ही प्रेतयोनियों में पहुँचा देना ही आपके इस कानून का नाम न्याय है क्या ?

'असहाय और अपाहिज-सी ये भारतीय नारियाँ कैसा नर्क जी रही है कि यदि माँ कस्तूरबा गांधी के इस देश का कोई प्रधान मंत्री कुछ दिनों के लिए ही सही, इस जेल मे—इन सीखचो का मेहमान बनकर रहता तो मालूम पड़ता। पर, उनके इर्दगिर्द तो हजार कानूनदाँ जो लगे हैं ""लेकिन बताओ न """इन अभागिनों का इस बंदीगृह के नर्क में कौन है, बत्राजी!'

'—सुन!'—बीच ही मे कड़कड़ाती आवाज थर्राई। 'छोकरी! मैं तुमसे कोई-तकरीर सुनने नहीं आई हूँ। यदि तुम इस क्षमादान पत्र पर दस्तखत नहीं करती हो तो लाओ इधर। कल फिर मजिस्ट्रेट के सामने हाजिर होना है तुम्हे। समझ लो सजा की कठोरता ऐसे लफ्फाजी हौसलों की बुलंदगियाँ कितनी ही बार पस्त कर चुकी है फिर तुम किस खेत की मूली हो? लाओ, इधर दो।'—वह कागज सीखचों के बाहर आते ही उसने झपट लिया। मन ही मन बड़बड़ाती मुड़ पड़ी तो वे सब लोग चल दी।

ऋता कुछ क्षण उन्हें इस तरह जाते हुए देखती रही, फिर लौटकर लकड़ी के तख्ते पर धम से आकर बैठ गयी। यातनाओं का फिर नया दौर शुरू होगा ही—यही वह सोच रही थी कि चार बंदीगृह आवासिनियाँ उसकी कोठरी की ओर आती हुई दिखाई दी। पीछे पीछे दो और महिलाए हाथो मे दो बड़ी—बाल्टियाँ उठाये चली आ रही हैं। आते ही सहायिका वार्डन ने ताले में ताली घुमाई और सीखचों का द्वार खुल पड़ा। साथ आई उन दो महिलाओ ने सड़े-गले मैले से भरी दोनों बाल्टियाँ उस कटे-फटे, सीलन भरे फर्श पर रख दी और सहायिका वार्डन की ओर देखा।

'देखती क्या हो, फैला दो न फर्श पर'—हिकारत भरी आवाज कड़कड़ाई। तत्काल बाल्टियाँ घिनौनी बूदार खनखनाहट के साथ फर्श पर बिखर गयी। खाली बाल्टियाँ लिये वे हाथ बाहर लौट आये तो ताली फिर खर्रर से घूम गयी। कोठरी में वह भयंकर और तेज बदबू घमघमा उठी और भीतर एक कुंभीपाक नर्क की भभकती दुर्वह दुर्गन्ध का संसार खुल पड़ा। ऋता का सिर चकरा गया। छाती उथला गयी। दो—चार जोरदार कै हुई, तो शरीर निढाल हो तख्ते की काली कम्बल पर फैल गया। बेहोश पुतलियाँ पथरा गयीं। मक्खियो के झुण्ड के झुण्ड इधर उधर भिनभिनाने लगे। तख्ता, कम्बल और ऋता का अचेत शरीर उनके आरामगाह बनने लगे। मैले से भरे-भरे वे हजारों पंख और और ऋता के गोरवर्ण, शकूरभरे

मुँह, कटीली कुमुद पांखों सी आँखों, सुघड़ नासिका के नथुनों आदि अंग-प्रत्यंग पर अपना अपना अधिकार जमाने के लिए भिनभिनाते हुए जैसे संघर्ष कर रहे हैं। वह गदराया वक्ष कभी कभार उसांस से भर उठता है तो वह बेहोश देह तभी करवट बदल लेती है। दुर्गन्ध कोठरी के सींखचों में अँट नहीं पा रही है। आसपास ही नहीं, दूर-दूर तक बंदी बैरके भी बेकल हो गया रही है। अन्य बंदिनियाँ चीखी-चिल्लाई भी, पर सुनता है कौन?

और इसी तरह न जाने कितने पल-क्षण ऋता की कलाई में बंधी घड़ी की सुइयों ने घूम-घूमकर गुजार दिये होंगे। तभी तो दोपहरी की जलती धूप की गर्माहट अब मद हो चली है, और इसी वक्त वही सहायिका वार्डन अपनी बंदी परिचारिकाओं के साथ आहिस्ता-आहिस्ता उधर लौटी। उसके पीछे दो बंदिनियां अपने सिर पर दो बड़े-बड़े मटके रखे हुए आ रही हैं। दो अन्यों के हाथों में झाड़ू भी है। शायद अब सफाई-सुलह का वक्त आ गया है। समीप आते ही एक बंदिनी ने जोर से पुकारा—'बहिनजी, उठो न! सांझ हो रही है और तुम हो कि अभी तक सो रही हो। कैसी अजीब औरत है यह।'—और वह सींखचों का द्वार हठात् खुल पड़ा। वार्डन बाहर ही खड़ी रही, नाक पर रूमाल रखे तमाशा देखती रही। अन्य महिलाएँ तुरन्त अन्दर घुस आई। झाड़ू की मूठ का एक हौदा ऋता की देह में लगा तो उसे कुछ चेत हुआ। हड़बड़ा कर उठ बैठी, देखा—नर्क की वे ही—क्रूर प्रहरिया हाथों में झाड़ू लिए जैसे अब सफाई में जुट रही हैं। बड़े-बड़े मटकों से बदबूदार पानी ढोला जा रहा है, और वे झाड़ुएँ, जगह-जगह टूटे-फूटे फर्श पर फैले मलबे को एक ओर इकट्ठा कर रही हैं। वह काल कोठरी और भी तीव्र बू से घमक उठी। ऋता की फटी-फटी सी दृष्टि, गन्दगी की सफाई के इस अभियान को कुछ देर तक यूं ही देखती रही। उसके मुँह से यकायक चीख निकल गयी, होंठ आक्रोश से थरथराकर रह गये, पर असहाय। धीरे से बोली—'क्या जरूरत थी इस सफाई की कि अब पानी की जगह पेशाब, से फर्श धोया जा रहा है, बहिनो!'—कि तभी अप्रत्याशित प्रहार हुआ—'चुप रह हरामजादी!' —और दो एक गालियाँ उछलकर उस वायुमण्डल को आन्दोलित कर गयी। वार्डन कह रही है—'तेरे यहाँ कोई खसम बैठे हैं जो गुलाबजल या केवड़े के पानी से तेरे इस रंगमहल के फर्श को धोते? यह तो अपना

भाग्य सराहो कि इतनी जल्दी सफाई हो रही है, कल ही बड़े साहब का इन्सपेक्शन जो है। नहीं तो महीनों इधर देखने की फुर्सत ही किसे थी ?'

और अब तक सारा मलबा पेशाब से धो-धोकर कोठरी के आगे बहती हुई नाली में ढकेल दिया गया। मटकियों का बचा हुआ पेशाब नाली के मलबे को आगे तक प्रवाहित करने के लिए ढुलका दिया गया, इसके साथ ही बड़े बड़े सीखचों का वह द्वार खटाक् से फिर बंद हो गया।

'अच्छा, बच्चूजी राम राम!'—वार्डन स्टाफ के साथ लौट पड़ी—। एक भावशून्य दृष्टि, निस्सहाय कुछ देर तक उन लौटते कदमों को देखती रही। धीरे धीरे उसके आगे, अंधेरे का सुरमई धुआँ उस सहमी हुई हवा पर तैरने लगा। एक अस्फुट शब्द अनायास निकल पड़ा—'अब ?' ऋता अब अपनी सम्पूर्ण चेतना से सजग थी। लग रहा है कि विविध यातनाओं का दुर्वह दौर फिर से शुरू होने वाला है। संभव है, इस बार और अधिक क्रूरताओं का शिकार होना पड़े। उसने उठकर अपने झोले में फिर कुछ टटोला तो आश्वस्त हो गयी। सब कुछ सहन कर लेगी वह, धैर्य और साहस की कमी कहाँ है यहाँ ? रिवॉल्वर की गोलियाँ, उसके लिए बच्चों की अंटियों का-सा खेल मात्र रहा है ' और ''' और अब फांसी ? ''' एक हल्की सी मुस्कराहट उसके होठों पर खेल गयी। अतीत फिर उभर उठा'''''' अपने विद्यार्थी जीवन का वह खेल! विस्मय से आँखें चमक उठीं। अनचाहा विवाह प्रेम में कैसे बदल सकता था भला ? बाबूजी का वह दुराग्रह, सीलिंग फेन पर झूलती हुई यह देह—कैसा था वह क्षण। इस जिन्दगी का सितारा तो अस्तप्रायः था ही। न जाने भैया कहाँ से किवाड़ तोड़ अंदर घुस आये।

और आज तो भैया भी नहीं रहे''''न ही मेरे पूज्य बाबूजी ही। उस खतरनाक रिस्क का फल फिर भी मीठा ही रहा—मेरा यह अक्षत प्रेम आज भी अक्षत है। ऋता की जमा पूंजी है—नहीं तो इस बेचारी दीवानगी के पास दौलत ही क्या है, अब ?

लेकिन तभी किसी विचार की हल्की-सी लहर से वह सिहर उठी। कैसे क्रूरकर्मी हैं ये लोग ? पूरे पिशाच हैं—नरपिशाच! और ये काल कोठरियां क्या हैं—व्यवस्थित वेश्यालय मात्र। तभी अचानक एक चेहरा उसके अन्तः करण की पिछवई पर चमक उठा—'ओह, सुचित्रा! ''' मेरी प्यारी और

अंतरंग सहेली ""सुचित्रासेन। कितनी बोल्ड है वह लड़की। बाप रे, गजब की बला है वह। तभी तो उल्लासदत्ता का ऐसा अमिट स्नेह मिला है उसे। सुन्दरता और शालीनता की प्रतिमूर्ति सुचित्रा इतनी खूंख्वार और जवांमर्द भी हो सकती है, तब उसके मासूम चेहरे से तो कभी न लगा हमें। लेकिन ""लेकिन उल्लास के उस एकछत्र प्यार की वह मलका। ओह! और उसके मन पर किसी अजाने कोने से ईर्ष्या की हल्की लहर छा गयी तो पलभर के लिए नेत्र अपने आप मुंद पड़े। वह छरहरी देह थरथरा गयी।—'छि.! कैसा अविचार है यह?'—उसने सजग होकर खद्दर के रूमाल से चेहरा पोंछ लिया। लगा कि उस गंदगी की बू में रूमाल भी गंधा रहा है। हकीकत है यह सब। कोई फैन्टेसी नहीं। यथार्थ तो हमेशा ही गंदा और घिनौना होता है, फिर कल्पना का सुगंधित स्पर्श उसे न जाने कितने सुन्दर आकार दे देकर महकाता है, और उसके स्वर्ण मृग बनते ही अपने राम का अन्तःकरण उसके पीछे पीछे दौड़ ही पड़ता है, फिर चाहे उसे अपनी प्रीति-प्रिया से हाथ ही क्यों न धोना पड़े?""लेकिन, यदि सुचित्रा की-सी स्थितियों का उसे भी सामना करना पड़ा तो""क्या क्या वह उसके लिए भी तैयार है?" वह अब उसकी सहेली नहीं, गुरु-स्थानीया है वह। उसका मार्गदर्शन ही अब उसका सम्बल है। यह कुंभीपाक नर्क है—क्या संभव नहीं है यहां? दो वर्ष से ऊपर हो चुके हैं सुने। अब अभ्यस्त हूं। 'कल मजिस्ट्रेट के सामने पेश होना है'—सुनते सुनते न जाने कितने कल बीत चुके हैं। शायद इसी तरह यह जिन्दगी भी बीत जाये, अन्डरट्रायल जो हैं हम। हमारे लिए हर तरह की यातनाएं जायज हैं—स्वाधीन देश के इस संविधान में?

और सुचित्रा को दी गयी वे अमानवीय वीभत्स यातनाएं। बाप रे! —उसके मन का समूचा धरातल हिलकर रह गया। गुप्तांगित यंत्रणा—कितना घृणित है यह सब। हरमिंदर कौर की वह साक्षी दृष्टि सब कुछ कह गयी थी। न जाने ऐसे कितने केसेज की मरहमपट्टी करती रही होगी वह मैट्रन। 'गिव द डॉग ए नेम एण्ड हैंग इट'—नक्सली औरत है न? नक्सली क्या हुई, पूरी चुड़ैल हुई। मारो उसे—मार दो। औरों को न लग जाये। कैसा अंधा नजरिया है आज की राजनीति के इस कानून का? मरियम-सी मासूम और शुचिता की प्रतिमूर्ति मेरी सुचित्रा अब न जाने कहां मौत की घड़ियां गिन रही होगी। कौन जाने।—और एक ठंडी निश्वास अपने आप

दुख से अभिभूत उस वक्ष से उफन कर निकल गयी।

कितनी करुण नियति है यह हमारी इस तथाकथित लोकतंत्रीय व्यवस्था से खेलने वालों की ? इतना मक्कार हो गया है यह तंत्र कि अपनी स्थितियों का हर चेहरा, भ्रष्टाचार के इस रुपहले दर्पण मे देखने को मजबूर है यह देश। यहाँ योग्यता, गुणगरिमा, कार्य-दक्षता, विश्वसनीयता और ईमानदारी—अब सब कुछ इसी दर्पण की चकाचौंध से चौंधिया गया है। जीवन का कौनसा क्षेत्र आज अछूता रह गया है, इससे ? क्या धर्म—क्या कला और क्या संस्कृति, विज्ञान और व्यवसाय शिक्षा और साहित्य—सभी इसी व्यवस्था की विकृति मे वरदान से ही जी रहे हैं, आज।—और खुद ही धीरे से ठहाका लगाती सव्यंग्य हँस पड़ी।

'पर, ऋतु, मजाक नहीं है इससे जूझना। अब इसकी पूरी गिरफ्त में हैं हम—हम ही क्या, समूचा यह देश भी। हमारे रक्त का यह तर्पण कभी तो रंग लायेगा ही'—तभी उसकी उदास दृष्टि उसी के 'सेल' की ओर चले आ रहे कुछ लोगों पर अटकी। पीछे, दूर एक लाइटपोस्ट पर लगा अकेला बल्ब अपनी सहमी हुई रोशन आँखों से यह सब देख रहा है। ऋता भी सजग हो गयी। पर, तख्त से उतरी नहीं—फर्श अब भी चिपचिपा हो रहा है। पेशाब की बू अब भी घमक रही है, सिर भारी भारी और पीड़ा से आहत। मन का गमगीन अंधेरा अब बाहर के अंधकार से एकाकार हो जाना चाहता है।

'लो, वे आ गये'—मा अहसास होते ही वह तनकर बैठ गई नये जुल्मों के दौर से गुजरने के लिए। दिन भर की भूखी-प्यासी दृष्टि ने एक बार अपने चारो ओर देखा, फिर निगाह दरवाजे की ओर उठी तो देखा कि वे लोग तो अन्दर ही आ रहे है। किसी ने बाहर से पुकारा—'ऋतुम्भरा ! उठो, चलो ! तुम्हे यहाँ सडांध और बू महसूस हो रही है न, आओ तुम्हें नये 'सेल' मे ले चलते है'—और बिना किसी इन्तजार के, पास ही खड़ी एक काली नारी मूर्ति ने उसके दाहिने हाथ में हथकड़ी डाल, लौह शृंखला हौले से खीच ली। ऋता के सामने इस वक्त और कोई चारा ही नहीं था। दाहिने कंधे पर अपना इकलौता झोला डाला, और उस बूदार तख्ते से उठ खड़ी हुई। बंदिनी के साथ वे सभी बाहर आ गये।

इस वक्त तो अंधेरे का सैलाब सभी ओर लहरा रहा है। दूर दूर पर इक्के-दुक्के बिजली के लट्टू टिमटिमाते हुए, उस जुल्म के दरिया मे प्रकाश स्तम्भो की तरह लग रहे हैं—जहाँ तहाँ काल-कोठरियो में यातनाओं के अनेक आइसवर्ग छिपे हुए जो हैं इस अंधकार के सागर में। अब तक न जाने कितनी जिन्दगियों की नौकाएँ, इनसे टकरा-टकरा कर मृत्यु के अंधे जल मे डूब चुकी हैं।'—ऋता का थकाहारा मन यही कुछ सोच रहा था कि धीमी गति से बढते हुए वे कदम अचानक एक लाइटपोस्ट से कुछ दूर आकर, एक बडी-सी पिंजरेनुमा कोठरी के पास रुक गये। ऋता भी सजग हो गयी। सीखचों के पार दृष्टि दौड़ गयी—अरे, इसमें तो पहले से ही कोई है। द्वार खुला तो लौह शृंखला पकडने वाले हाथों ने, अपने पीछे ऋता को खींचते हुए कहा—'बस, अब कुछ दिन तुम्हें यहीं रहना है। तुम्हारे जैसा साथी ही तुमसे मिला दिया है। जाओ, अब आराम करो उस दूसरे तख्ते पर।'—और हथकड़ी खोल दी गयी। इतनी देर तक दूसरी नारी बंदिनी अपने सिर के बाल नोंचती रही थी, हठात उठ खडी हुई और लपककर ऋता से बलपूर्वक चिपट गयी। उसकी केशराशि नोचने लगी और देखते ही देखते उसकी देह को झकझोरते हुए, पाच सात जगह काट लिया। ऋता चीखती चिल्लाती रही, पर उसने उसे छोड़ा ही नहीं। लोग खटाक से दरवाजा बद कर बाहर आ, कुछ देर यह तमाशा सींखचों से देखते रहे। जब तक ऋता धड़ाम से पीड़ाहत फर्श पर गिर न गयी। उसके यूं गिरते ही वह पागल कटखनी बदिनी चीखती चिल्लाती अपने स्थान पर आ बैठ गयी, पहले की भाँति उलझे-उलझे बालो मे अगुलियाँ उलझाने लगी। उसकी वह झल्लाहट देर तक जारी रही, पर किसी ने उसकी परवाह नहीं की। वार्डन अपने बंदी कर्मचारियों के साथ आवास को लौट गयी।

और धीरे धीरे आक्रोश की चीखती वह आवाज अंधेरे के सैलाब मे डूबती चली गयी। हलचल के वे सभी आवर्त सुनसान अंधेरे में बदल गये। अधकार अधिकाधिक गहराता चला गया। समय के उन ठंडे हाथो ने फर्श पर गिरी उस देह को, छूते हुए जब कुछ सहलाया तो ऋता को कुछ चेत हुआ। धीमे से कहराती हुई वह उठ बैठी, झोला सम्हाला, उठकर अपने तख्ते के पास आई और सिमटी हुई कम्बल फैला दी। सिरहाने झोला रखकर भयभीत निगाह से उस दुष्टा पागल संगिनी की ओर देखने लगी। मन

भयभीत कबूतरी-सी अपनी देह समेटे हुए थी कि कही फिर लपक कर वह उसे भींच न ले। 'कैसी क्रूर और कटखनी बन गयी है'—सोचते हुए उसने अपने वक्ष, कपोल, गर्दन और बाहों पर लगे जख्मो को सहमी निगाह से देखा—जगह जगह रक्त जैसे अब भी रिस रहा है। दर्द के मारे देह अब भी थरथरा रही है। दृष्टि बार बार आतंकित हो उस कटखनी बंदिनी की ओर उठती थी। पीड़ा और आतंक का यह अंधेरा जैसे दिनोदिन बढ़ रहा है, बढ़ता ही चला जायेगा—पर एक दिन तो सदा के लिए इससे मुक्त होना ही है ऋतु! लेकिन तब तक इस व्यवस्था की इन भयंकर असगतियो, अत्याचारों और अन्यायो के प्रति इन प्राणों की यह विद्रोही मशाल भी सदैव जलती ही रहेगी।--और विचारो के भंवर-जाल में मन डूबने-उतराने लगा—'यदि उस रोज मैं अपनी उन हजारों मा और बहिनो द्वारा आसमान छूती इस मंहगाई, सामूहिक बलात्कार और शोषण, दहेज के उत्पीड़न और हत्याओ के खिलाफ प्रदर्शन न करवाती तो प्रशासन की आंखें खुलती ही कब? बोट क्लब किसी की बपौती तो नहीं कि लोग अपने इन्किलाबी जज्बात जाहिर करने के लिए इकट्ठे ही न हो। संसद भवन जनता का है तो जनता अपना दर्द उसे सुनायेगी ही।

—और ऋता? जुल्म सहने की भी एक हद होती है, ऐसे में किसी को कैसे रोका जा सकता है। क्या आज के ये प्रशासक चौराचोरी के वे दिन इतनी जल्दी ही भूल गये?""पर, यहां तो मेरे उस इन्सपेक्टर पर चार पांच डंडे ही तो पड़े थे—वह भी तब जबकि हमारी अनेक मा बहिनों के शरीर पुलिस के क्रूर डंडो की चोटो से अपने जख्मों से खून बहा रहे थे—यह सब अब चल नही सकता इस जमाने में।—और विचार-ततु यकायक टूट गया, देखा—वह पगली अपने ही सिर के बाल अब बुरी तरह नोंच रही है। लो, अब तो सिर भी पीटने लगी। अरे, अरे, उसे रोके कौन—पछाड़ें जो खा रही है धरती पर। कही मर नही जाये यह—नही तो एक और संगीन इल्जाम मुझ पर लग जायेगा। कितना चीख-चीख कर रो रही है यह। चारों ओर अंधेरो से घिरे घिरे बैरक दूर दूर है। पुकारें तो किसे?—और उस समय तो लगता था कि वह पगलाया रुदन-कुहराम थम ही नहीं रहा है। लेकिन पगली पछाड़ें खा-खाकर आहत हो, अब थक गयी है, और रुदन का वह करुण विलाप धीरे धीरे सिसकियो में बदल रहा है। सिसकियां भी हिचकिचाती मद पड़ रही है। ऋता की सहमी दृष्टि भयभीत और कातर

मी यह सब देख रही है। बीस पच्चीस मिनटों के इस हादसे ने ऋता के रिसते जख्मों पर जैसे कोई शीतल मरहम-सी लगा दी। मन अब पगली के प्रति करुणा से भर गया। पगली अब सीलन भरे उस ठंडे फर्श पर मचलती रोती किसी अबोध बालिका की तरह सो गयी है. बाल बिखरे है, वस्त्र अस्त-व्यस्त।

ऋता ने साहस बटोरा, उठकर उसके समीप आई, गौर से देखा तो आंखें नम हो आयी। सोचा—कितनी पीड़ित है यह, कितनी लाचार!.... न जाने किन अपराधों की सजा है यह जिन्दगी? उसने झुककर धीरे से उसके ललाट को छू लिया—अरे, गर्म तवे की तरह तप रहा है यह। ताप है इसे। उसने फिर साहस किया और फर्श पर बिखरी उस निढाल देह को बाहों में भर, उसके तख्ते पर ला, लिटा दिया। वह फिर अपने तख्ते के पास लौट आई और अपना कम्बल उठा लिया। जाकर धीरे से उस पीड़ाहत निंदियारी देह को ओढ़ा दिया, तब राहत की सांस आई।

—चलो, अब रात ठीक से गुजर जायेगी—और उसने अपनी साड़ी के आंचल से अपने वक्ष को ढका तो स्वयं पीड़ा से सिहर उठी। पर, तुरन्त ही फिर आश्वस्त हो गई। अब उसकी मानसिक चेतना इस ज्वराक्रान्त, सुषुप्त पगली की पहेली से उलझती चली गयी—कौन है यह नारी? आत्मपीड़ा भोग रही है इस तरह। 'सेडेस्टिक है यह—कोई गहरा आघात खायी हुई आत्मा। सुतना पहन रखा है, कुरता भी। शायद मुसलमान है!' विचार आते ही वह मन ही मन लज्जित हो गयी।—ऋतु! नारी तो नारी है—न हिन्दू—न मुसलमान है वह। वह तो एक इन्सान ही है, फिर उसे कोई फरिश्ता ही क्यों न समझे? न वह देवी ही है कि कोई उसकी पूजा ही किया करे—यह सब मनुष्य की भावना बकवास मात्र है। मनुष्य इसी उच्छ्वास में बहक जाता है, फिर उसका खामियाजा बेचारी नारी को उठाना है न? लेकिन दूसरों की इन भावनाओं का दंड वह क्यों भुगते?

और फिर 'धर्म' और ईमान के नाम पर इन आनमानी मजहबों के दंगों के ये लोलुप गिद्ध इस नारी का जिस्म ही सबसे पहले नोच खाते है। बलात्कारों के उन लाखों हादसों के भीषण आघात, इस समय की छाती पर कितने गहरे लगे हुए हैं कि इन्सानियत के भविष्य का सिर भी शर्म से झुक जाता है। ईसा और गांधी की यह दुनिया आज न्याय और व्यवस्था के नाम

पर, इस नारी के साथ जो खिलवाड़ कर रही है—उसका जीता जागता सलीब, मेरी दृष्टि के सामने तख्ते पर पड़ा पड़ा गर्म तवे की तरह तप रहा है। भला, ऐसे सलीबों को कौन उठा सकता है अब ? —नफरत, हिकारत और बदनसीबी का 'क्रूस' जो है यह ?

और भावावेश से उसका वक्ष फिर उफन पड़ा तो पीड़ा की हल्की-सी सिहरन उसकी समूची देह मे दौड़ गयी।

तभी कही जेल गार्ड ने टन टन कर दो के टकारे बजाये। रात्रि के सन्नाटे की उनीदी हवा की परतो पर तैरती ध्वनि अधसोयी ऋता के कानो के परदों से धीरे से आ टकराई तो पलकें उघड़ पड़ीं। देखा—कुछ ही दूर वही पीड़ित सहवासिनी कम्बल पैरो से परे धकेल रही है। एक धीमी चीत्कार और फिर निढाल हो गयी। आकाश के पछाते कोने से चाँद का प्रकाश न जाने कब से इधर झाँक झाँककर अब दूर चूडीगरो की उस मस्जिद की कुतुब सी लम्बी दो मीनारों के बीच से होकर गुजर रहा होगा, तभी कफन सी सफेद चाँदनी दूर दूर तक फैल गयी है और दुनिया की मजार बड़े मजे से इसके नीचे पसरी हुई है। प्रकाश के दो बड़े सुहावने धब्बे मासूम खरगोश से—उचक कर बैरक के सीखचो मे घुस आये है। ऋता भी उठ बैठी, चलकर सीखचों के पास आ गयी, खड़ी खड़ी दूर दूर तक निगाह दौड़ाती रही। ऊँची नीची पहाड़ियों की सर्पाकार श्रेणियों की चोटियाँ उस बर्फ सी चाँदनी मे आस पास खड़ी, एक दूसरे को पुलकित निहार रही है। आज तो यह जड़ता भी कैसी सजीव, उन्मुक्त और आकर्षक लग रही है—और मन को कल्पना के सुरगी पंख मिल गये तो लौह-सीखचो के जड़ बंधन जैसे टूट टूट कर बिखरने लगे। ऋता मुहूर्त भर के लिए अपनी त्रासद स्थिति भूल गयी। तन्मय—भावों में डूबी डूबी सलाखो को थामे बुत बनी खड़ी है—कि उसकी पीठ सहलाता किसी हाथ का सुखद स्पर्श हुआ तो चौक कर पीछे मुड पडी। दृष्टि स्तब्ध, वाणी निर्वाक ! दो बांहों ने फैलकर उसकी देह को अपने मे बाँध लिया और बड़ी बेताबी से वे दो प्यासे अधर ऋता के कपोलों को देर तक चूमते ही रहे।

कैसा सुखद है यह आश्चर्य। ताप से तपती पसीना-पसीना होती देह, अब अपनी सहबंदिनी ऋता को इस तरह चूम रही है। आँखो के आँसू थम ही नहीं रहे। ऋता का रोम रोम स्नेह से भीग उठा। उसकी बाँहों ने स्वत:

फैलकर उस बिसूरती प्यार भरी देह को हौले से आलिंगन में जकड़ लिया। कुछ देर तक ऐसी ही स्नेह भीनी स्थिति मे दोनों ही पड़ी झूमती सी रहीं और उनके पैरों के तलुवे, उस दूधिया चाँदनी के वे दो धब्बे देर तक सहलाते रहे। तभी ऋता उसे अपने तख्ते पर ले आयी, बैठाते हुए स्नेह मे चूम लिया। दो क्षण का मीठा मौन। तभी फिर एक सिसकी—और मौन टूट गया। उत्तापित वदिनी ऋता के पैरों पर झुक आयी तो आँखों से आँसू फिर झर झर बरस पड़े। ऋता ने बढ़कर फिर उसे बाँह में भर लिया—'बहिन!' एक शब्द हौले से गूंज गया। ताप से उत्तप्त कपोल चूमते हुए बोली—'ऐसी कातर न बनो, बहिन! ...... तुम्हारे मन की गहरी पीड़ा की थाह तो मैं नही पा सकती, पर, उसने मेरे अन्तरतम को छू-छूकर आहत कर दिया है। मनोविज्ञान की छात्रा रही हूँ, पर, कचोटती पीड़ा मनुष्य को कहाँ तक पगला देती है, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति आज ही मुझे हुई है।' सुनते ही वह सहबदिनी फिर फफक उठी। ऋता ने तुरत खींचकर छाती से लगा लिया—इस बिसूरती करुणा के आँसुओं का यह पावन गंगाजल! ओह, कौन कहता है कि—'मोहि न नारि नारि के रूपा?'

और उसे अब महसूस होने लगा कि सत्य के सदर्भ भी कितने विचित्र हो सकते हैं।

भावावेग का वह ज्वार जब कुछ थमा तो सहबदिनी जो अब तक अपना तपता सिर ऋता के कधों पर टिकाये थी, आश्वस्त मन धीरे से बोली—'बहन मेरी, इस दुनिया मे हमारी जिन्दगी तो बोझिल और बेकार हो गयी है—बडी ही जालिम है यह दुनिया कि जिन्दा गोश्त की खरीद-फरोख्त ही नही करती, उसे छीन-झपटकर, नोंच-नोंच कर खा जाना चाहती है...... और ......और ·· अब तो मुझे फरीश्ता सा दीखने वाला हर इन्सान आदमखोर ही नजर आता है। जी चाहता है कि ऐसे इन्सान को कच्चा ही चबा जायें। पर, पर दहकते हुए इन जबडों मे वह ताकत ही कहाँ रही है अब?'—और निराशा से निढाल हो सिर ऋता के कंधों पर फिर झुक आया तो उसने प्रेमभरी एक थपकी उसके दाहिने कपोल पर देते हुए कहा—'इस तरह टूटकर बिखर जाने से कही यह जिन्दगी जी जा सकती है? ......विश्वास करो, तुम्हारे साथ अब मैं भी हूँ, हम दो है अब...... इन जुल्म-ज्यादतियों का मुकाबला मिलकर करेंगी। तुम तो मुझे बताओ

कि इस नारकीय गड्ढे में तुम्हें किसने ढकेल दिया है ?'—तो सहबंदिनी अब कुछ सीधा तनकर बैठ गयी। अपने रूखे बालो की लट दाहिनी आँख से ऊपर हटाती हुई, वह गहरी निगाह से देखती हुई बोली – 'यह न पूछो बहन, बहुत ही घिनौनी है मेरी यह हकीकत। सुनकर नफरत न हो जायेगी ?' —और एक सर्द आह मुँह से निकल गयी।

'नहीं, नहीं—ऐसा कभी सोचना भी मत। मैं आँचरा के दूध और आँखों के पानी की बहुत इज्जत करती हूं, बहिन ! लेकिन नारी अबला होकर इस तरह इस मक्कार दुनिया में कब तक जिन्दा रह सकेगी ? हमें दिन दिन बिगड़ते इन हालातों का सामना करना ही पड़ेगा। बदनसीबी की यह गुलामी क्या हमारे ही पल्ले पड़ी रहेगी, आखिर कब तक चलेगा यह सब ? ·· सुनूँ तो कि वह कौन गोश्तखोर था जिसने मेरी इस फूल-सी बहिन को इस नर्क में ढकेल, इस तरह बेजार कर दिया है ! सुनाओ न भई !'—स्नेह भरी एक मनुहार ऋता की आँखो में झाँक उठी। हमदर्दी के इन मीठे बोलों का जादू उस नारी मन पर अब पूरी तरह छा गया है। सहबंदिनी की दृष्टि भीगी भीगी—नीचे झुक आई। पैर के अंगूठे से फर्श कुरेदते हुए धीरे से बोली – 'बहन। तुम्हारी यह फूलजहाँ अपने उस महबूब की मुहब्बत के सुनहले साये में कभी जीनी हुई चैन की बशी बजाती रही थी लेकिन ·· लेकिन एक रात मेरे बदनसीब की उस अंधी आंधी ने मेरे सारे जन्नत को, देखते ही देखते बिखेर दिया, और मुझे यहाँ धकेल दिया। मैं उस दिन लाख रोया-झींकी, उसके पैरों पर गिरकर घटों तक गिड़गिड़ाती रही, पर, उस संगदिल महबूब ने मेरी एक न सुनी। वह बूढी अम्मा लम्बे लम्बे हाथ फैला, ताने देकर उसे सान पर चढाती रही—चढ़ाती ही रही और और मैं एक दिन उस घर से दूध की मक्खी की तरह निकाल कर, हमेशा के लिए इन्सानी शक्ल के इन गोश्तखोर कुत्तों के सामने फेंक दी गयी।' ·- कहते कहते आवेश से उसका शरीर काँप काँप गया। छाती उसाँस से भर उठी। आँखे फिर डबडबा आई। क्षणभर का विराम—दोनों दृष्टियाँ एक दूसरे को क्षण भर तकती ही रही।

'फिर ?—मेरी फूल सी बानो फिर ?'—उस ज्वराक्रांत देह को बाँहों में भरते हुए जिज्ञासा से बोल उठी, 'कहो न, भई फिर ?'

'वह रात—मेरे उस महकते गुलशन की आखिरी रात— कितनी हैरत अंगेज थी बहन कि यह जुबां बयां ही नहीं कर सकती। जुम्मे की रात, सिनेमा का सैकेन्ड शो खत्म हुआ तो मैं और मेरे शौहर आपेरा हाउस के उस हॉल से बाहर निकल आये। 'पाकीजा' की शोहरत सुनी थी और मीना को देखने के लिए दिल मचल उठा था। मुझे क्या मालूम कि आज की यह रात ऐसी कहर बरपाने वाली है? ठंडा मौसम। भीड़ भाड़ देखते ही देखते छँट गयी। सिविल लाइन्स का लम्बा रास्ता और वह सड़क धीरे धीरे और अधिक सुनसान होती गई कि इतने में पीछे से गरगराहट करता एक स्कूटर रिक्शा पास ही आकर रुक गया।' ... और वे भयातुर आँखें फटी फटी-सी क्षणभर उसकी ओर तकती रही हैं। आवाज मौन और काँपी-सी। ऋता का मन हठात उन भारतीय रंगाओं और बिल्लाओं की विभीषिका से तत्क्षण जैसे आतंकित हो उठा, तो एक हल्की सी हृत्कम्प देह में लहराती दौड़ गयी।

'हूँ, तो यह बात हुई। तुम्हारे शौहर ने रिक्शे पर चढ़ने से मना नहीं किया?'

'—वे तो अल्लाह की गाय हैं, बहन! मेरी जिद पर 'पाकीजा' दिखाने ले आये थे। 'पैदल ही चले चलते हैं'—कहते हुए वे टालते ही रहे, पर उस वक्त पत्थर तो मेरी ही अक्ल पर पड़े थे न—सोचा, 'एक रुपये में घर पहुँचना बुरा नहीं है—और हम दोनों के बैठते ही स्कूटर अंधेरे को उस हवा से बातें करने लगा। महबूब क्लब के उस मोड़ पर टॉर्च का प्रकाश हुआ तो स्कूटर गर्रर करते रुक गया, मेरे शौहर को बरबस स्कूटर से घसीट कर नीचे उतार लिया—पाँच जने जो उस छतनार गुलमोहर की आड़ में खड़े थे, लपककर आ गये। कितना ही संघर्ष किया उन्होंने, पर, कहाँ पाँच और कहाँ अकेले वे। ......और बहन उस रोज के बिछुड़े हम लोग तो बिछुड़ते ही चले गये ... .. और वे जिन्दा गोश्तखोर कटखने कुत्ते सरक्यूलर रोड के उस घने अंधेरे में रात भर मुझे नोच-नोचकर खाते ही रहे......और मुझ बेजान को न जाने कब वे किले के उस मैदान के कोने में डालकर चले गये।'

'हूँ'—आश्चर्य से विस्फारित वे आँखें अंदर की आग से दहक उठीं। 'हरामजादे कहीं के!— आज की व्यवस्था के फरिश्ते हैं ये! पुलिस और प्रशासन के चहेते!'

'तब ऐसे बिल्ला-रंगाम्रो को कौन अदालत फांसी देना चाहेगी ?'

'बात तो वाकई ऐसी ही है, बहन !' ...... और उनका बाल तक बांका नहीं हुआ लेकिन मैं दूध की मक्खी की तरह, उस घर से निकाल कर फेंक दी गयी जो मेरी तमाम जिन्दगी का आशियाना था। उन शातिरों को सजा दिलवाने की मैंने भरसक कोशिश की। पुलिस और आवाम के रहबरों से गिडगिड़ाती मिन्नतें कीं, पर बहिन ! मुझे किसने बक्षा, किसने रहम की मुझ पर ? यकीन करो मुझ पर, जिस जिस से भी मिली, उसी ने लूट लिया बहन ! ....कचहरी में खड़ी हुई तो आज के कानून ने मेरी खिल्लियां उड़ाने में कोई कोर कसर ही नहीं रक्खी। जैसे उसकी निगाह मे मुजरिम बदमाश नहीं, मैं ही हूं। जहां इन्साफ ही यह समझता हो कि औरत जात आदतन बदचलन होती है, उसकी 'ना' तो 'हां' ही है—उस देश मे यह लुटी-पिटी और पगलाई हुई आज तक इस दोजख की आतिश मे जल जलकर जी रही हूं' —और ताप से दहकता वह सिर ऋता के कंधे पर गिर निढाल हो गया तो रहमत के लबों ने उसे अनायास ही झुक कर चूम लिया।

'तुम अब बेफिक्र रहो, बहन। अब जो भी गुजरेगा, हम हिम्मत के साथ सब झेल लेंगे। बुखार तप रहा है तुम्हें, यहीं सो लो अब। घबराने की कोई जरूरत ही नहीं—और ऋता ने उसे अपने तख्ते पर ही लिटा दिया, ऊपर से कम्बल फैला दी और उसी के समीप लेट रही। पर नींद अब आंखों से उड़ चुकी थी। उसके वक्ष, कपोलो और बाहों पर दंत क्षत अब भी हरिया रहे है—दर्द और दर्द का अहसास ! लेकिन वही कटखनी अब उसी की बगल मे कितनी निश्चित होकर सो रही है। न जाने कितने दिनों के सुलगते विद्रोह ने आज इस तरह ऋता-सी निहत्थी को अपना शिकार बना लिया। अब उसे भी लग रहा है कि देह का ताप बढ़ रहा है, अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ रहे हैं। क्या बुखार है—उसने हथेली अपने बाये आहत कपोल पर रक्खी। सचमुच ताप हो आया है, अब ? वह तुरंत उठ बैठी, सामने वाले तख्ते पर पड़ा कम्बल उठा लाई और फूलजहां के बगल मे फिर लेट गयी। कम्बल देह पर खींच ली। शीत की हल्की-हल्की लहरों मे कंपकंपी छूट रही है—कि दूर से आती हुई किसी की पदचाप अब सेल के बहुत समीप आई जान पड़ी। शायद कोई आया है, पर इस वक्त कौन ? ... होगा कोई गश्त पर—सोचता उसका वक्ष उसांस से भर गया, तो उसने मुंह पर से कम्बल

तत्काल हटा दिया। तभी 'सेल' के लौह कपाट मे ताली खर्रर से घूम गई, दरवाजा खुलते ही छाया-सा कोई अदर ही घुस आया।—'फूलो, अरी ओ फूलो!'—किसी दबी जबान ने द्वार के समीप से ही पुकारा। उसने फिर पुकारा तो ऋता का दिल भी धड़कने लगा, पर वह लेटी ही रही। वह छाया अब कुछ हिली-डुली और तख्ते के समीप आ पहुँची। फिर वही धीमी ध्वनि—'फूलो, अरी ओ फूलो!'

खड़े हुए महुवे की महक से वायु मण्डल भभक-सा उठा।

लेकिन तख्ते पर तब भी कोई हलचल नही। ऋता दिल थामे चुपचाप लेटी रही, न हिली, न डुली। छाया की उस बेताबी ने हठात् उसका कम्बल झटक दिया तो वह तमतमाती खड़ी हो गयी—'कौन, कौन हो तुम, बोलो?'

'नही जानती, हरामजादी! मैं कौन हूँ—तेरा यार!'—और उस पुरुष छाया की लपलपाती नशीली बाहो ने अपनो नागपाश उसकी देह पर फेंकी कि उसने तुरंत पैंतरा पलटा, प्रचडवेग से मूत्राशय पर पदप्रहार हुआ। 'हाय मर गया'—की चीख के साथ धम से नीचे बैठ गया। सारा नशा ही काफूर हो गया। दो क्षण धीरे धीरे कराहता ही रहा। अप्रत्याशित आघात से हतप्रभ फिर कुछ बोल ही नही सका।

'भग बे कुत्ते! नही तो जान ही निकाल लूंगी।'—और ज्योंही उसने पैर उठाया कि घबराहट के साथ कराहता वह 'सेल' से तुरत बाहर हो गया। थोड़ी दूर तो अपने को घिसटता रहा, पर फिर उठकर धीमे पैरों चलते चलते अन्य बैरको की ओट हो गया। ऋता यह सब देख ही रही थी कि पास ही लेटी बदिनी ने पीड़ा भरी सीत्कार के साथ करवट ली। फिर धीरे से उठ बैठी—'कौन था, दीदी?'

'पता नही, कौन कुत्ता था।""बक रहा था—तेरा यार हूँ।' 'ओह, दीदी! न जाने अब क्या होने वाला है? कई महीनो से यह हरामी जल्लाद मेरा जिस्म नोचता रहा है, 'आज भी इसी इरादे से आया होगा वह शैतान। पता नही, क्या होगा अब?'—एक भयभीत आवाज गूंजकर वायु-मण्डल में डूब गयी। 'बेफिक्र रहो, बहन। मैं जो तुम्हारे पास हूँ, अब। कोई लम्पट नजर तुम्हे छू तक नही सकती। सो जाओ तुम।' 'लेकिन दीदी, वह दीवान बहुत ही जालिम है, इसीलिए अपने अफसरों के मुंह लगा हुआ है।

मैं ही नहीं, और कई औरतें हैं यहां जो इस दोजख की आग को प्राय· हर क्षण निगलती रहती है '' फिर भी हाड़ मांस की इन जिंदा लोथो मे ये प्राण अब तक क्यों अटके हुए है '' दीदी, वह जरूर अब अपने यार-दोस्तो को लिये लौट ही रहा होगा ' और '''और अब हमारी शामत आ ही रही है न'— और भयभीत खरगोश की तरह अपनी आखें मीच लीं।

'इतना न डरो, बहन ! हम लोग कोई कुर्बानी के बकरे नहीं हैं कि इतनी आसानी से जिबह हो जायेंगे। फिर भी मौत का दिन तो तय है ही, तो डरने की क्या बात है, अब ? जब तक मैं जिन्दा हूं, कोई नापाक अगुली तुम्हें छू ही नहीं सकती। तुम तो सो जाओ न, अब कहर ढहेगा तो मुझ पर ही। और वह टहलती हुई सीखचों के दरवाजे तक आई, लेकिन उसे बंद नहीं किया, जैसे किसी प्रतीक्षा में ठहरी हो। मन भावी आपदाओं की कल्पना से कुछ आतंकित अवश्य हुआ, लेकिन अन्दर के अडिग और गहरे निश्चय ने तनकर सिर उठाया तो वह फिर आश्वस्त हो गयी।

और तभी टन टन टन टन करते चार के टकोरे दूर किसी गिरजे की मीनार से गूंज उठे। ध्वनि की प्रतिध्वनियां उन ठंडी ठंडी दिशाओं मे वर्तुलाकार हो क्षण भर के लिए फैलती चली गयीं।

ऋता कुछ और देर तक अपनी बैठक में धीरे धीरे टहलती रही, कान चौकन्ने थे, मन पूरी तरह सजग। लेकिन अंत में फिर आकर तख्ते पर बैठ गयी। उन निंदियाती-पलकों के नीचे माया त्यागी के उस जघन्य दाह से जैसे मन में कहीं छिपा वह आतंक भी जब सोने लगा तो सारी पीड़ाएं भूल वह देह फूलजहाँ के उस बीमार जिस्म की छाया में, न जाने कब पसर गयी कि उसे पता ही न रहा।

दो

शोरगुल भरा सवेरा—अरे, बैरक नं. 21 रात भर कैसे खुला रहा ? गश्त पर कौन था, किस किस की ड्यूटी थी कल रात, और दरवाजा खोला तो किसने खोला ? 'की' बोर्ड से चाबियां किसने चुराई'''' '' और पहरे पर कौन था उस वक्त ?

अनेक प्रश्न फुसफुसाते जेल कर्मचारी डिप्टी साहबा के साथ एक समूह के रूप में आ पहुँचे। तभी किसी ने कहा—आज तो आई. जी. साहब का दौरा भी इधर ही है'—तो डिप्टी सहिबा ने तुरंत मुड़कर सशक निगाह से उस ओर देख भर लिया। फिर सभी कुछ मौन। लेकिन डिप्टी के ओठ फुसफुसाये—'हाँ' आज ही राउन्ड पर हैं—मल्होत्रा साहब तशरीफ लायेंगे।' 'और साथ की जमादारिन को इशारा किया—'उठाओ उन्हें, दोनों एक साथ सिमिट कर कैसे सो रही हैं?'

जमादारिन दो तीन अन्य महिलाओं के साथ बैरक में घुस आई और उन्हें बुरी तरह झिंझोड़ दिया। हकबकाकर दोनों ही उठ बैठी। फूलजहाँ का शरीर अब भी बुखार से टूट रहा है, हल्की हल्की कपकंपी कभी कभार छूटती है। उसने तुरंत अपने चारों ओर कम्बल लपेट ली। ऋता का त्रस्त मन और दंतक्षतों से निपीड़ित देह - दोनों हो तो रुग्ण हैं। अपनी साड़ी के पल्ले को विक्षत वक्ष पर खींचते वह उठ बैठी—देखा, डिप्टी साहिबा अपने जेल कर्मचारियों के साथ उसी के समीप खड़ी है।

'रात कैसी कटी, ऋतम्भरा? यह बैरक तो अच्छा लगा न तुम्हें?'—व्यंग्य के विषबुझे शब्द उस अधेड़ मुँह से तीखे बाणों की तरह छूट पड़े।

लेकिन ऋता बोली नहीं, उस क्रूरता की मूर्ति को उपेक्षाभरी नजर से देख भर लिया। तभी उसने उसके कंधे धीरे से थपथपाते हुए कहा—'तूने इस कटखनी से दोस्ती कैसे करली? ""लेकिन, भई! मजा तो तुझे भी गयी रात खूब ही आया था न! खून के ये दाग तेरे गालों और कपड़ों पर अब भी चमक रहे हैं, कल ही की कहानी कह रहे हैं बच्चूजी!'—और तालियाँ बजाती खिलखिलाकर हँस पड़ी। चारों ओर खड़े लोगों के उस समूह की निगाहें भी मजाक से भर उठीं। किसी ने तभी ताना मारा—'हुकूमत पर हाथ उठाने की हिमाकत की सजा तो अब मिलेगी। वर्षों तक 'अन्डर ट्रायल' सड़ती रहोगी न, तब छठी का दूध याद आयेगा। तुम जैसी पढ़ी लिखी कई लौंडियाँ वर्षों तक सड़ती रही हैं, यहाँ।"""""अजी, यह सरचढ़ा हौसला थोड़े ही दिनों का है—इस निगोड़ी को सीधी करना तो हम जानते हैं।'—पास ही खड़े दीवान ने ओठ काटते हुए बैटन घुमाया।

'अरी, उस रिटायर्ड सैशन्स जज की वह सरकश लड़की—क्या नाम है—सुमित्रा? अब तुम्हीं अपनी इन आँखों से देखोगी तो तुम्हारी उस चहेती को

पहचान भी न पाओगी ।'—डिप्टी की मुस्कराती हँसी किलक उठी। 'यहाँ तो समर्पण करो या फिर मरो कुत्ते की मौत ! इसके सिवाय कोई चारा ही नहीं । कितनी वेवकूफ और जिद्दी है वह लड़की—बाप तक की प्रार्थना ठुकरा दी। बेल पर छूटेंगे नहीं, तो फिर मरो न ? यहाँ कौन किसकी परवाह करता है ?'—आँखों की पुतलियाँ नाच उठीं ।

'...... और अब, उस क्षत-विक्षत जिन्दा जिस्म की आवश्यकता ही किसे है ? इन नक्सली लौंडियों की खाल मे तो भुस भरकर ही रखना चाहिए'—पीछे मुड़ अर्दली से बोली 'फूलबानो को तो बुखार है, उसे डिस्पेंसरी दिखानी ही है लेकिन आज इन बहनजी को भी मरहम पट्टी के लिए ले जाना होगा। नौ बजे ठीक 'अम्बुलेंस' आ जायेगी। आई.जी. दोपहर तक ही आ पायेंगे—और देखो, 'रिसेप्शन रूम' की सफाई आदि ठीक तरह से की जाये। अधीक्षक कक्ष, कार्यालय—सारा इन्तजाम 'अप टू दि मार्क' होना चाहिये, समझे ? चलो, अभी से लग जाओ अपने अपने कामों पर !' —हाथ का भाला देती हुई डिप्टी अपने ऑफिस की ओर चल दी, तो दूसरे लोग भी तुरत अपने कामों पर मधुमक्खियों की तरह जुट पड़े। ऋतुम्भरा विचारमग्न सी क्षण भर यह तमाशा देखती रही—सुचिया !—इस वक्त यह जिक्र—क्या कारण हो सकता है, इसका ?—सुचि तो इस्पाती है, फिर भी औरत तो है ही—माखन सा मन, दूध सा जोवन—क्या वह सब अब नही रहा ? मेरी सुचि तो सुलगती संवेदना की प्रदीप्त लपट है'...... आलोक-वर्णी सुचि कभी क्षत-विक्षत भी हो सकती है—मैं नहीं सोच सकती, नहीं, नहीं हो सकती वह !—अज्ञात भावातिरेक से पलकें अपने आप झिप गईं, तो मुट्ठियाँ भी तन गयी, होठ फड़फड़ा उठे। न जाने क्यों, लपक कर तभी उसने पास ही खड़ी फूलजहाँ को अपनी बाँहों में कसकर जकड़ लिया—'मेरी सुचि ! मेरी रानी !'—वही भावावेश देर तक उसे पगलाये रहा।

बैठक साफ करती जमादारिन के हाथ रुक गये, मुँह में साड़ी का पल्लू ठूँसे हँसती आँखें यह दृश्य कुछ क्षणों तक देखती ही रह गयी।

'पागल हैं दोनों ही'—और अंदर ही अंदर मुस्कराता हुआ वह नारी मन फिर बाहर आंगन बुहारने लग गया। आश्चर्य और उपेक्षा की वह दृष्टि, झाड़ू से उठती हुई धूल से धूसरित हो फैल गयी। बैठक की सफाई के

साथ ही जमादारिन बाहर निकल आई। महिला गार्ड ने तुरंत फिर बाहर ताला ठोक दिया।

तीन

'बैरक नं. 21 का ताला रात में किसने खोला?'—की कागजी तहकीकात शुरू हुई, उसी के साथ उस सहायिका वार्डन की परेशानियां भी शुरू हो गयी। क्योंकि केले की परत दर परत की तरह रहस्य से छिलके उतरते चले गये लेकिन 'वही ढाक के तीन पात' जैसी स्थिति फिर हो गयी, और हर छिलका सत्य का आभास देता हुआ उतरता ही रहा—'किसने खोला, क्यों खोला और कब खोला'—जैसी बातें धीरे धीरे साफ होने लगी थी, पर इस सबके पीछे है कौन?—इस अहम बात को लोग जानते हुए भी अनजान ही बनते रहे। दुर्भाग्य से यह फाइल जेल विभाग में नयी नयी नियुक्ति पर आये डी. वाई. एस. पी. की नजरों से जब गुजरी तो उसे दर-गुजर करते हुए उन्होंने दफ्तर के 'कोल्डस्टोरेज' मे डाल ही दिया था, किन्तु एक रात सन्नाटे को झनझनाती फोन की घंटी ने तुरंत ही उस मिसल को महत्वपूर्ण बना कर फिर से उनकी टेबुल पर ला पटका।

तो यह बात है—शिकारी के तीर का निशाना फूलवानो नहीं, वरन ऋतुम्भरा है। ऋतुम्भरा! "कल तक उसी की 'अल्मामेटर' में पढ़ती रही थी वह छोकरी। —और अपराध जगत से कीलित उस रक्त में भी एक उबाल आ ही गया।

ऋता यूनीवर्सिटी की सामान्य छात्रा तो कभी नहीं रही—और इसी भाव-लहर के साथ धीरे-धीरे वे सभी चित्र—भूले बिसरे से फिर उसकी स्मृति की पिछवई पर उभरने लगे। और ऋता का वह भावपूर्ण छाया चित्र भी अधिक गरिमापूर्ण और आकर्षक हो उभर उठा। मुहूर्त भर मे उसका मन किसी संकल्प से भर गया, वह तत्काल अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हो गया। 'पी' कैप सिर से उतार टेबुल पर थप से पटक दी। बैटन उठा काख में दबा लिया और धीरे धीरे अपने चैम्बर ही में टहलने लगा।

""डॉ. श्ररुण मित्रा की 'रिंग' यदि सही है तो वह वही लड़की है जो कभी विश्वविद्यालय छात्र यूनियन की कल्चरल सेक्रेट्री रही थी, जिसके निर्देशन में 'मिस्टर अभिमन्यु' का बड़ा ही प्रभावशाली मंचन सभागार मे उस वक्त हुआ था—'मिस्टर अभिमन्यु'—ठीक है—उल्लास ही 'राजन' था, और—उस दिन सुचित्रा सेन शायद मिसेज राजन के रूप मे, रगमच पर खरी ही उतरी थी। कितना विचारोत्तेजक और प्रभावशाली था वह मंचन ?""रियली शी इज जीनियस ! आई रिकलेक्ट इट परफेक्टली वेल !

और""और आज वही 'गर्ल' हमारे अपराध जगत के इस पिंजरे मे बंद है, जेल का पंछी है वह ! कैसा कटु सत्य है यह। और राजन एस आयंगर कुछ क्षणो के लिए उस अतीत के धुंधलके मे जैसे खो गये। चहलकदमी करते वे कदम रुक गये—मिस्टर अभिमन्यु""" राजन और राजन एस. आयंगर—विचारतन्तुओं का एक महीन जाल, मन की वह मकड़ी जैसे बुनने मे व्यस्त हो गयी तो मिस्टर राजन अपने अन्तरतम मे झाँकने का आनन्द लेने लगे। आई. पी. एस. अधिकारी के व्यक्तित्व का लबादा ओढे उन्हें केवल पाँच वर्ष ही तो हुए है। 'फेंस' के इस पार आने मे कोई लम्बी अवधि भी नही गुजरी है। 'फेंस' के उस पार के दृश्य कभी कभार वैसे भी उनके मन की पिछवई पर उभरते ही रहे हैं। लेकिन रात्रि के इस सन्नाटे की 'रिंग' ने किसी घिनौनी वास्तविकता को सामने लाकर, अभी अभी खडा कर ही दिया। विचारों में डूबते-उतराते रहे""" यूनियन का वह उद्घाटन समारोह और जयप्रकाशजी की सदारत। कितना प्रेरणास्पद दृश्य था वह। 'वन्देमातरम्' की वह सुरीली झंकृति फिर मन के तारों को छु गयी। ऋता के वे सुरीले स्वर उस अतीत की सुदूर घाटियों में गूंज-गूंजकर मि. आयंगर की भावलहरी से टकराते रहे। मंत्रमुग्ध—उस मन की आँखें, यूनियन के उस उद्घाटन समारोह को जैसे फिर अपने सामने ही देख रही है। लगा कि"" जयप्रकाश 'सत्ता और संस्कृति' पर अभी अभी बोलकर तालियो की भारी गड़गड़ाहट के बीच, फिर अध्यक्ष की कुर्सी पर आ विराजे हैं—युवजन के लिए उनका वह ओजस्वी आवाहन मन को फिर तरोताजा कर गया तो मि. आयंगर चुपचाप फिर अपनी कुर्सी पर लौट आये। देखा, वही फाइल अब भी उनकी टेबुल पर पसरी हुई है। 'पी' कैप हाथ में उठा ली, अनमने भाव से अपनी दाहिनी हथेली से उसे सहलाने लगे।

'तो यह बात है'—मन ही मन दुहराते हुए सामने की दीवार पर कुछ क्षण एकटक भाव से देखते ही रहे; समय के 'पेंडुलम' की टिकटिक के साथ आँखो में गड़ती यथार्थ की दो सुइयाँ धीरे धीरे सरकती जा रही हैं। उन्होंने तुरत किसी निश्चय के भाव से सिर हिलाया, सामने पड़ी फाइल उठाकर फिर पन्ने पलटने लगे।

'गुलजार !""" शैतान की आंत है, वह। है अदना अर्दली ही, पर एम. पी. साहब के मुँह जो लगा है। अपने को किसी डी वाई. एस. पी. से तो कम समझता ही नहो। क्यों न समझे भई, गृहमंत्री का दूर के रिश्ते में 'साला' जो है ? 'बेचारा एस. पी. मेरे सामने क्या है, जी ?'—यही भाव उसके उस रोबीले चेहरे पर सदा तैरता रहा है, अब तक। और पहले""तीन वर्ष पहले यदि मैं कह देता कि गुलजारसिंह इन बूटों को पालिश से अभी चमका दो, तो वह तुरंत उस काम मे कैसा जुट जाता ?—चींटियों के पंख ऐसे ही तो निकलते हैं !'—और आँखें नवमें पृष्ठ पर अंकित एक नाम पर जा टिकी—वे मन ही मन मुस्करा उठे।

'खण्डहर बोलते हैं कि इमारत बुलंद थी' - अस्फुट ध्वनि होठों से फूट पड़ी। वीमन, वाइन एण्ड वैल्थ—स्पुतनिकों की इस सभ्यता का सबसे बड़ा केन्द्र बिन्दु अब भी यही वास्तविकता नहीं है क्या ? बग्गाजी सुदर्शनीय क्यों न रही होंगी-नाम ही सुदेश जो है। कभी आई. जी. साहब के मन पर चढ़ बैठी। कमाल की है औरत, इसीलिए तो आज इतनी बड़ी जेल की चीफ वार्डन हैं। यह अपराध शाखा के इतने बड़े ऑफिसर की चहेती अब करेले की तरह नीम क्यों न चढ़ेगी ? गर्म लहू के घिनौने अपराधों के रसायन से अपने मन को कितना 'स्टैरेलाइज्ड' कर लिया है कि जैसे इस क्रूर मन में पहले भी संवेदना जैसी कोई भावदीप्ति कभी रही न होगी। पर चेहरा है कि चाँदनी सा सदैव मुस्कराता रहता है, चाहे फिर वह चाँदनी कफनिया ही क्यों न हो। अपने अधिकारियों के सामने तो वाणी से फूल ही झरते रहते हैं, नारी जो है तो नजाकत-नफासत भी पूरी है।

लेकिन आज की ये जेलें अशोक वाटिकाएँ नहीं है, जहाँ सीता सी नारियाँ, तिनके की ओट से रावण जैसे महाबली को भी ललकार सकें ? ये जेलें तो कई गुलजार सिंहों से गुलजार हो रही हैं, आज। काँटे से ही काँटा

निकलता है तो अपराध से ही अपराध कबूलवाये जा सकते हैं—यही है आदर्श वाक्य इन जेलों का।

'और कोई कुछ करे भी तो क्या, आयंगर?' विचारों ने हल्के से फिर पलटा खाया। आज की इस वैज्ञानिक सभ्यता में अपराध इतने अधिक और विविध रूपों में रूपान्तरित हो गये हैं कि वे भी अब विज्ञान का एक अंग बन गये हैं। 'अपराध विज्ञान' आज की सबसे बड़ी हकीकत है। ईसा के सलीब से लेकर गांधी के वक्ष को वेधनेवाली गोलियों तक का सीमांत अब सीमांत कहाँ रहा? लगता है कि वह दिनोंदिन दुर्जेय होता चला जा रहा है। ग्रेनवॉश के कितने ही यातनागृह खोलते रहें आप—पर इस सबका अंत कहाँ है? कहीं दिखाई देता है, आज?—और वे विस्फारित नेत्र वक्त की टिक-टिक करती उन सुइयों की तरफ कुछ देर ताकते ही रहे—खैर जी, अभी तो मुझे इस फाइल से निबटना है। अपराध कितने ही विराट विस्तार से क्यों न बढ़ जायें, मानवीय संवेदना और विवेक का महत्व कब कम हो पायेगा? मुझे इन्हीं के उजास में इस 'केस' को परखना है, अब। अभी मानव मन का यह 'तत्व' मरा कहाँ है?""और विज्ञान तो कहता ही है कि 'तत्व' कभी मरता ही नहीं, विविध प्रक्रियाओं से गुजरते हुए भी जीवित ही रहता है'—और विश्वास फिर लौट आया तो मन आश्वस्त हो गया। अंगुलियों ने स्वतः ही वह पृष्ठ पलट दिया।

'की बोर्ड' के पहरेदार के बयान को पूरी तसल्ली के साथ उन आँखों ने पढ़ लिया—मिसेज बत्रा के आदेश का पालन गुलजार ने उस रात भी किया था, जैसे यह भी उसकी ड्यूटी में ही शुमार हो। बत्राजी के इन तौर तरीकों ने न जाने ऐसे कितने अक्षत यौवन—कुसुमों को अब तक मसल कर रख दिया होगा—इस कल्पना ने एक अनबूझ उत्तेजना मन में भर दी। यह तो मोटिवलैस मैलिग्निटी—अकारण घृणा तो नहीं है इन यौवन-कुसुमों के प्रति? नहीं-नहीं—इयागो और 'लेडी मैकवेथ' इस संसार में—सभवामि युगे-युगे की तरह सदैव जनमते रहते है। बत्रा के मन की घृणा अकारण कदापि नहीं हो सकती; इसकी जड़ें तो इन्हीं के मानसिक चरित्र में विद्यमान जो हैं?

और 'अनाघ्र कुसुम' होता ही क्या है जी! और हम पुलिस वाले

इसे कबसे मानने लगे ?— उस रोज, स्वाधीनता दिवस की 'टी' पर आँखें नचाते हुई जिस वाणी के किलकते ऐसे स्वर फूटे थे, क्या वे सब अविश्वसनीय है ? न जाने वे अब तक किन-किन को ऐसे उपहारों से उपहृत कर चुकी हैं — यह रहस्य कोई रहस्य भी रह पाया है, अब तक ?

कितना उज्ज्वल पक्ष है यह, इस भारतीय नारी का ? और सुचित्रासेन को दी गयी अनुभीषण यातनाओं की सारी कथा आँसू-धुली फिल्म की भाँति आयगर के मानस पटल पर चमक उठी। उत्तेजना से समूची देह सिहर उठी, दांत भिंच से गये। लेकिन-लेकिन वह निस्सहाय विवशता हाथ मल कर ही रह गयी क्या कर सकता था, मैं ? ट्रेनिंग पीरियड जो चल रहा था उस वक्त। डी. वाई एस. पी. के ये स्टार अपनी वर्दी पर कब चमक पाये थे ? उस गुजरे वक्त का गुजरा केस मात्र है यह सब। साँप तो निकल ही गया न रुचि उस मेडिकल इन्स्टीट्यूट की जैसे कोई 'एग्ज़िबिट' मात्र बनकर रह गयी है, अब। अस्थिशेष और मरणासन्न। पता नहीं वह दीपक कब बुझ जाये—अच्छा हो, जल्दी बुझे तो मुक्ति हो। और वह उल्लास ?—कितना 'कॉम्प्लीकेटेड केस' बन चुका है। यह कहो कि बेचारा इस तरह बना दिया गया है। अण्डर ट्रायल है, और वह भी वर्षों से!—मन गमगीन हो गया। चेहरे पर उदासी की झाँई उतर आई। क्षण भर सोच की गहराई में उतर गया। तभी ध्यान आया कि कहीं कोई आशा की किरण अंधकार की इस तलहटी में अब भी मौजूद है।

कल ही तो उच्च न्यायालय की एक सदस्यी उस बेंच ने इस तरह के विचाराधीन कैदियों की मुक्ति का निर्णय दिया है न ? सच—दिया तो है, पर हमारी इस सरकार को भी क्या मान्य होगा यह ? सर्वोच्च न्यायालय में अपील न होगी ? लगता तो यही है। नक्सली के लेबल लगे, ये सिरफिरे युवक सरकार के लिए आज क्या-क्या नहीं हैं—क्रूर हत्यारे, भयंकर डाकू और घिनौने असामाजिक हैं—लोकतंत्र के इस भव्य, दिव्य और राजसी लाक्षागृह में आग न लगा देंगे, ये ? इस राजनीति की कुन्ती के ये वरदपुत्र राजनेता भी कुछ कम नहीं हैं—पाण्डव जो हैं, इसी में निवास कर रहे हैं, अब जन-जन की इस विशाल भीड़ से भारी भरकम इन महानगरीय जंगलों में, लोकतंत्र के ये अनेक छोटे-छोटे लाक्षागृह कितने शानदार लग रहे हैं; क्यों नहीं, हम जैसे अनेक प्रहरी—जो उनकी रक्षा कर रहे हैं, अब तक ?— 'कीप

अप द स्वार्ड लेस्ट द ड्यूज रस्ट देम! सावधान, ओ सरकशों के सरगनो ! तुम्हारी जरा सी भी बेजा हरकत तुम्हारी ही मौत का पैगाम होगी।

और ट्यूबलाइट के उस दूधिया प्रकाश मे अभिनय की वह मुद्रा अट्टहास करती गूंज उठी।

ट्रन-ट्रन की ध्वनि। दाहिने हाथ ने लपककर चोंगा उठा लिया। हलो, कौन ? अच्छा, अच्छा आप हैं! कहिये मेरे लिए क्या खिदमत है?.......... इस वक्त ऐसी कृपा.......... हाँ, हाँ,—वह फाइल मेरे सामने ला पटकी गयी है...... और कुछ क्षणो तक वह उधर मे आती हुई ध्वनि को सुनता रहा।......क्यूं नही, क्यूं नहीं ? आदेश है तो कुछ करना ही पड़ेगा। हाँ...... आँ......क्या कहा ? हाँ, कोई सुन्दर-सी सौन चिरैया......नयी नवोढा .... हैं हैं हैं ... यह तो कृपा आपकी है ही........ऐसी कृपा किस पर नही रही है, अब तक ? .... हैं है है, देखिये गुलजार तो गुलजार है ही .... बड़े लम्बे हाथ हैं, उसके - उसे किसका डर ?.........डर तो हम जैसे लोगों को ही हो सकता है ...... हाँ, हाँ मैंने भी सुन रक्खा है ...... बहनोई ? हाँ जी, क्यों नही होंगे। ठीक है, गुलजार तब खुद निबटने मे सक्षम है ही ... आप ? ... आपका क्या है इसमें ...... अच्छा, अच्छा, समझता हूँ...... 'इन्वाल्व' करेगा वह...... स्वाभाविक है (हँसते हुए)...... जरायम-पेशा लोग जो हैं हम ?

क्या कहा ?...... हाँ हाँ, सरकार खुद 'मोरल' डाउन कर रही है, हमारा ?...... हाँ जी, जिन्दा तो उसे हमारे बल पर ही ......हाँ आँ यह तो है ही ! तू डाल-डाल मैं पात-पात ...... ठीक है, निश्चित रहिये मेरी ओर से तो ...... बत्राजी ! क्या बात कर रही है, आप ?...... हम आयंगरो की धातु अभी इतनी मिश्रित नही हो पाई है कि ऐसे आकर्षणों की आग में गल जायें ? (सव्यंग्य हँसता है) हाँ जी, क्या करें, ऐसा ही........क्षमा कीजिएगा अब ...... अभी 'राउण्ड' पर निकलना है'—खट से चोंगा टेलीफोन पर रख दिया गया।

बहुत ही गुन-गेन्दी हुई है, कमबख्त?— और बैटन हाथ मे उठा लिया, चेयर छोड़ चैम्बर मे बाहर निकल आया। सघन अंधकार का डरावना यह संसार अपने विराट रूप मे सर्वत्र पसरा हुआ है।

'क्या किया जाये ? अब ' कुछ तो करना ही होगा, ऋता की मुक्ति के लिए। भाड़ में जाय गुलजार और उसकी वह सुदेश बत्रा। हमारी यह नौकरी तो गुलामी का पेशा है ही। फिर भी हमे 'गार्डन रीच' जैसे हादसों से गुजरना पड़ता है। वसु ही नही, और मुख्यमंत्री भी तो यही करवा रहे हैं, इसीलिए तो ये पलुवा यूनियनों के कुत्ते उनके सामने ही आज हमे गालियां तक देते हैं "लेकिन, इन सबका परिणाम अब अनुशासनहीनता ही में बदल कर जो रह गया है ! ""खुले आम न हो रही है हुक्म की अदूली आज। और आयगर ! इन गुंडो को कौन नहीं पालता, सभी तो सुरक्षा चाहते हैं। ये राजनेता फिर इस सजीवनी बूटी से अछूते क्यों रहें ? ' गुलजार और बत्रा जैसो ने ही फिर क्या बिगाड़ा ? बिगाड़ कौन नही कर रहा है. " टर्न द सर्च लाइट इनवर्ड —यीशू ठीक ही तो कह गये। शायद ""सभी सलीब उठाने वाले इसी तरह सोचते है ? - लेकिन-लेकिन बत्रा—गुलजार के फैले-फैले इन विशाल डैनों की उचित कतर-ब्यौंत तो करनी ही होगी। कितनी फैल रही थी फोन पर अभी जैसे मैं भी इसका ही कोई मातहत होऊँ ?'—और उसने फिर अपने सामने दूर-दूर तक फैले अंधकार में आँखें गाड दी। होठ धीरे से फुसफुसा उठे :

> हर अकीदे से मेरा ऐतबार उठ ही गया
> अपने बन-बन के यहाँ—आये मिटाने वाले !

सत्ता तो कभी की बदल गयी है, पर, बदलाव कितनी दूर है अब भी—

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय—अब भी हमारी मीठी कल्पना मात्र ही है। अब भी न जाने कितनी कवि आत्माएं यह पूछती-पूछती, समय के सागर में डूब जायेंगी कि— 'ओ वेस्ट विन्ड विन्टर हेज् कम, इज स्प्रिंग फॉर अवे फ्रॉम अस ?'""और मनुष्यता के रूप, रस, गंध—स्पर्श का यह सुखद ऋतुराज कब तक हमसे दूर एक सपना भर बना रहेगा, यह बात न ही ईसा बता पाये, न गांधी ही। फिर पश्चिम की यह हवा ही हमें क्या बता पायेगी ? जगत के जीर्ण पत्र तो द्रुतगति से अब भी झर ही रहे है, और इसके साथ ही ऐसे गीत गाने वाले कवि लोग भी। प्रार्थना भर करने से धरती पर ज्योतिर्मय जीवन कहाँ झरा करता है ?

कवि ही नहीं, आज तो हर 'वोटर' परिवर्तन चाहता है, और हर वोट मांगने वाला महानगरों के इन चौराहो पर खड-खड़ा माइक के सामने बड़ी-

बड़ी बातें बघारता है, सब्जबागों के वादे करता है—चाहे वोट क्लब हो, चाहे चौरंगी हो। और हर बार परिवर्तन की यह बदनसीब लीला 'वोटर' को मृग सी छलती रहती है, लेकिन मनुष्यता की उस वसतश्री के कहीं भी दर्शन नहीं होते जो फाँसी पर झूलते उन शहीदों की पलकों के नीचे गंधमय राग लिये किलकती रहती थी।

और विचारों के ये बेताब कदम असहाय से उस विस्तृत अंधकार की धरती को जैसे नाप रहे हैं। थक गये तो आयगर फिर चैम्बर में लौट आये। ट्यूबलाइट के प्रकाश में वह सारा जीवन दर्शन जैसे अब काफूर हो गया अंगुलियाँ फिर उस फाइल के पन्नों को पलटने लगी। उनींदी दृष्टि फिर एक नाम पर ठिठक गयी''' लेकिन अलसाया, थका सा उदास मन माना नहीं। कुर्सी छोड़कर आयगर पर आकर पसर गया तो निढाल शरीर उस पर फैल गया।

'टन'—'सेंट मेरी' के टावर से एक का टकोरा बजा। वर्तुलाकार ध्वनि चारों ओर फैलकर, उस अंधेरे मसय के सागर में डूब गयी।

चार

आशागंज। न्यू गुलमोहर कॉलोनी के अंतिम छोर पर कुछ ऊँचाई से नजर बाग की फूलों से लदी गुलाबी क्यारियों को मधु भीनी निगाह से ताकता बंगला। फिर भी सुबह के सूरज की लालिमा में, कुतुब में घटित निरीह प्राणियों की मौत की कालिमा इस वक्त भी मौजूद है। तभी तो कुहरे की हल्की सी परत किसी कफन की तरह, धरती और आसमान को अभी ढके हुए है। शर्मनाक शरारत और दर्दनाक मौतें। कितनी घिनौनी गोश्तखोर हविस कि आज की सुबह के ये छापे, अपने असंख्य काले-काले अक्षरों में देश के कोने-कोने को यह कलंक-कहानी सुनाने पहुँच चुके हैं। पूरी पैंतालीस लाशें और करुण रुदन में विसूरता वातावरण। कौन जिम्मेदार है इसके लिए? कौन ' कौन कौन?, बस,'' जिसने भी सोचा और देखा, पीड़ाहत—सी गर्दन झुक गयी।

लेकिन प्रशासन ने बडी तत्परता से अपनी उदारता दिखलाई—उन मौतों का मुआवजा कुछ हजार रुप्पल्लियों की उद्घोषणा में वायुमण्डल को दूर-दूर तक गुंजाता हुआ, फिर काल कवलित हो गया।

आकाशवाणी की ध्वनि !—मिसेज बत्रा का वक्ष राहत की साँस खींच उभर उठा। कॉफी का आखिरी सिप लेती वे बाहर पारलर मे आकर खड़ी ही थीं कि धड़धड़ाती बुलेट फाटक पर आकर रुकी, फाटक खुल गया, वह तुरंत सीटी बजाता अंदर घुस आया'" हुस्न की बात चली तो'""सब !'

'ओहो, बड़ी गर्मजोशी है आज। आओ गुलजार, तुम्हारा ही इन्तजार था।' और मर्मभरी वह दृष्टि उसको ऊपर से नीचे तक घूर गयी।

'आओ न, अंदर चलें'—और दोनों ही बैठक मे आ गये। गुलजार केन के सोफ पर बड़ी ही लापरवाही से पसर गया। बत्रा भी उसी के सामने एक केन चैयर पर बैठ गयी। टी टेबल के केन्द्र मे रक्खे, अभी-अभी खिले गुलाबों का गुलदस्ता, भीनी-भीनी महक से महक रहा है। गुलजार ने तभी एक गहरी साँस खीची, तपाक से उठकर एक गुलाब चुन लिया, और फिर सोफे पर पसर गया।

'तुम्हारे लिए नाश्ता अभी हाल आ रहा है'—उठकर बटन दबा दिया तो कॉलबैल झनझना उठी। क्षण भर मे महरी अंदर आ गई—'भैया के लिए नाश्ता ले आओ !—गर्म-गर्म ब्रेड पकौडे और कॉफी।

'जी'—सहमी हुई निगाह ने गुलजार को देखा, और दबे पाँव महरी तुरंत लौट गयी।

तभी प्रश्नाकुल वाणी पूछ ही बैठी " 'कैसी रही '"खूब मजा आया न ?

सिगरेट मुँह में दाबे गुलजार ने लाइटर से उसे जला लिया, एक लम्बा कश खीचा, और ठंडी निगाह फेंकते हुए बोला—'मैं नहो था !'

'हूँ ऊँ'—ताज्जुबभरी निगाह उठी, और उसके चेहरे पर गड गयी 'सच !'" अफसोस यही कि मैं नही था कल। 'सच ?—दिनभर छुट्टी मनाई, और तुम नही थे वहाँ—नामुमकिन है यह, गुलजार। मेरे सामने अब यूँ बनो मत।' 'बाई यू, मैडम ! आपसे कभी झूठ भी बोला ?'" वैसे जो लोग थे, अपने ही हमदम हैं वे '"उन्हें भी ऐसे हादसे की उम्मीद ही नही थी कि पलक मारते ही यह सब कुछ हो जायेगा।' 'हूँ, तो तुम न थे ? '"मुझे सब

पता चलगया है—कि तुम्हीं सरगना थे उन सबके ?'

'मैडम!' विस्मित दृष्टि अवाक् किलक उठी।

'तुम लोग जिस सवारी से पहुँचे थे, उनके नम्बर तक लिखे हैं मेरे पास – समय भी, यही नही उन विदेशी छोकरियो के नाम तक भी। तुम तो हुस्न की बात करो न ?—हाँ, कैसी रहीं ?'—कहते अधर मुस्करा उठे।

'मैडम!'—और फिर जोरदार एक कश। धुएँ के छल्ले उन महकते गुलाबो पर छोड़ते हुए गुलजार ने एक बार तीखी निगाह से मिसेज बत्रा को देख लिया। उसकी गोल गोल बरौनी और उभरी हुई वे पुतलियाँ एक बारगी ही नाच उठीं। चेचक के हल्के दागों से भरा चेहरा इस वक्त बत्रा को भी कुछ खौफनाक-सा लगा। लेकिन उसने अपने मनोभाव तुरत छिपा लिये, बोली—'मैडम को सबकुछ मालूम है, गुलजार !'

'कौन मैडम ?'—साश्चर्य वाणी थरथरा गयी।""इ॰ न्दि""और वह आवाज किसी अजाने खौफ के दरिया में डूब गयी। बत्रा ने सहमी निगाह से उस चेहरे को देख लिया कि इतने मे महरी ने ट्रे में नाश्ता सजाये कमरे में प्रवेश किया। दोनो ने जैसे राहत की साँस ली।

'आओ गुलजार, नाश्ता ले लें'—और सेन्ट्रल टेबुल पर गर्मागर्म ब्रेड पकोड़ों की दो तश्तरियाँ सजा दी गयी। कॉफी की केतली और कप करीने से सजा दिये गये। महरी फिर दबे पाँव लौट गयी। दोनों ही कुछ अनबूझे भावों से भरे, ब्रेड बड़ों का आनंद लेते रहे।

'मजा आ गया'—चटखारे लेते गुलजार चहक उठा। 'आमलेट भी ?'

'क्यों नहीं, यह तो खा लो, वह भी आया जाता है।'—उत्तर मिला 'कैसी जिन्दगी है यह भी, मैडम !'—आखिरी ब्रेड पीस उठाते हुए वह आवाज धीमे से हवा मे लहरा गयी।

'क्यों, बढ़िया नहीं है, यह ?'

'कभी-कभी""अन्दर कुछ कचोटता भी है। डर भी लगता है कि""' और आवाज चुप हो गयी।

'क्यों ? हम भी नही हैं, क्या ? इतना बड़ा लवाजमा है तुम्हारे पीछे। और कौन ससुरा अब तक तुम्हारा बाल भी बाँका कर पाया – अरे, छू भी नही सका, अब तक।'

'फिर भी, मैडम !''''कभी-कभी तो नींद ही नहीं आती, और....'
'और क्या ?'

'और आती है तो बड़े ही खौफनाक ख्वाब''' इतने खौफनाक कि बस पूछो मत।'

'हूँ, देख रही हूँ—दिन ब दिन बुजदिल होते चले जा रहे हो। उम्र भी तो कुछ ढल ही रही है—एक बात पूछूं ?'—और वह रहस्य भरी नजर गुलजार के चेहरे की ओर उठी तो जैसे उसे चीरती हुई दिल तक चला गयी ! जिस्म का जर्रा जर्रा हल्के से दहल गया। सहमते बोल फूटे--'मैडम!' दो पल दोनों ही दृष्टियाँ मौन हो जैसे एक दूसरे के मर्म को टटोलती रहीं। लेकिन तुरंत ही सजग होते हुए बत्रा बोल उठी ?

'गुलजार, एक और आखिरी बात कहती हूँ, अच्छी तरह समझ लो कि जिस आबोहवा में तुम अब तक जिन्दा हो, दिन ब दिन जश्न मनाते रहे हो।' समझ लो इस आबोहवा के घेरे से निकल छूटना अब नामुमकिन है।'—और वह तेज निगाह फिर उसके दिल को चीरती, तेजाब की धार की तरह अन्दर ही अन्दर उतर गयी। सुना तो दिल कुछ मायूस हो गया। कांपते हुए होठ इतना ही बोल पाये—'मैडम !'

'मैडम-वैडम कुछ नहीं जीना है तो हुस्नोजश्न से भरी यही जिन्दगी है तुम्हारे लिए ? इससे बाहर निकले नहीं कि''' और वह आवाज अपने आप थम गई। दो क्षणों का वह मौन किसी गहरे अन्तराल-सा फैल गया। लेकिन हठात् फिर किसी निश्चय के शब्द गूंज उठें—'नहीं कि''' क्या, मैडम '

'मौत के वे कुएं जगह-जगह तुम्हारा इन्तजार जो कर रहे हैं न ? नहीं जानते—पुलिस का यह आदमी आज आहिस्ता-आहिस्ता इन्सान से दरिन्दा होता चला जा रहा है।'महावीर चक्र' और 'परमवीर चक्र' के ये सरकारी खिताब इस दरिन्दगी को कब खत्म कर पायेंगे—यह कौन कह सकता है ? इसलिए दरिन्दे ही हो तो दरिन्दगी के इस किले में ही 'सेफ' रह सकते हो।'—और फिर वह निगाह अपने इस कहे पर खुद ही नीचे झुक गयी।

तभी महरी ने आमलेट की प्लेटें दोनों के सामने लाकर सजा दीं। गुलजार की आँखों में उन्हें देखते ही तरावट ताजगी लौट आयी। उसने कनखियों से बत्रा की ओर देखा—'खाओ न, भई !'

और चमचों की खनखनाहट के साथ, सॉस' उंडेलते हुए दोनों ही कुछ क्षण आमलेट का आनन्द लेते रहे।

'सबसे बड़ा कुआ तो""!'—गुलजार ने उड़ती निगाह फेंकी।

'अपने ही घर-आंगन मे दिखाई दे रहा है न, है न? लेकिन निश्चित रहो, मैं जो हूँ—कितनी बार, कितने इल्जामों से छुटकारा नही दिलाया है, तुम्हे? क्या भूल गये सब?

'नहीं, मैडम। आपका यह गुलजार अहसानफरोश न कभी हुआ है, न कभी होगा ही! लेकिन, घर-आंगन के ये कुए ही मौत के मानिंद हो जाये तो क्या होगा?'

'गुलजार! मैंने कहा न, बेखौफ अपना फर्ज अन्जाम देते रहो। लौंडा है न आयंगर। आई. पी एस. हो गया तो क्या हुआ? घाट-घाट का पानी पीना अभी बाकी है। यहाँ कौन-सी कच्ची गोलियाँ खेलने वाले है "और"" और इस मर्ज का भी इलाज इस सुदेश के पास अब मौजूद है ही।'—रहस्य भरी मुस्कराहट अधरों पर अठखेली कर उठी। गुलजार की दृष्टि बत्रा की उन गहरी-गहरी आँखो मे झाँक गयी, लेकिन उनकी तलहटी में तो मात्र अंधेरा ही अंधेरा नजर आया। प्रश्नवाचक मुद्रा ने किंचित मुस्कराते हुए पूछ ही लिया—'कोई नयी चिरैया पाली है, उसके लिए?'

'नही।'

'तो फिर?'

'राजन ऐसी-वैसी मिट्टी का लौंदा नहीं है, गुलजार!'

'तब?'

'लौंडा कुछ फलसफाई अधिक है। उसके दूर के कोई बड़े ताऊ पहली लोकसभा के अध्यक्ष रहे थे।'

'अच्छा?—मुझे तो नहीं लगता।'

'हो सकता है—उसी परिवार से सम्बन्धित हो। फिर राम ही जाने। लेकिन ऊपर का सर्किल भी तो उसके जज्बातों का कायल है न!'

'तो, फिर?'

'जहाँ चाह तहाँ राह और वह बदगलों का आखिरी मकान थोड़े ही

है। लेकिन फिर भी '—और वे आँखें ड्राइंगरूम की दीवार पर लगे एक मात्र कैलेन्डर पर अंकित अभिनेत्री रेखा की आकर्षक अदा पर जा टिकी। गुलज़ार की ललकती दृष्टि भी उसी ओर दौड़ पड़ी—'रेखा तो बहुत ही जोरदार है न!'—अपने घने काले घुंघराले केशों को धीरे से सहलाते हुए उसने कहा।

'तभी तो यहाँ टंकी है, लेकिन हमारा गुलज़ार किस अमिताभ से कम है?'—सुदेश की आँखें किलक उठीं। बोली—'गुलजार! कभी कितने गुलज़ार थे हुस्नो-इश्क के वे मेरे दिन—कि याद आते ही मन मगन हो जाता है'—और वह कटीली निगाह पलभर के लिए, अपनी ही पलकों में बंद हो गयी। रस चुचुआते वे बोल और मधुभीनी वे यादें! गुलजार क्षण भर के लिए स्तब्ध, उस परित्यक्ता के आकर्षक चेहरे को देखता ही रह गया जिस पर से सौन्दर्य की आब पूरी तरह से अब तक नहीं उतरी है। शबाब का मुलम्मा अब भी शेष है। विस्मय विमूढ़-सा बैठा उसकी ऐसी हरकत को देखता भर रहा, जी में आया कि उठकर वे पलकें चूम ही ले, लेकिन लाचार—उसकी तो वह 'मैडम' जो है—ऑफिसर है वह। उसी के कारण यह गुलजार अब भी गुलजार है। फर्ज का फर्ज और मौज ही मौज। रोटी-बोटी ही उसे इसी बात की जो मिलती है? जब तक रगों में गर्म लहू और इन मदहोश निगाहों के सपने जिन्दा हैं, अपनी तो नौकरी बरकरार है ही।—काली घनी गलमुच्छ पुलक से प्रकम्पित हो गयी। तभी कोने में तिपाही पर रखे फोन की घंटी घनघनाई। गुलज़ार ने लपककर चोगा उठा लिया—'हलो, आप आयंगर साहब? जी, मैडम यहीं है—होल्ड ऑन प्लीज!'—तो बत्रा ने तुरत उठकर चोगा अपने हाथ में ले लिया।

'हल्लो, आयंगर साहब है—जी, यह मैं ''हाँ, मिसेज बत्रा ही ''हाँ ' हाँ कुतुब की एफ. आई. आर. जी, जी,'' आज्ञा दीजिए'' देखे हैं फोटो भी '' अखबारी डिस्पैच ?'' हाँ, यह भी ' मेरे सामने ही रखे हुए हैं''''क्या करें कैसा हादसा हो गया, यह ? '' अच्छा-अच्छा मैडम तशरीफ ले गयी थीं'''' बहुत संजीदा है, वे '' हाँ, फुल ऑव ह्युमन मिल्क ! ' हाँ, हाँ ' क्या कहा है आपने भी, आप ही का है यह हलका भी '' जरूर जरूर,''''तफतीश चल ही रही है—हाँ, हाजिर हूँ मैं भी'—और देर तक लगे वे कान फोन पर कुछ न कुछ सुनते ही रहे, और वे तराशी भौंहे कभी विस्मय तो कभी कुछ

आतंक से फैलती और सिकुड़ती रहीं। यह सारा उतार चढाव और चेहरे के छाया प्रकाश को गुलजार की पैनी निगाह अब भी देखती जा रही हैं, लगा कि सब कुछ बदरंग हो चला है अब।

और हठात् चोगा फोन पर रखते हुए तमतमाया वह चेहरा कुछ क्षण के लिये मौन हो गया, लेकिन तभी अस्फुट स्वर फूट पड़े, 'शैतान!'

'शैतान?'—गुलजार का हृदय प्रतिध्वनित हो उठा, मोह-निद्रा जैसे टूट गयी, 'कोई गंभीर मामला है, मैडम?'

'न न—कुछ नहीं। आयंगर आदतन शक्की है न, खुफिया विभाग से आया है तो आदत ही ऐसी पड़ गई है।....... लेकिन, गुलजार! हमें तो सतर्क रहना ही होगा।'

'क्यों, ऐसी क्या बात है?

'आस्तीन का साप है, आयंगर। हो सकता है—मामला अधिक तूल पकड़ जाये और चाहे-अनचाहे लोग भी 'राउण्ड अप' की उस गिरफ्त मे आ जायें ..... वैसे 'केस' न्यायिक जाँच के लिये 'रेफर' हो गया है, फिर भी दारमदार तो सारा 'फाइन्डिग' पर ही है न!'—और बूटेदार सुरंगीन टेरिलीन के उस कुर्ते के नीचे वह उभरा वक्ष हौले से हिल उठा। चेहरे पर तिरती उस छाया में भी हल्की झुर्रियों भरे उस गौरवर्ण ललाट पर वह नन्हा सा केशर तिलक अब भी सुदीप्त है। कुछ सोचती सी उठ खड़ी हुई और सामने वाली मेज के फूलदान के नीचे रक्खे सारे अखबार उठा लायी। दोनों ही कुछ देर चुपचाप लाशों के चित्र और सुर्खियों पर निगाह गड़ाये रहे।

'इन चित्रों में अपने लोग तो.......' सहमे हुए बोल चुप हो गये। 'कोई भी नही है, पलक झपकते ही खिसक गये थे .... लेकिन मैडम? दर्द भरी वे चीखें, रोती बिलखती आवाजें—कभी-कभी अब भी मेरे अन्दर जब गूंजने लगती हैं तो दिल में हल्का कुहराम सा मच जाता है!'—और वे गोलगोल उभरी आँखें भी जैसे कुछ सजला गयी।

'हूं, गुलजार! इतनी खूनी हलचलों के बावजूद भी दिल की यह हालत है, क्यों?'

'मैडम!'

'मैडम, क्या ? अभी तो बहुत कुछ कर गुजरना है।'—रहस्य भरी निगाह ने घूर लिया।

'वैसी ...... मासूम मौतें उन नयी-नयी कोपलों की—उन सपनीली उम्मीदों की इतनी मौतें—एक साथ और एक ही जगह, मैडम ! ....हैवानियत की उस एक लहर ने तो गज़ब ही ढा दिया था, उस रोज।'—वह स्याह चेहरा गमगीन स्याही से और भी गहरा स्याह हो उठा। बन्ना ने स्थिति की मार्मिकता को आज ही अनुभव किया कि ऐसे हत्या व्यवसायी दिल में भी कहीं इतना गहरा दर्द छिपा है। कैसी है यह कुदरत ?

वे दोनों ही एक दूसरे के सामने बैठे, कुछ क्षण अपने में डूबे ही रहे—सुदेश और गुलजार—*सुलगती ईर्ष्या और उसका एक अदद वहशी मर्दनी।*

न रांड है, न छाली, है शीतला माता रखवाली—कौन घर-गृहस्थी है इसकी जो इतनी कच्ची ला रहा है दिल में। ......ज्यादा से ज्यादा होगा क्या—नौकरी ही तो छूटेगी, जेल हो सकती है—और इस विचार-लहर से वह स्वयं अन्दर ही अन्दर कांप उठी।

ऐसी नौकरी छूट जायेगी—कितना खौफनाक होगा वह दिन ? और तब सामने ही बैठा यह खूंखार भेड़िया लपककर मेरी बोटी-बोटी ही न नोंच लेगा ? —और भय से समूची देह सिहर उठी।

लेकिन गुलजार कश्मीरी गलीचे के उन बड़े-बड़े बेल-बूटों पर ही दृष्टि गड़ाये बैठा रहा। सुदेश के अन्तर्मन के भय कातर कम्पन को वह कब टोह पाया ? सुदेश अब भी चुप है—अन्तर्लीन सी। अतीत के वे सभी दृश्य धीरे-धीरे एक-एक कर उसकी पलकों की पिछवई पर उतरने लगे। रोमांचित रोमांस के उन सावनी बादलों से वे सरसते दिन ...... हरी-भरी दूर्वा बिछे *विशाल लॉन—सफेद संगमरमर की वे सुरम्य छतरियाँ—पश्चिमी संगीत से* झूमते-थिरकते, रेस्तरां और सतरंगी भावनाओं से सजे-संवरे सपनीले राजकुमारों से वे बॉय फ्रेण्ड्स ! सभी उभर-उभर कर चमक रहे हैं।

तभी जलती हुई अग्नि-अर्चियों के आलोक वाला चन्दन गन्ध से महकता वह दृश्य !—सौन्दर्य, संगीत और सुगन्ध भरा वह संसार—कितने रसीले

थे वे स्वप्न ? और ''''''और ओह ! यह क्या ?—आँखों में अचकचाती बिजली तड़प उठी—और अन्तर्मन हाहाकार कर उठा—कैसा दाहक है यह दृश्य ? क्रूर और पैशाचिक। ओह ! '''''''खून से लथपथ यह लाश''''''' कौन, मेरे ही खाविंद ? ''' '''वक्त की जमीं पर गिरा लहू, अब कैसा काला पड़ गया है ? राख हुए सपनों सा-काला स्याह !—और नर्म-नर्म करतलियों ने तपाक से उन सपनीली पलकों को हौले से मल दिया। फिर देखा—वही गुलजार अब भी गलीचे के उन मखमली बूटों पर आँखें गड़ाये, न जाने क्या-क्या सोच रहा है ? उफनता हुआ वक्ष राहत की साँस से भर उठा। टीकोजी से ढकी कॉफी की केतली वैसी की वैसी वही रखी है। कॉलबेल झनझना उठी—'गुलजार !

'जी मैडम !'

'कहीं गहरे में उतर गये क्या ?'

'नही तो, ऐसा कुछ भी नही है, यहाँ !'—कनखियों से टोहती वह दृष्टि उस प्रश्नाकुल चेहरे को छू गई। 'कॉफी तो ठण्डी हो चली है, अब ? —और कुछ पियोगे ? एकाध पैग तो चल ही सकता है अभी।'

'नही मैडम, नहीं। इस वक्त नही। वक्त नमाज़ का है। ऐसे वक्त मैंने कभी न पी है, न पियूंगा ही।

'क्यों नही पियोगे ? और वक्त होता तो पीने के लिये मिन्नतें करते— अब बड़े नमाज़ी बन रहे हो, इस वक्त।'

'न सही नमाज़ी, मैडम ! पर मुसलमां तो हूं ही, न रोजे, न नमाज़, पर''''''' ।'

'पर, क्या ?

'पर, फजर में नींद खुलते ही उस परवर दीगार की इबादत में यह सर रोज झुकता रहा है और इन हाथों ने उस गरीब नवाज़ की दरगाहों की कितनी ही दहलीज़ को साफ किया और संवारा है, अब तक, कोई अंदाज नहीं उसका।'—उल्लास से चमकती नजर फिर मुस्करा उठी।

'हूँ ऊँ !'—सव्यंग्य सुदेश भी मुस्काई, बोली—'क्यों नहीं, क्यों नहीं— अल्लाह ताला जनाब के इन हाथों को नही पहचानता है क्या ? न जाने

कितनों के '''''''''''' और ज़बान दाँतों तले दब-सी गई, आँखों में ठिठोली खिलखिला उठी।

'मैडम !—मेरा यह जाति मुआमला है, मेहरबानी कर दखल न दीजिए। मैं पूछता हूँ—कातिल का भी अपना ईमां होता है, नहीं होता क्या ? फिर मैंने अपनी ही मर्जी से और अपने ही लिये कहाँ कुछ किया है ? जल्लाद का फर्ज फाँसी देना होता है न, कि नहीं ? फिर बड़े मियाँ भुट्टो हों या कोई बेगुनाह इन्सान ही—सब कुछ अपने आकाओं के हुक्म से यह सब आज तक करता रहा हूँ, नहीं करता रहा क्या—बोलो न ?'—पलट कर प्रश्न उछाल दिया।

'सच तो है ही यह, गुलजार। लेकिन कितना खौफनाक है यह सच ? फिर यह तो मानना ही होगा कि कातिल, कातिल ही होता है, उसमें और फर्जमंद जल्लाद के बीच कितना बड़ा फर्क है ? हर फाँसी के पीछे न्याय के तराजू की मुहर जो लगी होती है, लेकिन ''''''' लेकिन हर कत्ल के पीछे तो नहीं लगती है न ऐसी मुहर ?'

'मैडम !'—आवाज कंपकंपाती वायुमण्डल में विलीन हो गई। गोल-गोल सी डरौनी आँखें भी आश्चर्य से पथरा गयी। निराशा से गर्दन एक ओर झुक गई, धीरे से फुसफुसाया—'ऐसा तो कभी सोचा तक न था, सोच ही कैसे सकता था ? गुनहगार हूँ, मैडम !'

और दोनों हाथ उठकर स्वत: कानों को छू गये। स्याह पेशानी पर कुछ बूँदें पसीने की झलझला उठीं। नकारात्मक भाव से सिर धीरे से हिल पड़ा। अचानक कोई ख्याल दिल में कौंध गया, बोल उठा—'मैडम ! आज ही से बंदा अहद लेता है कि अब पुलिस के इन निकम्मे और कमीने हुक्कामों के ऐसे कोई हुक्म नहीं बजाऊँगा।'—और वह गठीला स्याह शरीर पुलिस की उस शानदार वर्दी में कसमसा उठा।

तभी मेहरी ने बैठक में प्रवेश किया।' 'इतनी देर लगा दी, अच्छा यह केतली उठा ले जाओ। कॉफी ताजा ही चाहिये।'

'जी'—नीची निगाह किये मेहरी केतली उठाकर तुरन्त चल दी।

'तो, अब पियोगे नहीं न, क्यों ?'—किंचित उपहास से वे कटीली बरौनियाँ फैल गयी।

'नहीं, क्यूँ नहीं—अब सब उसी की रजा से ही होगा, मैडम !'
गुनगुनाते हुए बोल उठा—

'तूने कहा कि पी !
तो मैंने भी पी।
तूने ही कहा कि जी !
तो मैंने जिन्दगी जी।
गर तेरा कहा न करता—
तो गुनहगार न होता ?'

और बन्ना की ओर देखा, मुस्करा भर दिया।

'वाह ! मेरे रुहानी शायर, वाह ! क्या फलसफा है तुम्हारा भी, भई वाह ! मजा आ गया......*'तूने ही कहा कि पी, तो मैंने भी पी'*—किस रोज का वाकया है यह कि परवरदीगार का ऐसा फरमान तुम्हें मिल गया, मेरे गुलजार ?'

'मैडम, मजाक न बनाओ इस तरह। एक रात उस महफिल में ही सुना था यह कलाम। याद आया तो पेशेनजर कर दिया। आलिम फाजिल तो हूं नही कि इल्मोइमा में आपकी मानिंद दखल रख सकूँ।'—और मासूमियत उन होठों पर खिल आई। बन्ना को लगा कि गुलजार ने अपनी शख्सियत का पूरा खाका पेश कर दिया है, आज। लेकिन यह भेड़ फिर उस आसमानी इमां के बाड़े में न लौट जाये कहीं, इसी मनोभाव के आवेग में वह उठ खड़ी हुई। उसके दाहिने कंधे को धीरे से थपथपाते हुए बोली—'ऐश करो, गुलजार ! ऐश करो। क्या रक्खा है इन हवाई बातों में, सुना नहीं—भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम कुतः। इसीलिये कहती हूं—यावत् जीवेत, सुखी जीवेत् !'—बड़ी-बड़ी बरौनियाँ मुस्करा उठी।

'क्या मतलब ? मैं समझा नहीं, मैडम।'

'कि जो जिस्म जलकर खाक हो जाता है, उसका क्या है ? वह कैसे आ सकता है लौटकर ? फिर ये पाप और पुण्य किस काम के है ?— इसी लिये तो कह रही हूं कि मस्त रहो और ऐश करो।'

'हूँ किसी पहुंचे हुए फकीर ने कहा है, यह ?'

'येस—चार्वाक जैसे फिलासाफर ने।'

'खयालात तो बहुत ही बुलंद है ये। हैं न, मैडम।'

'येस, येस, यही हकीकत है इस जहाँ की। फिर क्या पाप और क्या पुण्य ? जब खाक ही बन गये तो फिर डरना कैसा ? 'ईट ड्रिंक एण्ड बी मैरी—गुलजार। सब ठाठ यहीं तो पड़ा रह जाना है। फिर कौन किसके लिये रोयेगा यहाँ ? इसीलिए जब तक जिन्दगी है तभी तक है यह जहाँ—अच्छी तरह गाँठ बांध लो यह। जो काम सामने है, नेक नीयती से अंजाम दो। वर्क इज वरशिप—फर्ज ही इबादत है—और वह नशीली निगाह गुलजार के सारे जिस्म को चूमती सी दौड़ गयी। उसने फिर कहना शुरू किया—'और फर्ज से मुखालिफत की सजा तो फिर सजा ही होती है न ? इसलिये खुशी-खुशी यह सब चलते रहना चाहिये। यह महकमा ही है ऐसा बदजात—फिर जरा-सा चूके नहीं कि मरे ही समझो।'—और उस निश्चयात्मक दृष्टि ने तभी जैसे विराम लगा दिया। मेहरी ने भी तभी प्रवेश किया, प्यालियाँ और केतली टेबुल पर सजा दी।

बत्रा ने बड़ी ही तत्परता से टीकोजी हटा दी और कॉफी बनाना शुरू कर दिया। प्यालियाँ उठाये, सिप लेते हुए कभी-कभार वे एक-दूसरे की ओर देख लेते जैसे जिन्दगी की इस कड़वाहट को इन मीठे घूंटों में घोलकर पी जाना चाहते हों।

निरीक्षण का दिन। आई. जी. साहब की जीप का बड़ी बेताबी से हर नजर इन्तजार कर रही है। बत्रा और उनके सहकर्मी वर्दियों में कसे-रवे, चेहरों पर मुस्कराहट का मुखौटा लगाये हुए हैं। मिसेज बत्रा का व्यक्तित्व तो इस खाकी ड्रेस में और भी स्मार्ट नजर आ रहा है। पीतल के शोल्डर्स और रुपहले तमगों की चमचमाहट, पॉलिश्ड कमर पेटी से झूलता रिवाल्वर, ब्राउन फीतों से कसे बूट, फुर्तीली किन्तु नपी-तुली चहलकदमी से काफी निखर उठा है। बात-बात में मुस्कराहट, न कोई डांट न डपट। कितना परिवर्तन हो गया है आज इस नारी में। जो भी देखता है, आश्चर्य से प्रश्नाकुल हो उठता है।

आज—आज निरीक्षण दिवस जो है। ऑफिस सारा 'टिप-टॉप' है—टेबुल-कुर्सियाँ, दीगर फर्नीचर, महत्वपूर्ण फाइलें और सभी बाबू लोग।

ऊपर से मुस्कराहट, अन्दर कोई अजाना भय—लूट और लाभ में कौन पीछे रहा है, यहाँ ? सभी के बाल-बच्चे, लम्बे-चौड़े पारिवारिक रिश्ते, आसमान छूती महंगाई—पर उसका भत्ता—जैसे ऊँट के मुँह में जीरा। क्या किया जाये ? पेट तो भरना ही पड़ेगा न।

और जिनके मजे ही मजे हैं—वे ही आज शान से आयेंगे, डरायेंगे-धमकायें कुछ—हमारे आका जो है। निरीक्षण है आज। क्या देखना है उन्हें ? जानते तो सब हैं ही कि कौन कितना, कहाँ-कहाँ से और कब-कब व कैसे खाया करता है ? ओ. एस. का मन ऐसी ही उधेड़-बुन मे उलझा हुआ है। अन्दर से आज हर व्यक्ति डूबा-डूबा नजर आ रहा है पर चेहरो पर स्वागत की मुस्कराहट अठखेलियाँ कर रही —जैसे आज ही उनकी नेक-नीयती को इनाम-इकरार मिलने वाला है। भई ! केन्द्रीय महिला कारागार है, यह। लाखों का बजट, सरकारी और गैरसरकारी भी। क्या कमी है यहाँ ? लोगों की अंटी में ताकत चाहिये, फिर तो हत्यारी-कुलटाए भी बड़े आराम से अपने कथित प्रेमियो के साथ रात में रंगरेलिय मना सकती हैं। हर चीज मिल सकती है, यहाँ—बस नावा चाहिये न।

और क्या हमारे ये बड़े-बड़े आला अफसर यहाँ के बने गलीचों और कारपेटो की तमन्ना नही रखते ? कितनी सारी चद्दरें और कम्बल ट्रक लाद-लाद कर ले जाया करते है। मौसम-मौसम की फसल ऐसे ही लुटा करती हैं—फल-फूल, घी-दूध, अण्डों इत्यादि की बातें तो दीगर है ही। कहाँ जाती है वह ईमानदारी उस वक्त ? 'बी ऑनेस्ट, डू ऑनेस्टली'—क्या हम ही रह गये ईमानदार बनने के लिये ?

भई ! वैसे भी दिन भर तो जेल की चारदीवारी मे कटता रहा है यह जीवन। सींखचों के पीछे न सही, जेल की चार दीवारी के भीतर ही कट रही है न यह जिन्दगी। न जाने कब तक और काटना है, इसी तरह—'अरे, मि. चतुर्वेदी, यहाँ कहीं 'पेन' रखखा था न हमारा ?'—ओ. एस. माथुर ने कोट की जेब टटोलते हुए पूछा। अपनी सीट से उठते हुए केशियर ज्ञान चतुर्वेदी ने उड़ती हुई एक निगाह ओ. एस. पर डाली। बोला—'चलो भी यार, छोड़ो ये झंझट। अभी उस आका की अगवानी करो। शायद पहुचा ही चाहते है। देखो न, बाहर कितनी हलचल है ? आओ, हम भी चलें।'

सभी लोग उठकर बाहर निकल आये। वसंतिया धूप और ताजा महकती हवा। तभी देखा कि सामने से तीन शानदार जीपें एक के पीछे एक जेल-फाटक के अंदर दौड़ती घुस आईं तो लोग-बाग लपककर उसी ओर बढ़ गये। जीपें प्रशासनिक भवन के सामने ही रुक गईं। बत्रा और उसके सहयोगियों ने बड़े साहब का अभिवादन किया। बत्रा ने बढ़कर खट से सैल्यूट किया तो मल्होत्रा जीप से तुरंत बाहर आकर मुस्कराये। लोगों से हाथ मिलाया। बत्रा से बतियाते हुए चीफ वार्डन के चैम्बर में आ बैठे कि दीवार घड़ी ने 'टन' से एक टंकार की।

मैडम बत्रा, ऐम सारी फॉर कमिंग लेट प्लीज डोन्ट माइण्ड, हैं!'—अपना हैट उतारते हुए उन्होंने मिसेज बत्रा की ओर देखा। दैट नाइट यू डिड एन्जॉय, माई डीयर?'—और पुतलियाँ प्रसन्नता से पुलक उठीं।

'वेरी मच, सर।'—और मधुभीनी मुस्कराहट जैसे उस गरूर भरे मुख मण्डल पर फैल गयी। चुस्त खाकी पोशाक में वह समुन्नत वक्ष दोलायमान हो गया। दोनों की निगाह परस्पर मिली तो खिल उठीं। 'यू हैव स्टिल मच इन यू''''आई''''आई डू रियली, एन्जॉय'—और तभी जैसे उन्हें कुछ अहसास हुआ तो सामने ही बैठे मि. आयंगर से बोल उठे—'मि. आयंगर, यू कलेक्ट ऑल द पेपर्स कन्सरनिंग इन्स्पेक्शन'—और और अपने शरीर को कुछ शिथिल करते हुए कह उठे—'क्या इन्स्पैक्शन करना है हमें, सभी तो ठीक है न मिसेज बत्रा?'

'जी सर, अपनी ओर से सभी कुछ ...'

'हाँ, हाँ, क्यूं' नहीं'—कहते ही एक डकार ली। तुम तो हमेशा तेज तर्रार हो न, असावधानी और बदइन्तजामी का यहाँ क्या काम है? लम्बे अर्से से जानता हूँ यह सब।'

'फिर भी एक राउन्ड लेने में क्या हर्ज है, सर!'—बत्रा की दबी आवाज में अनचाहे ही निकल गया।

'यस सर, कुछ चहलकदमी ही हो जाये, नहीं तो लोग इसे भी ...' आयंगर कहते-कहते रुक गये।

'हाँ हाँ'कुछ याद करते हुए 'रिटपिटिशन हुई है—यू मीन देट ? डोण्ट वरी। मिस्टर चतुर्वेदी भले है, अपने हो हैं। आयुक्त हैं तो क्या हुआ, इन्सान भी अव्वल दर्जे के है वे ! इजण्ट मि. आयगर ?'

'सर !'— आयगर मुस्कराकर रह गये।

'आँलराइट, आओ, तब कुछ घूमधाम ही लें'—और वह मदभरी दृष्टि नाच उठी। मिस्टर मल्होत्रा के साथ तपाक से सभी उठ खड़े हुए। बाहर आये तो बोले—'मिसेज बत्रा। कुछ बैरक भी देखेंगे हम, कुछ बंदियों से भी मिलाइये। 'डिटेन्यूज' कितने हैं, यहाँ ?' 'अभी !—पौने दो सौ के करीब ही, सर।'—ओ. एस. माथुर बीच में बोल उठा।

'ओ. सही सही आंकड़े नही है तुम लोगों के पास ? कैसे जेलर हो ? मि. आयंगर इनसे सही आकड़े और आवश्यक कागजात लेना मत भूलना'—अपना हैट बगल मे दबाते हुए आई. जी बोल उठे।

तभी एक एम्बुलैंस धीरे से उन लोगों के सामने से गुजरी। मिस्टर मल्होत्रा ने देखा और काफिला उसी ओर बढ़ चला। थोड़ी दूर ही एक मोड़ पर जाकर एम्बुलैंस एक 'सी' क्लास बैरक के पास रुक गयी। पीछे दरवाजा खुला और दो रुग्ण बंदिनियाँ नीचे उतर आईं। तभी अगली सीट से उतर लेडी डॉक्टर ने नर्स से क्लिप बोर्ड माँगा, चार्ट में कुछ अंकित किया और फिर उन बंदिनियों से बतियाने लगी। तभी इन्चार्ज महिला वार्डन ने बढ़कर उस 'सी' क्लास बैरक का द्वार खोल दिया तो दोनों ही रोगिणियों ने धीरे-धीरे प्रवेश किया !

'नही भई, तुम नही—ओ ऋतुम्भरा ! बाहर आ जाओ तुम'—सहायिका वार्डन ने पुकार कर कहा।

'क्यों नही, मैं तो वही रहूंगी, जहाँ इस फूलजहाँ को रखा जायेगा'—किंचित रोष भरे वे बोल हवा मे गूंज उठे।

'नहीं-नही, तुम्हे अब इससे अच्छा बरैक मिलेगा। निकल आओ बाहर, अब तुम्हे इसके साथ रखने का आर्डर नही है।'

'नहीं चाहिये तुम्हारा कोई अच्छा 'सेल' मुझे। इस फूलबानो से कोई भी अलग नही कर सकेगा, समझी ?'—और उसने अदर से किवाड़ अपनी ओर खीच लिया।

'नहीं छोकरी ! ऐसा नहीं चलेगा अब । जानती हो, फूलबानो तपेदिक की मरीज है । स्वस्थ कैदी उसके साथ कैसे रह सकता है ? यह देखो न चार्ट ! डॉक्टर साहिबा भी खड़ी हैं, पूछ लो न इनसे?'—हाथ का झाला देते सहायिका बोल उठी । तभी डॉक्टर ने कहा—'नही, ऋता । ऐसा न करो, छूत की बीमारी है—तुम इसके साथ नही रह सकती । चैकअप हो चुका है, बानो को तपेदिक है चलो, बाहर आओ !'

'मैं तो नही आती, चाहे मर ही क्यो न जाऊँ ?'—सरोष चिल्लाहट भरी आवाज गूंज उठी । तभी मल्होत्रा अपने लवाजमे के साथ आ पहुंचे । गर्माहट देखी तो कड़ककर पूछा—'क्या बात है, जी !'

सहायिका और दो महिला कर्मचारी आगे बढ आईं, जरा झुककर अदब से बोली—'सर, वह ऋतुम्भरा भी इस रोगिणी के साथ इसी 'सेल' में रहना चाहती है ।

'तो, रहने दो—कोई खतरनाक है, वह ?'—मल्होत्रा ने बत्रा की ओर देखा ।

'नही, सर ! वह तो राजनैतिक कैदी है । इस बैरक में नही रह सकती ।' और दूसरी को तो तपेदिक है'—पास ही खड़ी डॉक्टर बोल उठी । 'हूं, लाओ, इन दोनों की गार्ड फाइलें, कहां हैं वे, बत्राजी ?'—मल्होत्रा का इस आदेशात्मक आवाज से बत्रा कुछ सकपका-सी गयी । ओ. एस. ने बात सम्हाल ली—'सर, अभी हाल आ ही रही है'—और चतुर्वेदी चपरासी के साथ ऑफिस की ओर लपका ।

'तो, यह छोकरी राजनैतिक कैदी है, बत्राजी ?'—मल्होत्रा ने फिर दोहराया ।

'तो, फिर कैसे रही इसके साथ यह !'

'सर, गयी रात से ही मैं इसके साथ हूं'—अंदर से ही ऋता कुछ जोर से बोल पड़ी ।

'अच्छा, यह बात है ? बाहर आजाओ और साफ-साफ बताओ हमें !'—सहानुभूतिसना आदेश सुना तो दोनों ही अविलम्ब बाहर निकल आईं । ऋता ने कहा—'सर, कल ही से मेरी यातनाओं का नया दौर शुरू

हुआ था; अपने उस बदबूदार 'सेल' से कल साँझ के धुंधलके में यहाँ 'शिफ्ट' कर दी गयी हूँ।'

'तो, फिर अब इस औरत के साथ यहीं क्यों रहना चाहती हो ?' 'सर, यह तो''' एक करुणापूर्ण और मनुष्यता की कहानी है'— और वह उदास-उदास दृष्टि जैसे नम हो आई।

'बड़ी हमदर्दी है, छोकरी। इस उम्र में तो सभी सेण्टिमेंटल होते ही हैं न, बत्राजी ?'—मल्होत्रा ने अपना बेंटन धीरे से घुमाते हुए उस ओर देखा। बनावटी मुस्कराहट ने अपने चेहरे के भाव छिपाने की एक असफल चेष्टा सी की।

'सर, जानते ही है, हमारा कर्त्तव्य कितना कठोर है, सेंटिमेंट्स की गुंजाइश यहाँ कतई नही होती !'—बत्रा के सहमे हुए बोल फूट पड़े।

'तो रातभर तुम इसी औरत की कहानी ही सुनती रहीं हो, क्यो छोकरी ?'

'कहानी ही नही, सर ! खौफनाक हकीकत भी इन आँखों ने उसी रात जो देखी तो मर्मांतक पीड़ा तो होती ही है ?'—सुनते ही एक आतंक पूर्ण सन्नाटा छा गया।

'ऐसा क्या देखा तूने ? सच-सच बतलाना, नहीं तो इस जुर्म की सजा भी तुम्हारे मत्थे और चिपक गयी समझो।'—वह गौर वर्ण चेहरा तमतमा गया।

'आप इन्ही से पूछ देखिये न, सर !'—बत्रा की ओर संकेत करते निर्भीक वचन गूंज उठे—'रात एक बजे से इस 'सेल' का किवाड़ खुला पड़ा रहा है। सबेरे छः बजे सफाई जमादारिन की रिपोर्ट पर, वार्डर ने फिर आकर ताला लगाया है।'

'तो 'सेल' खुला रहा—किसने खोला था ताला, बत्राजी ?' 'सर, इसकी अलग से कार्यवाई चल रही है, जाँच का सिलसिला जारी है।'

'कहाँ है वह फाइल, उसे आज ही हमारे पास भिजवा देना। इतनी सावधानी के बावजूद भी'' ?'—कुछ तमकते बोल तत्काल मुखरित हुए।

'सर !'—बत्रा धीरे से फुसफुसाई।

'वह फाइल तफतीश के लिए मेरे ही पास आगई है, सर!'—आयंगर बीच ही मे बोल उठा।

'तब ठीक है, आयंगर! अपने रिमार्क के साथ हमारे पास भिजवा देना।'—और तभी चतुर्वेदी दो मोटी फाइलें बगल मे दबाये आ पहुंचा, आते ही आयंगर की नज़र करदी।

'हाँ, तो छोकरी! और भी कुछ देखा था तुमने उस रात?'—घूरती दृष्टि ने फिर प्रश्न पूछ लिया।

'जी, सर! कम्बल ओढे मैं सामने वाले तख्ते पर ताप से तपती हुई वानो के पास लेटी ही थी कि थोड़ी ही देर में कोई भुतहा काली छाया दरवाजे में दिखाई दी। आवाज सुनायी पड़ी—फूलो! अरी ओ फूलो!—और धीरे से ताला खुला, वह काली छाया अंदर आकर ठिठक-सी गयी। हृदय भय से भर उठा, धड़कन बढ गयी—कि वह छाया सीधी मेरे ही समीप आ पहुँची, और उसने बलात् मेरा कम्बल ही खीच लिया""चीख निकल ही गयी— 'कौन हो तुम, कौन?'—खड़ी हो, कड़ककर पूछा।

'नही जानती हरामजादी—मैं "हूँ तेरा यार!'—कहते-कहते उसने मुझे बाहों में कस लिया। लेकिन""लेकिन, सर! मैंने भी पूरी ताकत से उसे पीछे केल धकिया—ऐसा ढकेला कि वह दरवाजे के बीच जा गिरा। शायद फिर उठने की जैसे उसमे हिम्मत ही नहीं रही। बैठे-बैठे सरकते हुए बाहर निकल गया"'और इस तरह वह काली करतूतों की छाया, उजले प्रकाश में दूर तक जा कही विलिन हो गयी।' - कहते-कहते ऋता की समूची देह काँप गयी। चौकन्ने से सभी कान सुन रहे थे, दृष्टियाँ विस्मय और कौतूहल से भरी-भरी, एक दूसरे को कनखियों से देख रही थी। मुहूर्त भर का वह मौन, केवल बाहर से ही चुप था, लेकिन अंदर ही अंदर मुखरित।

'फिर लौटकर आई थी वह छाया, छोकरी?'—किंचित मुस्कराती दृष्टि पूछ बैठी।

'जी नही सर!'— लेकिन बानो ने, जो ताप से बेचैन अब तक जाग चुकी थी, आगे सब कुछ बतला दिया था, और इसीलिए अब मैं इससे हरगिज अलग नहीं होना चाहती।'—मन की दृढ़ता चिहुँक पड़ी।

'फिर चाहे तुम्हें भी तपेदिक हो जाये ?'—डॉक्टर बीच ही में पूछ उठी।

'मैडम यह जिन्दगी ही समाप्त क्यों न हो जाये, तब!'

'ऐसा है ?'—हम तुम्हें ही यहाँ से दफा कर दें तो, तब क्या करोगी, छोकरी ?'—ठहाका लगाते मल्होत्रा हँस पड़े।

'मैं ······ मैं सर ! भगवान के लिए ऐसा न कीजिये। यदि मैं इससे अलग की गयी तो अपना दम ही तोड़ लूँगी·········सर ! इतनी दया ही कीजिये मुझ पर·········कहते-कहते वे आँखें सचमुच आँसुओं से छलछला आई। घनी वेदना की छाया से मुख मलिन हो गया। देखते ही मल्होत्रा भी सकते में आ गये। अपना बैटन उसके कंधे से छुआते हुए कहा—'छोकरी, इतनी भावुक हो तुम। जेल के इस संसार में ऐसी भावनाओं की कोई जगह ही नहीं है ! कई फूलजहाँ हैं, यहाँ। किस-किस के लिए दम तोड़ती रहोगी अपना ?····जाओ, अपने नये बैरक मे,··· कि लोगों ने देखा—फूलजहाँ झपटती हुई ऋता से चिपटकर सिसक-सिसक कर रोने लगी। अन्य महिला वार्डरो ने बत्रा के संकेत पर बरबस अलग करने का काफी प्रयत्न किया, पर सफल मनोरथ न हो सकी।

और कुछ देर यह तमाशा चलता रहा तो मल्होत्रा झुंझलाकर चीखते से बोले—'बत्राजी ! इन दोनों को 'बी' क्लास के बैरक में रख दो। सफाई की पूरी व्यवस्था रहे—इस छोकरी के लिए अलग से तख्ता, कम्बल और चद्दर का इन्तजाम भी—जाओ, अब देखती क्या हो, फूटो यहाँ से, छोकरी ! नहीं मानती हो तो मरो। ले जाओ जी इन्हें यहाँ से।'

सहायिका वार्डन के संकेत पर वे दोनो ही उसके पीछे-पीछे, नये बैरक के लिये तुरंत चलदी। मल्होत्रा ने पीछे मुड़कर देखा, आयंगर खड़े हैं—'मि. आयंगर, और अब क्या देखना है, हो गया न इन्स्पैक्शन खत्म ? अच्छा ही रहा—ए बिट अम्यूजिंग, इजिन्ट !

'सर, इन्टरेस्टिंग एज् वैल। ये वो फाइले है, जिन्हें तलब किया गया था'—आयंगर ने फाइलें पेश करते हुए कहा।

'अभी रखो। चेम्बर मे बैठकर ही देखेंगे।'–फिर बत्रा की ओर मुड़कर उलाहने भरी दृष्टि से देखा – 'हाँ, तो तुम्हारा यह इन्स्पेक्शन आज कितना सूखा-सूखा रहा है, मिसेज बत्रा!'

'सर, मधुर जलपान का भी इन्तजाम है। हॉल में तशरीफ रखियेगा'— और उसने मुड़कर अपने सीनियर अकाउन्टेन्ट की ओर देख लिया।

'सब तैयार ही है, मैडम!'—मि. गर्ग के चेहरे पर रहस्यभरी मुस्कराहट फैल गयी। और सभी लोग टहलते हुए उस आलीशान हॉल में आ गये और करीने से लगी केन चेयर्स पर बैठ गये। स्टीवर्ट के संकेत करते ही कई हाथ-पाँव बिजली की गति से व्यवस्था में तत्काल जुट गये। देखते ही देखते, धीमी खनखनाहट के साथ तश्तरियाँ सज गयी। गर्म कॉफी की केतलियाँ ताजा समोसे और कचौरियों की महकती गंध के साथ हॉल में लाई गयी तो लोगों की निगाहें उत्फुल्लता से खिल उठी। रसभरी इमरतियों और मावे के लड्डुओं से भरी-भरी वे तश्तरियाँ देखकर तो हलक जैसे तर हो उठे। लेकिन बड़े साहब लोगो की टेबुल अब भी खाली ही है।

'आप लोग शुरू कीजिए न?'—बत्रा ने मधुभीनी दृष्टि प्रतीक्षारत जनों की ओर फेंकी। यह सहज संकेत भी जैसे आदेश ही था। लोग-बाग फिर बिना किसी इन्तजार के जलपान में जुट गये। आरंभ में कुछ सहमा-सहमा वातावरण रहा, पर, तुरत ही बत्रा और आयंगर के ठहाको के साथ ही वह मौन भी मुखरित हो उठा। लोग चटखारे ले लेकर अब उस वातावरण का आनद ले रहे है।

'साल भर मे दो-चार दिन ही तो नसीब होते हैं, ऐसे? फिर जलपान में काहे का संकोच?'—चतुर्वेदी ने गर्ग की ओर लड्डू बढाते हुए कहा। 'हूँ, सच कहि रहन, बचुआ। हमारी तऊ जिन्दगी ही बेकार गयी लगत।'

'बेकार?''''क्या कहते हो, चचा?''''फिर न्यू गुलमोहर कॉलोनी वाला वह दो मंजिला बंगला, अलादीन के चिराग के किस जिन ने यूं ही भेंट दे दिया है?'—चतुर्वेदी कनखियो मे मुस्करा दिया।

'मेरे यार, चुप भी कर अब। क्यो जांघ ही उघाड़ने पर तुला है आज—'धीमे से हाथ दबाते हुए चीफ अकाउन्टेट कीट एक आँख जरा दब गयी। चतुर्वेदी देखते ही हँस दिया।

'समय की यह गंगा ऐसी ही है चचा कि नहा लिये तो स्नान हो ही गया। कोई अंजुरी भर पीता है तो कोई गहरा गोता ही लगाता है। किनारे बैठ लहरें गिनने से तो काम चलता नही।"" "और और फिर यह गंगा मैया कौन को मना करती है, ससुरी ? हिम्मत है तो जितन नहा सकते हो, नहाओ न !—जीवन का सारा दारिद्र्य ही धोय लेव ! यह दालिद्दर ही तो पाप है न, चचा ? समय की इसी गंगा के जल सो धोई लेव !'—उसकी आँखें रहस्य भरे किसी संकेत से नाच उठीं। 'रहन दे बचुआ तेरी यह फिलासफी'—सहमते हुए बीच ही में ओ. एस. धीरे से बोल उठे।

'अच्छा, अच्छा ! पर, यहाँ अपनी बात सुनने को कौन कान लगाये खड़ा है ? सभी तो बतिया रहे हैं, कौन पीछे रहा है हमसे ? समय-समय की बात है, माथुर साहब ! बिंधे सो मोती, नही तो फिर ठनठन पाल, मदन गुपाल'—ज्ञान की इस बात पर दोनों ही हँस पड़े। इतने में दूसरी ओर से एक जोरदार ठहाका लगा तो सभी की निगाहें उसी ओर लपक पड़ी। सहायिका वार्डन अपने चारों ओर बैठी सहयोगी परिचारिकाओं के साथ, कोई विनोद भरी चुहल कर बैठीं तो उसका प्रत्युत्तर नेहले पर दहले की तरह ठहाके में गूंज उठा।

मिसेज बत्रा, आयंगर, मैस स्टीवर्ट आदि साहब लोगों से घिरे मल्होत्रा की उस बड़ी गोल मेज पर शैम्पेन की पाँच बोतलें शोभायमान हैं। लीरा ग्लास के कई पारदर्शी प्याले करीने से सजे हैं, साथ ही गर्मागर्म कचौरियों से भरी-भरी वे तश्तरियां देखने वाली निगाहों को उल्लसित कर रही है।

कभी मिसेज बत्रा तो कभी नव प्रौढ़ा पड़ौसिन मिसेज प्रिया बैंजल अपने कोमल-कोमल कर-कमलों से रिक्त हुए प्यालों को भरती जा रही है जो कभी-कभी दो ही घूंट में फिर खाली हो जाते है। आई. जी. साहब जैसे अब अपनी पूरी शान में महक-चहक रहे है। हमप्याला अधिकारीगण भी अब उन शानदार वर्दियों की गरिमा को बिसार ही बैठे हैं, तभी तो कभी-कभार शैम्पेन की महकती बू के साथ, उनकी बूदार वाणी जोरदार कहकहों मे डूब जाया करती है। बत्रा ने प्रिया की ओर कनखियों से देखभर लिया तो मिसेज प्रिया ने आयंगर पर झुकते हुए एक मीठी सी चुटकी ली—'आयंगर साहब ! यह क्या है, भई ? पहला प्याला ही अब तक खाली नहीं हुआ ? क्या बात

है, आज ? प्यास जगी ही नहीं अब तक ?'—और उसने उनका प्याला उठा कर अपने अधरों से चूम लिया, चुस्की ली और तब बहुत ही मीठी मनुहार के साथ आयंगर के होंठों से चिपकाती हुई बोली—'लो, अब तो लो न, भई ! गटक लो पूरा ही।'

आयंगर की सहमी निगाहें प्रिया की आँखों में तपाक से झाँक गई, पर, रखते हुए एक 'सिप' ले ही ली। हौले से प्याला अपने अधरों से हटाया तो मय कुछ छलक ही गयी। एक ठहाके के साथ तमाम लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

'क्या बदतमीजी है आयंगर'—अधमिची उन आँखों ने तरेर कर कह दिया।'

'सॉरी, सर !'—और वे पलकें स्वतः झुक गयीं। लेकिन उस साकी का सारा शबाब जैसे मन ही मन आहत हो उठा। प्रिया ने बत्रा को देखा, बत्रा ने प्रिया को। उफनती हुई तृष्णा के उबाल को 'सॉरी' का छींटा जो लग गया। समीप में बैठे कुछ लोगों की नजर भी इस ओर उठी, लेकिन अन्य इससे बेखबर ही रहे।

धीरे-धीरे बोतलों के साथ तश्तरियाँ भी खाली हो गयीं। पान की गिलौरियाँ और सिगरेटें आई तो लोग बाग प्रसन्न चित चबाते—धुँआ फूँकते हॉल से बाहर निकल आये। गोलमेज को घेरे बैठे लोग इस एकान्त को पा परम प्रसन्न हुए। महकते हुए चेहरे और बहकते बोल उन डगमगाते कदमों का ही साथ दे रहे है। प्रिया और बत्रा के रस-चुचुआते अधरों के चुम्बनों और उनके समुन्नत वक्षों के प्रगाढ आलिंगनों से छके-छके वे अधिकारी कदम भी अब धीरे-धीरे टहल-कदमी करते बाहर निकल आये। सरकारी जीपें तो पहले ही तैयार खड़ी थीं।

प्रिया और बत्रा ने मल्होत्रा साहब को सहारा दे जीप में ला बैठाया। मधुभीनी मुस्कराहटें विदाई में अधरों पर बिछल आईं। जीप घर्रर कर स्टार्ट हुई, और धीरे से चल पड़ी।

आयंगर भी अपनी जीप में आकर बैठ गये। बत्रा और प्रिया अब तुरंत ही उधर खिसक आईं, मुस्कराती हुई बोली—'सर, वी आर सॉरी टू डिस्टर्ब यू— आप वे फाइलें नही ले जायेगे जिन्हें बड़े साहब ने तलब किया था ?'

सुनते ही वे जीप से फिर बाहर निकल आये। पीछे बैठा अर्दली भी तुरन्त बाहर कूद आया, और खट् से सैल्यूट किया।

—'वे फाइलें जो लिखने की मेज पर चैम्बर में रक्खी हुई हैं, तुरन्त ले आओ।'

'जी'—सैल्यूट करते ही अर्दली तेज कदमों से उसी ओर दौड़ गया। तभी बत्रा ने धीरे से पूछा—'सर' आज की 'ट्रिप' कैसी रही ?'—आयंगर कनखियों से देखते हुए केवल मुस्करा भर उठे।

'क्यों, किसी तरह की कमी नज़र आई क्या ? कोशिश तो पूरी रही कि कोई भी अड़चन रास्ते में आये ही नही। सारा इन्तजाम पंद्रह दिन पहले से 'चॉक आउट' कर लिया गया था""बस उस मैडिकल वॉन का भी उसी वक्त आना और उस छोकरी का तमाशा खड़ा करना—हमारे इन्तजामी नजरिये का हिस्सा ही नही रहा था'—कहते-कहते आयंगर के मुख पर प्रतिच्छायित भाव छाया को वह चोर नज़र से देखती मुस्करा उठी।

'यह तो कुदरत की ही बात कहिये, बत्राजी। इस सारी बनावट की बुनावट में कहीं न कहीं हकीकत का कोई पैबंद भी तो होना चाहिये था—लेकिन एक बात है—वह लड़की है बोल्ड ही—यह चिड़िया फँसी ही कैसे बत्राजी ?'

'अरे, बड़ी चुड़ैल है। परले सिरे की ढीठ। पर, सर ! एक बात पूछूँ—कहते हुए वह 'अधिक समीप आ गई। आयंगर की आँखों में आँखें डालती हुई, किसी रहस्य भरी मुस्कान के साथ धीरे से बोल उठीं—'सरकार मेरे, पसंद है न वह नाज़नीन ?'

आयंगर सुनते ही सकपका गया, किन्तु स्थिति हाथ से निकलते देख बोल उठा—'ओह, यह बात है ? भई बत्रा जी। आप भी कमाल ही हैं। खैर !'

'खैर क्या इसमें' ? फिर हम लोग सरकार के कब आयेंगे काम? ... ... वैसे काम बहुत 'ही कठिन, और जोखिम भरा है फिर भी यह बत्रा भी मिट्टी की माधो नहीं है।'—खिलखिलाकर हँस पड़ी तो मोतियों सी दंतपंक्ति चमक उठी।

'नहीं,-नहीं, बत्राजी ! प्लीज डोण्ट डू दिस फॉर गॉड सेक—मैं तो बस वैसे ही' कहते ही वाणी रुक गयी।

'नहीं, सर ! ऐसी कोई मुश्किलात नहीं हमारे लिये। हमारी हदबंदी में कोई बात जोखिम भरी हो ही नहीं सकती। मैंने तो यूं ही कह भर दिया था। आपका इशारा भर चाहिये—फिर देखिये न हम लोगों का भी करिश्मा'—आयंगर की दाहिनी करतली को धीरे-से दबाते हुए वह फिर मुस्करा दी।

'बोलो न भई !'—मधुर मनुहार इस बार प्रिया के थिरकते अधरों से निकाली। लेकिन आयंगर की निगाह नीचे झुकी हुई धरती की उस गेरुआ धूल को ही देखती रही जो मल्होत्रा साहब के स्वागत के लिए बिछायी गयी थी। लेकिन प्रिया ऐसे ही छोड़ने वाली कहाँ थी। फिर वही मनुहार—'बोलो न, भई !'—बिछलती चाँदनी-सी मुस्कराहट से चेहरा चाँद-सा खिल उठा।

'अच्छा, अच्छा—भई ! कभी जरूरत महसूस हुई तो—

'तो क्या ?'

'अर्ज करूँगा ही'—अपना बैटन काँख से हाथ में लेते हुए उसने धीमे से कह दिया। तभी अर्दली भी फाइलें लेकर आ पहुँचा। आयंगर तपाक से जीप में जा बैठा, संभ्रान्त-सी उन महिलाओं के अभिवादन के साथ ही जीप तुरंत सड़क पर दौड़ पड़ी।

और बत्रा और प्रिया अपनी विजय का गर्व वक्ष में दबाये, फूली-फूली सी अपने चैम्बर में लौट आईं।

पाँच

अमावस का घनघोर अंधेरा। आसमान पर बेमौसम ही घनघोर बादलों का समारोह। कुतुब के दालान का निर्जन एकान्त। सारा वातावरण भाँ-भाँ कर रहा है। फिर भी सुदूर अंचल के किनारे कुछ चलती फिरती छायाकृतियाँ सी दीख रही हैं। शायद गार्ड गश्त पर हैं। महीना भर ही

हुआ होगा—कितना भयंकर हादसा था वह। कुतुब है न यह, बिजली के फ्यूज उड़ते ही रहते है इस इलाके के। न जाने कितने प्राणियों की अतृप्त आत्माएँ अब भी यहाँ भटक रही होंगी। दर्द से आहत जीवन उतनी ही ऊँचाई से छलांग लगाता है न— जितनी ही गहरी और दारुण वह आत्म-पीड़ा रही हो। दर्द की गहराई और कुतुब की ऊँचाई का संतुलन ये आत्म-हत्याएँ किस तरह करती होंगी, यह इस मानव मन का एक विस्मयकारी सत्य है ?

और वे टहलती-सी छायाकृतियाँ दालान के बीचोबीच आकर एकाएक रुक गयी। पता नही, क्या बात है ऐसी कि तभी वे अब धीरे-धीरे कुतुब के समीप पहुँच रही हैं। तभी हंटिंग टॉर्च की चमक क्षण भर चमक कर बुझ गयी। लेकिन उस क्षण भर के प्रकाश ने कुतुब के आसपास का सारा सीमान्त चमका दिया। सचमुच ही ये गार्ड कुतुब के ही हैं। दो कुत्ते भी साथ हैं इनके। वे कभी कभार दौड़ते हुए इधर-उधर फर्श सूंघते फिर रहे है। शायद किसी की टोह में लगे हैं। तभी वे कुत्ते अबउन दूर की झाड़ियों की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। स्पष्ट तो कुछ दीख नहीं रहा, केवल आभास हो रहा है। गार्ड भी उनके पीछे लगे हुए हैं। कोई न कोई बात है जरूर। नही तो ऐसे बेवक्त और इस मौसम के बियाबान घुप्प अंधेरे मे कौन इतनी जहमत उठाये। रात का यह अंधेरा जीवन के इस रहस्य को और भी अधिक अंधकारमय बनाये दे रहा है। यह अंधेरी टोह भी किसी दिन उन्हे उजाला दे सकेगी—शायद यही आशा इन गार्डों को प्रेरित कर रही है।

एकाएक बिजली फिर लौट आई। दूर और समीप के खंभो पर लगी ट्यूब झक् से रोशन हो गई। अंधेरे के इस सागर मे प्रकाश की इन नन्ही-नन्ही नौकाओ का सौन्दर्य भी आँखो को लुभा रहा है। टोहता वह कारवाँ अब दूर से ही दिखाई देने लगा है—दो तीन जन ही तो हैं, और दो अदद कुत्ते भी। कितनी देर से चल रहा है यह कार्यक्रम। चप्पा-चप्पा टोहा जा रहा है। कभी रुक-रुक कर कुछ बतिया रहे है वे लोग। तभी पूर्व की ओर से घरघराती आवाज सुनाई दी। लगता है कोई गाड़ी चली आ रही है। वो लो ! हैडलाइट की चमक। सचमुच गाड़ी ही है। वह दालान से दूर

एक मोड़ पर ही आकर रुक गई। पी. जी. की ध्वनि सुनते ही गार्डों ने भी सीटी बजाई। दूर-दूर की झाड़ियां टोहते कुत्ते दौड़ते हुए उनके समीप आ पहुँचे। वे लोग तेज कदमों से उसी ओर रवाना हो गये। पुलिस की मेटाडोर इन्तजार जो कर रही है।

निकट पहुँचते ही एक पुलिस अधिकारी आगे की सीट से नीचे उतर आया। कुत्ते मुँह उठाये, दुम हिलाते हुए घुरंघुरं कर उठे तो उसने बेटन से पीठ थपथपाते हुए कहा—डीयर डेनियल! यू डीयर डॉली! नाउ गो इन, गो इन। संकेत पाते ही वे मेटाडोर में पिछले फाटक से घुस पड़े। आराम से एक-एक सीट हथिया ली। लेकिन वह पुलिस अफसर, उनके वे साथी अब भी नीचे खड़े-खड़े बतिया रहे हैं।

'आज कुछ और भी…?'

'कुछ भी नयी बात नहीं। दिन भर रहे हैं यहीं, पर किसी ओपयूमो और किलर को अब तक नहीं देखा। लोग भयभीत जो हैं। हां दो एक मोटर साइकिलें इधर ही दौड़ लगा गयी थीं। कुतुब ही बंद है, तो कौन आयेगा इधर?

'नहीं जी।—यह "हार्टिंग' तो चलती ही रहती है—'हार्टिंग' और हादसा।'

'अटूट क्रम है ऐसा—इसी जीवन का।'—और रोशनी फक् से अकस्मात् फिर बुझ गयी। बातचीत अंधकार में फिर डूब गयी। लाइटर का क्षीण प्रकाश—लोगों ने अपनी-अपनी सिगरेट सुलगा लीं; मौन खड़े-खड़े जैसे उस अंधकार की गंध ही पीते रहे। अचानक हवा में थरथराती आवाज सामने की ओर गूंजती सुनाई दी। हैड लाइट की एक चमक। चमक के साथ ही शायद कोई मोटर साइकिल पलक झपकते ही पीछे की ओर मुड़ पड़ी और तेजी से दौड़ती भागी जा रही है।

टोहते कारवां ने मामला तत्काल भांप लिया, और वह मेटाडोर भी तुरंत ही उसके पीछे दौड़ने लगी। यह पीछा निरंतर चलता ही रहा। चौराहों और मोड़ों को पार करती हुई वह मोटर साइकिल और मेटाडोर

बेतहाशा भागी जा रही हैं। आगे की सीट पर बैठे अधिकारी अब उसे साफ साफ देख रहे हैं। दोनों कुत्ते सीट छोड़, अधिकारी के कंधों पर मुँह टिकाये, मोटरसाइकिल को घूरते जा रहे हैं।

और तभी अचानक मोबाइक की गति जरा सी धीमी हुई कि वह न्यूगुलमोहर कॉलोनी की ओर मुड़ चली—फिर वही तेज रफ्तार—हवा पर तैर-सी रही है अब वह। मेटाडोर पीछे छूट-सी रही है। पुलिस अधिकारी ने तभी मेटाडोर धीमी करने का आदेश दिया और थोड़ी ही दूर जाकर उसे सड़क किनारे लगवा दी। वे लोग फिर नीचे उतर आये। सिगरेटें फिर जल उठीं तो खड़े-खड़े अंधेरे में कश खीचते हुए बतियाने लगे।

'देखा, यह न्यू गुलमोहर कॉलोनी है। संभव है इन अपराधों को दिशा दृष्टि यहीं से मिलती रही है।'

'शायद।'

'शायद नही' यही सच है। हमें भाँपते ही देवता कैसे कूच कर गये? इतनी अंधेरी रात और भाँ-भाँ करता कुतुब का वह दालान—कौन मटर-गश्ती करेगा इस वक्त?'

'ऐसा करें न, अब पैदल ही—इन दोनो साथियों के साथ इसी ओर तुरंत ही क्यों न चलदें।'—कहते ही सभी के हाथ अपनी लोडेड रिवाल्वर टटोल उठे। ड्राइवर को सकत करते हुए कहा 'तुम कुछ देर बाद, बिना किसी रोशनी के हमारे पीछे चले आना। 'जी!'—वर्दी में कसमसाते उसने सैल्यूट किया।

कारवाँ फिर पैदल ही चल पड़ा—आगे-आगे डैनियल और डॉली, इधर-उधर कुछ सूंघते से चल रहे है। पांचेक मिनिट बीते कि वे दोनों एक दूसरे को काटती हुई दो सडकों के मिलन विन्दु पर आ ठिठके। सैक्टर नं. 4 और सैक्टर नं. 8—दोनो ही दो विपरीत दिशाएँ। दो एक मिनिट और बीत गये। दोनो कुत्ते सै. न. 8 के मार्ग पर चल पड़े तो सभी उन्हीं के पीछे हो लिये। थोड़ी दूर चलकर फिर संशय का अगला चौराहा आ गया। इस वार उनकी भटकन कुछ अधिक देर तक चली, पर सही रास्ते की खोज

आखिरकार कर ही ली गयी। वे सभी चुपचाप दाहिने वाले मार्ग पर बढ़ चले।—शायद यही मार्ग यमुना के किनारे तक जाता है।

'हाँ-हाँ—वहीं चल रहे हैं न, हम।'

'फिर'—पराट कर पूछ लिया।

'जो भी होगा, देखा जायेगा'—और कारवाँ के कदम और तेज हो चले। करीब बीस मिनट बाद कुत्ते फिर सूंघते-सांपते एक मोड़ पर आकर रुक गये! इधर-उधर पूंछ उठाये दूर-दूर के बंगलों के अंधेरे दालानों को झाँक आये। ऊपर आसमान मे घने बादल लूम रहे हैं, ठीक उन्हीं के नीचे इस सैक्टर के सभी बंगले घुप्प अंधेरे मे ऊंघ रहे हैं।

और कुत्ते कुछ ही क्षणों के बाद फिर लौट आये, फिर आगे उसी तटवर्ती रास्ते पर चल पड़े! खोजी कारवां फिर चल पड़ा। चंद मिनिटों बाद डम्मर की यह सड़क समाप्त हो गयी, पर कुत्ते अब भी पूंछ उठाये आगे चले जा रहे हैं। कुछ ही दूर पर ईंटों के बने चार-पांच कमरों के समूह के पास यकायक रुक गये। अधिकारी की उस खोजी दृष्टि ने भी सारा वातावरण तुरंत ही भांप लिया।

'तो, ये है वह तुम्हारा अड्डा! बोलो क्या करना है अब?'—धीरे से फुसफुसा दिया। दोनों कुत्ते एक बड़े कमरे के चबूतरे पर खड़े-खड़े पूंछ हिला रहे हैं, जैसे कोई अजानीगंध उन्हें बेचैन किये हुए है। अधिकारी ने देखा—दरवाजे के किवाड़ो की फाँक से चिराग की मद्धिम रोशनी झाँक रही है। बाहर की इस फुसफुसाट और अशान्त हलचल से कमरे के अंदर का माहौल जैसे एकदम चुप हो सो गया है।

अधिकारी ने तभी वापसी का संकेत किया, दोनों कुत्ते चबूतरे से कूद उसकी कदमबोसी करने लगे। वे लोग धीरे-धीरे चलकर फिर सड़क पर आ गये। अपने साथियों की ओर देखते हुए धीरे से कहा—'चलो ऑफिस लौट चलें।'—और उन लोगों ने देखा कि सामने से घर्र-घर्र करती धीमी रफ्तार से कोई गाड़ी उसी ओर चली आ रही है।

'अपनी ही है'—टोहते हुए किसी ने कह दिया।

'हो सकता है'—कि इतने में मेटाडोर समीप आकर रुक गयी। सभी लपक कर अंदर जा बैठे, और मेटाडोर घूमकर पुलिस के प्रधान कार्यालय की ओर तेज़ रफ्तार से दौड़ पड़ी। अब सभी जैसे मन ही मन डूबे से कुछ सोच रहे हैं। आधा घंटे से भी अधिक हो रहा है पर उस सुनसान मौन चीरती हुई दौड़ती मेटाडोर में अब भी वे तल्लीन बैठे हैं। अनेक चौराहों, पार्कों और सड़कों को अपनी हैडलाइट से रोशन करती मेटाडोर ज्यों ही केन्द्रीय कार्यालय की उस शानदार इमारत के दालान में घुसी कि बिजली फिर लौट आई। फिर चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। पोर्टिको के नीचे मेटाडोर आकर रुक पड़ी। ड्राइवर ने उतर तुरंत अगली सीट का फाटक खोल, खट से सैल्यूट किया। डी. वाई. एस. पी तुरंत नीचे उतर आये। उनके पहले ही सभी लोग गाड़ी से बाहर आ खड़े हो गये। कुत्तों को अपने सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने का आदेश दे, डी. वाई. एस. पी. ने अपने साथियों से उनके चैम्बर में चलने का संकेत किया।

अपनी रिवॉल्विंग चेयर पर बैठते ही उन्होंने कॉल बैल का बटन दबा दिया। सभी सहयोगी उनकी मेज के सामने बैठे ही थे कि अर्दली अंदर घुस आया और सैल्यूट ठोकी।

'चार कॉफी और कुछ खाने को भी—तुरंत ले आओ!'—आदेशात्मक आवाज गूंज उठी।

'जी'—और अर्दली उलटे पाँव लौट गया।

'सो वी हैव सीन द हाईडिंग डैन'—अपनी कलाई में बंधी घड़ी की ओर देखते हुए बोल उठे। अभी बारह तीस ही हो रहे हैं, सवेरे चार बजते-बजते ही इन्हे घेर लिया जाये, क्यो?'—और प्रश्नभरी दृष्टि ने सहकर्मियों की ओर देखा।

'ठीक है, उड़नदस्ते की वान मय कुमुक के पहुँच जाये। तीस जवान कॉफी है; फिर हम लोग भी तो होंगे ही।

'मैं भी रहूँगा न साथ, मोर्चा लेते ही धर लेंगे। शायद है, कुछ मुकाबला भी हो तो ...'

'तो क्या, तैयार हैं न हर तरह से। लेकिन''''लेकिन बात यह है कि चिड़ियाएँ अभी ही घोंसला छोड़ फुर्र न हो जायें !'

'यस यू आर राइट—अभी हाल चौकस गार्ड भिजवाये देते हैं।'—डी. वाई. एस. पी. ने तुरंत फोन उठा लिया। एमर्जेन्सी कम्पनी इन्चार्ज को रिंग किया—'हलो ! कौन, आप हैं ? यह मैं आयंगर बोल रहा हूँ। ऐसा है'''छः सशस्त्र गार्ड' तुरत चाहिये, हाँ'' हाँ'''उन्हें भिजवा ही दीजिये। और' सुनिये'' हाँ आँ और भी आवश्यकता है''''तीस का पूरा उड़न दस्ता जायेगा और हाँ-हाँ तीन बजे ठीक ड्यूटी पर हाजिर हो जायें''''ठीक है न ? '' हाँ आँ '''हो भी सकता है, सभी सूत्र हाथ लग जायें''''हें हें हें हें'''' वह तो मेहरबानी है आपकी''''''''''सारा मामला फिर सी. बी. आई. ही देखेगी'''' हाँ कुछ कारगुजारी अपनी भी तो '''हाँ ऽ ऽ ऽ आँ, अभी अर्ज करता हूँ '' साहब तो आज यहीं हैं''' अभी अर्ज करता हूँ।''''''

'बड़े साहब ? '''हाँ हाँ इस कारगुजारी के बाद ही''''अच्छा, अच्छा, गुडनाइट !'—और खट से चोंगा रख दिया।

'गार्ड आने ही वाले हैं, पूरी हिदायत के साथ उसी जगह अभी हाल भिजवा देना।'—और आयंगर हौले से मुस्करा दिये।

'हो सकता है—इन लोगों में वे लोग भी हों ?'

'क्यों नहीं उम्मीद तो है—वे ही लोग हैं ये जिन्होंने कुतुब को उस रोज़ कब्रगाह ही बना दिया था''''ये तो '' आदतन अपराधी हैं। हो सकता है आज रात भी किसी शिकार की टोह ही में निकले हों—कहते-कहते साश्चर्य आँखें विस्फारित हो गयी। तभी अर्दली कॉफी की 'ट्रे' लिये अंदर आ गया, करीने से प्याले सजा दिये और ताजा गंध से महकती कॉफी से लबालब भर दिये गये ! सभी ने बढ़कर ब्रेड पकौड़े के 'पीस' उठा लिये। कॉफी की 'सिप' लेते ही सारी थकान और उनींदापन दूर हो गया।

और इसी तरह कुछ क्षणों तक उस महकती गर्म कॉफी के घूँट घुटकने में बीत गये। दो-दो प्यालों का फिर एक दौर। चार-चार पीस ब्रेड पकौड़े से उन थकी-थकी रगों में जैसे ऊर्जा फिर लौट आई। इतने ही में एक दीवान ने चैम्बर की चिक हटाते हुए प्रवेश कर सैल्यूट किया।

क्या बात है ?'

'गार्ड हाजिर हैं, सर !'

'तो बाहर मुड्ढों पर बैठाओ न, साहब लोग आ ही रहे है, सब कुछ समझा देंगे।'

दीवान तुरंत ही बाअदब बाहर निकल आया।

'परिस्थिति की गंभीरता को समझा दीजियेगा इन्हें। ऐसा न हो कि चिड़ियाएँ फुर्र ही जायें और हम हाथ ही मलते रह जायें'—कहते हुए आयंगर ने फिर फोन उठा लिया और डायल घुमाने लगा। उसके वे तीनों साथी भी तत्काल उठ खड़े हुए, सैल्यूट करते ही घूमकर बाहर निकल आये। थोड़ी ही देर में रिंग फिर बज उठी।

'हलो, हलो ! सर ! " आयंगर स्पीकिंग""यस, सर !""मामला कुछ ऐसा ही है इसीलिए तकलीफ दी है""जी " जी हाँ ऽऽ आँ जी"" हालात साफ हो रहे हैं""प्रॉब्लम " जी हाँ " गुत्थी सुलझ सकेगी " जी ? ""जी हाँ बन्दोबस्त पक्का है " गार्ड रवाना हो चुके हैं""जी ?""जी हाँ मैं खुद इस मुहिम पर जा रहा हूँ ' कोई कोर-कसर नहीं रक्खी जायेगी"" खैर मालिक की मेहर है तो सब ठीक ही होगा' " और कुछ देर तक मौन। आयंगर चुपचाप एस. पी. के आदेश को सुन रहे है""तभी अचानक ही"" जी, आपके आदेशों का पूरी तरह से पालन होगा " लेकिन " जी ? हाँ ऽऽऽ आँ""पर, आगे तो सभी आप पर ही निर्भर है ""कौन जाने अभी कौन-कौन लोग हैं उनमें ?""भनक पड़ी है ? क्या ?""जनाब आई. जी. साहब फरमा रहे थे—कल ?""हम तो हुक्म को अंजाम देने वाले हैं"" फिर आगे आपके जैसे आदेश""!'

'हाँ, मुहिम के बाद ही खिदमत में अर्ज कर दूँगा वह तो मेरा फर्ज है, बंदा हमेशा फर्ज मंद ही रहा है ""इत्मीनान रक्खें !""वह तो कृपा है, आपकी " भरोसा है तभी तो जी, जी, जी हाँ !""'और उसने चोगा खट से रख दिया। निगाह उठी तो गांधी जी के उस चित्र पर जा टिकी " बाँये हाथ में लाठी लिये—कदम-कदम बढ़ाता-सा दांडी यात्रा का वह दृश्य"" लगा कि वह आज भी कितना प्रासंगिक है।

नीचे ही तो लिखा है""अकेला चल रे।'

—: o :—

छः

दैनिक 'टाइम्स' का पहला पृष्ठ कुतुब की सुर्खियों से फिर मुखरित है। इस महानगर के तमाम अखबार, गयी रात की उसी 'न्यूज' को आकर्षक सुर्खियों में प्रकाशित किये हाथों हाथ बिक रहे हैं। मुहिम की झलकियाँ भी आज कम महत्वपूर्ण नही है। महानगर का कोई भी सबेरा, इन सवेरे के अखबारो के बिना अब कैसे हो सकता है? हर सबेरा जैसे हत्याओं, गोलीकांडों, बैंक डकैतियों, आगजनी, बलात्कारो और दहेज की आग में जले-भुने शवो की तस्वीरों और खबरों से भरा-पूरा होता है।

सबेरे का नाश्ता कैसे इनके बिना बेस्वाद हो जाता है, आज—उसका सहज ही इससे अनुमान हो जाता है।

यमुना के किनारे बसे धोबियों के वे घर भी दृष्टि में चित्रों की तरह उभर रहे हैं— ये भी सरकारी मुलाजिम जो हैं? सिपाहियों और अफसरो की वर्दियाँ इन्ही के हाथों जो धुला करती हैं। कम नही है ये भी "कई साहबों और मेमसाहिबाओं के चहेते हैं, तभी मुफ्त की मय, नियमित रूप से पीने को मिला करती है। कई सूत्रों के सूत्रधार हैं ये।

लेकिन आश्चर्य तो यह कि कोई प्रत्याक्रमण ही नही हुआ। नशीली नीद की सुर्खरू परियों से खेल जो रहे थे सब। वह मद्धिम चिराग तब भी जलता रहा है। बोतलें और प्याले—सभी बेहोश से इधर-उधर लुढ़के हुए हैं। आमलेट के अवशेष और 'सॉस' से चिपचिपाती वे तश्तरियाँ, उन्ही के इर्द-गिर्द उलटी-सुलटी पड़ी है।

पूरे आठ जन—खुली-खुली छातियो का यह नृशंस और खूंखार साहस जैसे निश्चित सो रहा है। लेकिन एक ही हवाईफायर के धमाके से उचक कर उठ खड़े हो गये। हथियारों की ताबड़तोड़ खोज के पहले ही दबोच लिये गये सब। दो एक तो आँख ही मलते रह गये। पूरी छानबीन हुई, पिस्तौलें और रिवॉल्वरें तो थी हीं, हथगोले भी मिले। कृपाण और चाकू तो ढेर सारे है, जीवित कारतूस भी हाथ लगे। सभी के चित्र अखबारो की

सुर्खियाँ बने हैं, आज। परखती नजरों ने पहचान लिया है कि ये हथियार इन्हें कहाँ से मिले होंगे। पर, इस विषय पर सभी तो मौन हैं। फिर अपनी ही जंघा कौन उघाड़ता है जी? आसपास के सभी कमरों की पूरी तलाशी हुई। शराब की बोतलों के अलावा सोने की चेन और लॉकेट, घड़ियाँ और तीस हजार की वह करेन्सी भी काफी चर्चा का विषय है।

सभी भौचक्के रह गये, पर सभी इतने निर्भीक कि मानो वे कोई बहादुर राष्ट्रभक्त युद्धबन्दी हों। सीना फुलाये वे गर्वोन्नत दृष्टियाँ उस उड़न-दस्ते के लोगों को इस तरह घूर रही थीं मानो कह रही हों कि अपराधी हम नहीं, तुम्हीं लोग हो। जरायमपेशा भी आखिरकार एक पेशा ही है। चाहे उसे फिर किसी संसद की स्वीकृति भले ही न मिली हो। पर, है तो आखिर पेशा ही। और क्या हर एक को अपना पेशा करने की आजादी नहीं होती?—देखते-देखते आयंगर का मन हिकारत से भर उठा।

और तुम लोग भी क्या इसी पेशे के व्यवस्थित गिरोह नहीं हो? आज तो इस देश की हजारों घटनाएँ तुम्हीं लोग नहीं घटा रहे हो? किसी भिंडरावाले के नाम से लाखों रुपये ऐंठने का तरीका फिर कौन सिखाता है? जस्टिस आनंदनारायण मुल्ला को भूल गये इतनी जल्दी ही? जस्टिस तारकुंडे को भी? लाइलाज हो न तुम भी तो। फिर भी हमें अचानक इस तरह दबोचकर डरा रहे हो! हत्याएँ, चोरियाँ, डकैतियाँ, बलात्कार—किससे सम्बन्ध नहीं रहा है तुम्हारा?

तभी ऋता की वह तस्वीर उसके अन्तर्मन की पिछवई पर उभर उठी। कितनी बेरहम पिटाई के बाद उसे लोहिया चिकित्सालय में उस रोज भर्ती कराया गया था। वह लोहिया जिसने नारी जाति की आजादी और उसके जायज़ हक़ हकूक के लिए भारतीय संसद में कई बार आवाज उठाई थी। महज़ एक दरिन्दे थानाध्यक्ष की शिकायतन तबादले पर ऋता की ऐसी निर्मम पिटाई अब तो आम बात होती जा रही है न?—किसी अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाना भी जैसे अब अपराध करार दिया जाने लगा है। और मजा तो यह कि अब विधानसभाओं और संसद में बैठने वाले भी कभी कभी इनके शिकार होने लगे हैं। चलो, यह मर्ज़ भी इस मर्ज़ के मरीज के लिए एक अच्छी शुरुआत है, मन सोचकर कुछ आश्वस्त हो गया। देखा कि सभी अपराधियों के हथकड़ियाँ लग चुकी हैं और वे उस पिंजरेनुमा

ट्रक पर सवार भी हो चुके हैं। अन्य सामान भी बड़ी सतर्कता से उसी में लाद लिया गया तो आठ बंदूकधारी भी उसी मे बैठ गये। इस तरह सवेरा होते न होते वह दस्ता फिर सदर कोतवाली लौट आया।

और आज दूसरे दिन भी अखबारों की ये सुर्खियाँ लोगो के दिलों में कुछ राहत, तो कुछ दहशत ही पैदा कर रही हैं।

'न जाने कितने फोन अब तक किये जा चुके हैं, बआजी !'—गुलजार पारलर में आते ही कह पड़ा।

'आओ न, अंदर ही बैठें; तब फिर बातें होंगी'—वह हल्की-सी मुस्कराहट भी तब न जाने क्यों तुरंत बुझ गयी। दोनों ही बैठक में आ गये। आमने-सामने बैठे कुछ क्षण आसपास देखते रहे। गुलजार रेखा को उस तस्वीर पर दृष्टि जमाये फुसफुसा उठा—'अब क्या होगा, बआजी ?'

'होगा क्या ?'''अरे, होना जाना है ही क्या ?'—आँखों की पुतलियाँ नाच उठीं। 'हमारी ही चिड़ियाएँ हैं ये, हमारे ही पिंजरे मे तो हैं। चाहे इन्हें पिंजरे में रक्खें हम, चाहे जब आजाद कर दें इन्हें। हजार रास्ते खुले हैं। फिर हमे रोकता ही कौन है ?'—और वह सायास फिर मुस्करा दी।

'आप तो ऐसे कह रही हैं, जैसे'''वाणी कहते-कहते रुक गयी तो दृष्टि किसी अजाने भय से पलकों के नीचे थरथराई।

'बुजदिल !'—शब्द होठों से अनायास फिसल पड़े। क्षण भर के मौन का अन्तराल, दोनों की चेतना को अंदर ही अंदर झकझोर गया।

'उस सुरेन्द्र का तो बाल भी बाँका होने का नहीं; कौन छू सकता है, उसे ?''' जिसका सगा चचेरा भाई मिनिस्टर जो है। पूरा गृहमंत्रालय है जिसके हाथ में। क्या करलोगे उसका तुम ?'—वाणी की ऐसी दृढ़ता से गुलजार का भयभीत मन कुछ आश्वस्त हो उठा।

'वैसे तो, बआजी ! पैगोरिया भी कुछ कम नहीं है। बड़े भैया जिलाधीश हैं ही। गये चुनावों मे पैगोरिया ने कोई कम काम किया था ?—लेकिन बआजी !''' इतने लोगों की वह दिल दहलाने वाली ऐसी मासूम मौतें भी क्या कभी रंग नहीं लायेंगी ?''' क्या जानें कब क्या हो जाये ? वह जनता सरकार भी अब आई-गई बात हो गयी। एमरजेंसी के खिलाफ बजने वाली वह नफीरी और वे ढोल नगाड़े कैसे चुप हो गये सब ! ससुरी वह शाह आयोग वाली आकाशवाणी तक चुप हो गयी है।'—फिर किसी अजाने भय से क्षण भर वह दृष्टि पथरा-सी गयी।

'ये मामलात तो सियासी हैं, गुलजार ! तुम इसे क्या समझोगे ? ··· और आज की सियासत भी उतनी ही अंधी है। फिर अपनों की हिमायत आज कौन नहीं करता ? फिर आज की यह सियासत ही कौन सी वेइन्साफी कर रही है। बेटा किसी राम का हो या किसी देसाई का, या किसी और लीडराने वतन का हो—बेटा जब बेटा है, तो भाई भी भाई है ही।

'और खून का यह रिश्ता और उसका गहरा रंग, किन्हीं भी पाक उसूलों के गंगाजल से इतना जल्दी थोड़े ही धुल सकता है, गुलजार ?'— व्यंग्य-भरी वाणी की कुटिलता उस दृष्टि मे झांक उठी।

'बत्राजी !···सचमुच आपके पास आने पर मैं बहुत राहत महसूस करता हूं। लगता है आप तो इस मसले की आलिम, फाजिल है—गहरा दखल है इसमें। फिर···!'—और आवाज यकायक मौन हो गयी। बत्रा ने एक बार उसे घूर लिया, बोली—'हां भई, फिर क्या ?'

'अब, जाने भी दें···शायद उस हालत मे नुकसान तो मुझे ही उठाना पड़े।'

'क्यों, ऐसे हालात क्या हो सकते हैं ? हमारा यह अटूट रिश्ता इतना कच्चा है, क्या ?'—सहलाती आवाज़ होठों से तत्काल फिसल पड़ी।

'मैं तो यूं ही कुछ खामखयाली में था। कभी-कभी शेखचिल्ली की तरह सोचने से भी कुछ सुकून मिलता है न।'

'फिर भी सुनूं तो।'

'यही कि आप इतनी ज़हमत उठाती है—इतनी सूझ-बूझ की धनी होते हुए भी। आप भी···किसी पार्टी में शरीक हो, नुमाइन्दा क्यो न बन जाती ?'

सुनते ही मिसेज बत्रा की आँखें सहसा खुशी से चमक उठीं। मुहूर्त भर मन ही मन डूबी-सी सीलिंग फेन की ओर देखती ही रहीं, सामने ही बैठे गुलजार पर वे आ टिकीं। देखा—कितना जल्लाद है यह, फिर भी मेरे लिये कैसी मीठी बात कह रहा है।' काश ! ऐसा हो हो पाता तो कितना अच्छा होता।···और क्या-क्या नहीं किया अब तक वहाँ पहुँचने के लिए ? कितने पापड़ बेलने पड़े हैं मुझे, गुलजार ! तुम इन सबसे बेखबर हो। अच्छा है, तुम बेखबर ही रहो इन सबसे। जान लेगे तो शायद तुम जैसे इन्सान को भी

मुझसे नफ़रत न हो जायेगी ?""सोचते-सोचते क्षण भर के लिए पलकें अपने आप बंद हो गयीं।

और गुलजार विस्मय-विमूढ सा अब भी उनके सामने बैठा है। तभी सजग हो वह बोल उठी—'गुलजार ! तुम मेरे अच्छे दोस्तों में से एक हो। कितनी सुन्दर कल्पना है मेरे लिए—तुम्हारे इस मन मे—आज ही जाना है यह। पर, इच्छाएँ यदि घोड़े होती तो सभी उन पर सवारी नही करते ? " और " फिर जहमत तो कहाँ नही है—यह सारी जिन्दगी 'पिट फॉल्स' से भरी पड़ी है। पग-पग पर ठोकरें लगती हैं, तभी लुढ़कते-लुढ़कते इन्सान कभी महादेव बन सकेगा न ?'

'तो फिर इस ओर कदम क्यूं नहीं रखतीं" फिर देखिये, मरे इस आई. जी. मल्होत्रा जैसे कई आपकी कदमबोसी करेंगे। तब इस आयंगर के बच्चे की तो बिसात ही क्या है। यह दुनिया तो गोश्तखोर है ही। मुर्दागोश्त तो खाती ही है, पर"!

'जिन्दागोश्त के साथ भी कम जिनाज़बर नही करती। ऐश करती है ऐश ! और गोश्त आज तक इस तरह हाट बाजार में बिकता रहा है।'—और एक चुभते सवाल की नजर बब्रा को ओर उठी तो जैसे उसके हलक को चीरती हुई अन्दर तक उतरती चली गयी। बब्रा क्षण भर के लिए मर्माहत हो उठी। अजानी खीझ और क्षोभ से मन आक्रान्त हो गया। धीरे-से फुसफुसाई—'शैतान !' लेकिन मचलते हुए इन मनोभावों के शिशुओं को आशा की बरबस थपकियों से सुलाते हुए बोली—'गुलजार ! कैसी हकीकत है यह—नफ़रतों से भरी-भरी कि मुझ जैसी अधिकारी औरत भी इसके सामने बेबस है। लेकिन अपना उसूल तो हमेशा से यही रहा है कि हर तरह से कामयाबी हासिल करो—फिर चाहे इन्साफ हो या नाइन्साफ, ईमान से हो या बेईमानी से—हमारे लिए तो यह मकसद ही बड़ी अहमियत रखता है'—आवेश से मुँह तमतमा गया। क्षण भर के मौन ने फिर उकसाया।

'मैं पूछती हूँ तुम्हें कि आज अंधा कौन नहीं है, जो इन ऊँचे-ऊँचे ओहदों की रेवड़ियाँ अपने ही अपनों में नहीं बाँट रहा है—चाहे फिर राज्य के पथ परिवहन निगम हों, नजर विकास न्यास हों, सिंचाई योजना मडल हों, प्रदेश के शिक्षा बोर्ड और विश्वविद्यालय हों या कि भूमि सुधार आयोग

हों—पढ़ते नही हो, देश भर के ये अखबार कितने घोटाले काण्डों का पर्दाफाश नही करते हैं क्या ? हो सकता है ? कुछ न कुछ गलत भी छप रहा हो। पर मैं पूछती हूं कि ऐसे हालात नही है इस देश के ? कौन है जो पीछे रहना चाहता है आज ?'— और बड़े गर्व से वे आँखें गुलजार को देखकर मुस्करा उठीं। गुलजार अब तक पूरी तरह आश्वस्त हो गया था; मन से विषाद की धुंध छंट गयी तो उजली रोशनाई से मन का आंगन दिप उठा। हँसते हुए बोला—'बआजी ! सूझ-बूझ की कितनी धनी है, आप ? नजरिया कितना साफ-साफ और मौजू लगता है अब। लेकिन एक बात पूछूं ?'

'हाँ, हाँ, क्यूं नहीं, बोलो तो ?'

'इस बहती गंगा में हाथ धोने से पीछे क्यों रहें, हम ?

'पीछे तो कौन रहेगा और गुलजार, हम भी किसीसे पीछे कहाँ है ? है न सच यह ?'—रहस्य भरे संकेतों से नजर पुलक उठी। फिर बोली—'गुलजार ! यह जिन्दगी तो गुलजार ही रहने वाली है, फिर चाहे कैसी ही हुकूमत आये, यह हमारे बिना चल ही नहीं सकती।'

'लेकिन, जब हम नही थे तब भी हुकूमत तो चलती ही थी, बआजी ? जिन्दगी के ये मेले हरगिज् कम होने वाले नहीं हैं, चाहे उस वक्त हम रहें या न रहें !'

'बड़े फलसफे झाड़ रहे हो बच्चू। मेरे कहने का मतलब है कि हम जैसे लोग तो हुकूमत मे हमेशा ही रहे है, और हम जैसे भी कभी कम होने वाले नहीं हैं। ऐसा नही होता तो रघुवंशियों का वह महान वंश ही कभी खत्म नही होता। महकती वासना के अंगरागों की गंधाती उस गंध से समय की इस सरयू का पानी भी तपेदिक के उन कीटाणुओं से निर्मल कब रह पाया है ? आज भी अग्निवर्णों की कमी कहाँ है इस धरती पर ? मैं भी डी. ए. वी. कॉलेज की कभी छात्रा रही हूं—बी. ए. तक पढ़ी है संस्कृत —यह सब जानती हूं मैं भी गुलजार।'—और क्षण भर का मौन दोनों के बीच तैर गया। एक दूसरे को विस्मय भरी दृष्टि से ताकते रहे।

'……जानते ही हो, कैसी-कैसी चिड़ियाएं आती रही हैं इस विशाल पिंजरे में ? अजीबोगरीब हालातों से भरी है ये सैंकड़ों सड़ी-गली जिन्दगियाँ। इसी पिंजरे में सर पटक-पटक कर दम भी तोड़ती रही हैं, और जो फिर इससे बाहर भी निकल पाती है—मैं पूँछती हूँ—क्या वे फिर दोजख नही

जोतीं ? इस देश में न जाने ऐसे कितने कारागार हैं, नारी निकेतन भी; समाज कल्याण के तो सैकडों संस्थान हैं ''''''तुमने ठीक ही कहा था कि यह दुनिया वास्तव में गोश्तखोर है। इसका तन और मन—दोनों ही गोश्त पर जिन्दा हैं—चाहे फिर वह मुर्दा गोश्त हो या कि जिन्दा हो।'—हताशा की हल्की-हल्की कालिमा उस तमतमाये चेहरे पर फैल गयी तो वह अन्तर्मुखी हो गयी। सोच मे डूब गयी—क्या मैं भी अपनी बोटियाँ कभी-कभी इन कुत्तों से नहीं नुचवाती रही हूं ? हाय रे, सोना और सुन्दरता—क्या यही आखिरी हश्र है इस दुनिया का ?—और तभी वह मन किसी गहरी गमगीन भाव-लहर से और भी आतंकित हो उठा—क्या होगा उस रोज जब इस मुखड़े की ये झुर्रियाँ इन उबटन-अंगरागों से भी मिटाये नहीं मिटेंगी ?—और दिल की तमाम ज़मी एकबारगी अन्दर ही अन्दर हिल पड़ी।

तभी बंगले के फाटक के बाहर घर्रर करती दो जीपें आकर रुक गयीं। हॉर्न की आवाज गूँजी तो गुलजार और बत्रा की दृष्टियाँ तुरन्त उधर ही दौड़ पड़ीं।

'कौन ?'—दोनों ने हठात् विस्मय से एक-दूसरे को देखा। फिर सजग हो गये। बत्रा का हाथ कॉल-बैल पर गया कि घण्टी प्रत्यावर्तन में झनझना उठी।' 'आ सकता हूं'—कहते हुए आयंगर ने 'पी' कैप हाथ में लिये चैम्बर मे प्रवेश किया।

'आइये न !'—बत्रा और गुलजार ने तपाक से उठकर सैल्यूट किया। 'बैठिये, आज इस वक्त जनाब का ?'''''''''एक सहमी-सी मुस्कराहट ने स्वागत करते हुए कहा।

'आपकी सेवा में तो आना ही था। बहुत दिनो से सोच रहा था, पर समय ही आज मिला है। कुछ काम की बात भी करना है ही'—और वह केन सोफे पर पसर गया।

'और हाँ, गुलजार ! तुम जरा बाहर घूम आओ न !'—बटरफ्लाई-सी मूँछों से सज्जित वे होंठ फिर मुस्करा उठे।

'यस, सर !—गुलजार तपाक से उठ खड़ा हुआ, सैल्यूट किया और तुरन्त बाहर आ गया। बत्रा की सशंक दृष्टि उसे बाहर जाते क्षण भर देखती रही, फिर लौटकर आयंगर पर आ टिकी, मानो पूछ रही हो—'कहिये ?'

पर. दो-एक क्षण फिर मौन ही में बीत गये। तभी मौन तोड़ते हुए आयंगर ने कहा—'बत्राजी !'

आदतन मीठी मुस्कराहट से बत्रा ने उसकी ओर देखा ही था कि फाटक के बाहर कुछ शोर गुल सुनाई दिया। बत्रा बेताब हो उठ खड़ी हुई तो आयंगर ने धीरे-से हाथ का संकेत करते हुए कहा—'कुछ नही है, बत्राजी ! शायद केन्द्रीय जांच ब्यूरो वाले गुलजार को कुछ तहकीकात के लिए ले जा रहे है।'

'तहकीकात के लिए ? ···· क्या चाहते हैं उससे सर ?'—भयभीत दृष्टि से बेचैन हो उठी।

'पता नहीं, मैं तो अपनी जीप लेकर आपसे मिलने आ रहा था कि ब्यूरो वाले भी रास्ते ही में मिल गये। अपनी जीप से उतर कर डी. वाई. एस. पी. मेरे पास ही आ बैठे। बोले, हम भी वही चल रहे है। बातचीत से मालूम हुआ कि उन्हें गुलजार से कुछ पूछताछ करना है। यहाँ आये तो देखा कि गुलजार तो सचमुच यहीं बैठा हुआ है—शायद इन लोगों ने पहले ही फोन से पूछ लिया होगा आपसे ?'

'नही तो, मुझे किसी ने फोन नही किया, और करते भी तो क्या ··· ?' वह हठात् चुप हो गई।

'तो क्या, बत्राजी ?'—कुरेदता प्रश्न।

'मैं तो कदापि नही बताती कि गुलजार इस समय मेरे यहाँ है। बहुत ही ढीठ होते चले जा रहे हैं ये सी. आई. डी. वाले। आखिर समझते क्या है अपने आपको ?'—आवाज की गर्माहट से सुदेश का गला फूल गया।

'न, न, नाराज होने की क्या बात है, बत्राजी ? वे तो बेचारे अपनी ड्यूटी पर ही तो आये थे—जैसा कि आदेश था, नही तो आपके बंगले के इस आंगन में इन लोगों का काम ही क्या है ?'—और वे अधर हल्के से मुस्करा दिये। बत्रा ने देखा तो असहाय-सी देखती रह गयी। क्षण भर वह गर्वीली नज़र नीची हो गयी। सोचती रही,—'बत्रा इस तरह शिकस्त नहीं खा सकती, आयंगर ! ·······यह तो वह धातु है जो किसी भी ताप से पिघलती ही नहीं। तुम्हारे ही सरीखे न जाने कितने लौंडों को अब तक थप्पियाँ गिना चुकी हूँ मैं। जिस टकसाल में मैं ढली थी; वह कभी की बन्द भी हो

चुकी है—कहाँ से और पाओगे मुझ जैसा ?""" तुम्हारा साबका ही अब पड़ा है मुझसे—देखें अब, क्या रंग लाती है यह बात ?—और वह तुरन्त ही सजग हो गई। पूछा-'हाँ तो सर, इस नाचीज पर कैसे कृपा हुई आज ?'

' """ सिर्फ आपको सतर्क करने के लिये, बत्राजी !'—वह गम्भीर वाणी आँखों में फिर मुस्करा उठी।

'ऐसा है ? सर, कोई खास बात है मेरे लिए ?'—गम्भीर जिज्ञासा आँखों में फिर झांक उठी।

'वह तो आप देख ही रही थीं'· और बत्रा की आँखों में गहराई में कुछ टटोलते हुए कहा—'गुलजार अब सी. बी. आई. की पूरी गिरफ्त में है, बत्राजी ! सावधान ही रहियेगा। आपका मुझ पर स्नेह रहा है, इसलिए उपस्थित हुआ हूँ ""और""' वह कहते-कहते सहसा चुप हो गया।

'और क्या ? सर !'

'यही कि आपका व्यक्तित्व तो हमेशा सुसंस्कृत और सुन्दर रहा है। इस दलदल से दूर ही रहे तो अच्छा होगा। गुलजार कैसा है, आप तो इसके सारे रिकार्ड से खूब-खूब परिचित हैं ही।'

'हूँ""तो आपको मुझको सतर्क करने की यह प्रेरणा भी खूब ही रही। फिर भी गुलज़ार-गुलज़ार ही है, और बत्रा-बत्रा ही।'—एक रहस्य भरी नज़र ने उसे टोह लिया।

'ठीक है, बत्राजी—पर क्या आप यह नही मानतीं कि गुलजार अब तक आपही के कारण गुलजार है, नहीं तो यह गुल इस समय की टहनी से कभी का झर न गया होता ?'

'वाह, सर ! क्या खूब। आप भी कभी-कभी शायरी करने लगते हैं।' फिर टकटकी लगाये देखते हुए बोली—'किसी और ने भी. मेरे लिए कुछ कहलाया है ?'

'जी, बड़े साहब ने !'

'बडे साहब ने ?""मल्होत्रा साहब ने ?'—चकित हिरणी-सी उस निगाह में स्निग्धता छा गयी। 'क्या कह रहे थे, साहब ?' 'बस कि इतना-सा आगाह कर दूँ, आपको""एण्ड आई हैव डन माई ड्यूटी, मैडम !'

'थैंक यू, सर !'

ग्रौर दोनों ही तपाक से उठ खड़े हुए, बतियाते हुए फाटक तक ग्रा पहुचे। बम्रा ने हाथ जोड़कर ग्रभिवादन किया तो जोप ग्रायंगर को लेकर उसके बंगले की ग्रोर दौड़ पड़ी।

बम्रा क्षण भर खड़ी-खड़ी तकती ही रही, फिर ग्रनमने भाव से अंदर लौट ग्रायी। एक क्रूर निश्चय—काले नाग की तरह मन के किसी अंधेरे बिल से निकलकर, फन फैलाये फुत्कार उठा! बम्रा ग्रपनी सुडौल बाँहों को निहारते हुए सोफा चेयर मे धँस गयी तो ग्राँखे चुपचाप ग्रपने ग्राप मुंद गयीं।

सात

'सेल' नं. 13। ग्राधीरात का सन्नाटा चाँदनी के दूधिया प्रकाश को चुपचाप पी रहा है। बम्रा ग्रौर मिसेज प्रिया कोई मत्रणा करते हुए, धीमे कदमों से उमी ग्रोर बढ ग्राई। यह वही 'सेल' है जहाँ से महिला कैदियो के उत्पीड़न का सिलसिला शुरू होता है। शायद फूलजहाँ ग्रौर ऋता भी कुछ ग्रन्य महिलाग्रों के साथ इसी लिए इसी बैरक मे रक्खी गयी हैं। ऋता तो वैसे भी ग्रन्डर ट्रायल है—एक लम्बी ग्रवधि से जेल यातना जी रही है। कोर्ट में इस्तगाह तक पेश नही किया गया है। ग्रन्य कैदियो में एक विकृतमना ग्रपराधिनी भी है। दादा है वह। जब चाहे जोर-जोर से चिल्लाती ग्रौर नाचती रहती है—कटखनी, गंदी ग्रौर गलीच। हर समय एक ग्रातंक की तरह ग्रन्य 'सेल' वासिनियो पर छायी रहती है। उसकी ग्रश्लील ग्रौर घिनौनी हरकतों का प्रभाव धीरे-धीरे ग्रन्य कैदियो पर भी पड ही रहा है। परस्पर चुम्बन ग्रालिंगन तक तो गनीमत थी, पर गंदी-गंदी गालियों के साथ ग्रपने से कमजोर को दबोच-दबोच कर उस पर सवारी गाँठना जैसी हरकतें ऋता से बर्दाश्त नहीं हो पाती। दो चार बार तो चाँटे खाने तक की नौबत ग्रा गयी। शिकायतों के कारण महिला वार्डरों के कोडे भी कभी कभार खाने पड जाते है।

पर, ऋता यह सब सहती रहती है। जानती है कि यातना तो यातना होनी है, कोई गुलाब के फूल नहीं। सोच मे डूबा मन नहीं जानता कि

इससे कभी मुक्ति होगी भी कि नहीं। उस दिन 'इन्स्पेक्शन डे' की कुछ खबरें, उसी के बावत अखबारों में छपी थी। पहले भी कुछ न कुछ छपता ही रहा था, पर इस देश की धरती पर अभी भी तो इस आंसू भीगी रात का अंधेरा गहगहा रहा है, चाहे फिर इसकी सर्वोच्च सत्ता बाहरी देशों में कितनी लोकप्रिय क्यों न हो।

और ये खबरें फुलझड़ियों की क्षणिक चमक-सी इस गमगीन अंधेरे में चमक कर खो जाती हैं। कभी कभार विस्फोटक पटाखों-सा धमाका भी होता है, और उस वक्त इस अंधी व्यवस्था की सत्ता की नींद हराम जरूर हो जाती है। प्रेस ऐक्ट की बंदिशें लागू होती हैं—जैसे ये अत्याचार अत्याचार ही नहीं हैं। —और ये प्रेस अधिनियम इस सत्ता के कारगर हथियार हैं, जो गाहे बगाहे इस देश को सौगात की तरह मिला करते हैं—भई, मुझे प्यार करते हो तो मेरे इस प्यारे प्यारे कटखने कुत्ते को भी तो प्यार करो। वोट देकर प्रतिनिधि जो चुना है तुमने तो यह सब सहन करना ही होगा। फिर चाहे वह मजदूर अधिनायकशाही हो, चाहे देशी-विदेशी थैलीशाहों का लोकतंत्र या फिर किसी पार्टी का कथित समाजवादी तंत्र ही। वर्षों से विचाराधीन कैदी हैं हम। इसी तरह चलते रहेंगे। फिर यह अंधी सत्ता हम लोगों के लिए सोचे भी क्यों? इसकी तो अपनी ही 'भूमिसेना' है, 'ब्रह्मर्षिसेना' है, 'कुंवरसेना' है, तो 'संघ' भी है। किस तरह वह रियासती रानी सावित्री इसी जेल में इन कैदियों के साथ कुछ दिन रहकर ही विक्षिप्तमन हो गई थी। और सोचते सोचते ऋता ने उस आधीरात में फिर करवट ली। तभी हठात् उसकी अपनी सहेली का वह बुझा-बुझा सा चेहरा मन की समूची पिछवई पर चमक कर फिर अस्त हो गया।

तभी उसे सैंडिलों की धीमी-धीमी आहट सुनाई दी तो सजग हो उठ बैठी। देखा, कोई आ रहा है—कौन हैं ये लोग? चांदनी का वह सैलाब भी आशका की हल्की-सी लहर से थरथरा गया।

बत्रा ने आगे बढ़कर ताला खोल फाटक खोल दिया—'ऋतुम्भरा!' —एक मंद स्वर हवा में गूंजा। इसके साथ ही वे दोनों महिलाएँ अन्दर घुस आईं और आते ही बत्रा ने अपना गदराया हाथ ऋता के कंधे पर रख दिया—'उठो, चलो बाहर कुछ घूम ही लें न!'

पर ऋता न हिली न डुली, चुपचाप बत्रा की मर्मभरी आँखों को ताकती रही।

'उठो भई, अब देर किसकी ? तुमसे आज कुछ काम की बातें जो जो करनी है। तुम्हारी रिहाई का समय भी अब नजदीक ही समझो। आओ, मेरे साथ ऑफिस चलो।'—और कन्धा होले से झकझार दिया। तभी प्रिया बीच ही में कह उठी—'ऋतुम्भरा ! कुछ अपने विवेक से काम लो, भई ! आखिरकार हम भी तो महिलाएँ ही हैं। क्या हम नहीं जानतीं यह कि किसी सस्कारशीला नारी के साथ हमे कैसा व्यवहार करना चाहिए। फिर, तुम तो पढी लिखी, साहसी और सुन्दर भी हो—एक लम्बी जिन्दगी है तुम्हारे सामने। तुम्हारे साथ किसी की भी सहानुभूति होना सहज और स्वाभाविक ही है। आओ, उठो न ?'—और होले से बाँह गहते हुए उसे उठा दिया। वे तीनों ही 'सेल' से चुपचाप बाहर निकल आईं। बन्ना ने पलट कर तुरन्त दरवाजा बन्द किया और ताली घुमा दी।

'टन'—कही जेल के गार्ड ने एक प्रहार से एक ही गजर बजाई। बन्ना ने चौंककर अपनी कलाई में बंधी सुनहरी घड़ी की ओर देख लिया। वे तीनों ही चुपचाप उस शीतल चाँदनी की रूपहली किरणों के उस प्रकाश में चहलकदमी कर रहीं है मानो गन्दे और घिनौने अपराधों की इस दुनिया में कहीं से फरिश्ते उतर कर मुग्धमन टहल रहे हों। कुछ क्षण फिर उस चाँदनी की चुप्पी में बीत गये। तभी प्रिया का हाथ बन्ना ने धीरे से दबा दिया तो उसने कनखियों से उसकी ओर देख लिया। बोली—'ऋतुम्भरा ! इस वक्त हम एक बहुत ही आवश्यक बात तुम्हे बताना चाहती हैं·······और····· वह सब तुम्हारे ही हित में है।'—और प्रिया क्षण भर उसकी ओर ताकती रही। पर, ऋता किसी संगमरमर के बुत की तरह निभ्रान्त और निश्चेष्ट-सी चुप ही रही। प्रिया ने फिर बात उठाई—'तो तुम अब एक स्वच्छ और सुन्दर जिन्दगी की अगवानी को तैयार हो न ? ऐसे अवसर बार-बार हाथ नहीं आते। यह मौका चूकी तो इसी जेल की यह सड़ी जिन्दगी ही जीती रहोगी। बोलो न, भई ! क्या इरादा है सरकार का ?'—उसके दाहिने कपोल पर स्नेह भरी थपकी देते हुए प्रिया सहज ही मुस्करा उठी।

लेकिन ऋता ने उसी अविचलित भाव से एक बार प्रिया के चाँदनी से धुले धुले उस चेहरे को देख भर लिया। तब तक वे उस सघन बोधिवृक्ष के नीचे आ पहुँची, जिसके नीचे ही अनघड़ पत्थरों का एक चबूतरा बना

हुआ है। संकेत होते ही वे तीनों इसी पर आ जमीं। धीमी-धीमी हवा की थपकियों से पीपल के पत्ते मंद-मंद हिल रहे हैं और उस चारु चंद्रिका की नवल किरणें छन छन कर इन पर झरती रही है।

तभी वन्ना ने एक गहरी निश्वास छोड़ते हुए फिर प्रिया का हाथ हौले से दबा दिया। चेतना का स्विच जैसे फिर 'ऑन' हो गया। बोली—'ऋतुम्भरा ! क्या कुछ बना है मानस तुम्हारा ? ... देखा न उस वह अधिकारी किस तरह दबे स्वरों में तुम्हारी ही वकालत उन महानिरीक्षक महोदय के सामने कर रहा था ? शायद तुम में बहुत ही 'इन्टरेस्टेड' है। मैंने तो यह राज़ तभी ताड़ लिया था।...... और ...... और अब तो बात धीरे-धीरे अधिक साफ होती जा रही है। क्यों बन्ना जी, है न सच ?'

'कौनसी बात ?'—ऋता अब अधिक चुप नहीं रह सकी। 'यही कि वह डी. एस पी. तुममें अधिक दिलचस्पी ले रहा है ?' 'कौन डी. एस. पी ?'—तपाक से तमतमाया हुआ तीखा प्रश्न तीर की तरह निकल आया।

'अब बनो मत, ऋतुम्भरा ! क्या तुम नहीं जानती उस आयंगर को, बोलो न !'

'माफ करना, प्रियाजी ! मैं किसी भी आयंगर को नहीं जानती। न जानना ही चाहती हूँ—वाइ यू, किसी को यहाँ नहीं जानती मैं।' 'हूँ बी. एच यू. की छात्रा रही हो न, हमें ही बना रही हो ? क्या वह छोकरा तुम्हारे जमाने में उस विश्वविद्यालय में पढ़ता नहीं था'......और तुमने उसे कभी देखा ही नहीं ?...... अब बनो मत, ऋतुम्भरा हम सारी हिस्ट्री जानती हैं तुम्हारी।'

—'और इसी लिए हमदर्दी है तुमसे'—बन्ना बीच ही में बोल उठी तो ऋता की स्मृतियों की ट्यूबलाइट तुरन्त रोशन हो गयी। 'पर, मैडम ! उस विश्वविद्यालय में उस वक्त भी हजारों छात्र थे। हो सकता है, देखा हो उसे भी। इससे किसी का क्या बनता बिगड़ता है ? कोई मुझ में दिलचस्पी लेता है तो लेता रहे, इससे क्या बनता-बिगड़ता है, मेरा उससे कोई वास्ता नहीं' चापलूसी शक्कर की चाशनी की तरह बूंद-बूंद चूती हुई प्रिया की आवाज फुसफुसाई,—'देखो ऋतुम्भरा ! हम दोनों तुम्हारे ही भले के लिये इस

अधरात के उजेले में अपनी नींद हराम करके भी आई है, क्योंकि हमें तुमसे वाकई हमदर्दी है। मल्होत्रा साहब भी तुम्हारी इस मासूम संजीदगी से उस रोज बड़े प्रभावित हुए थे। हम सब अब चाहते है कि तुम्हारा केस रफा-दफा हो जाय। और इस तरह तुम भी एक खुशनुमा जिन्दगी जी सको........ और रही बात इन उसूलों की, अवाम की सेवा को''''''''वह तो तुम तब और भी अधिक अच्छी तरह से कर सकोगी न !'

—'मैं आपका मतलब ही नहीं समझी। यह सब तो खयाली खुशफहमी है—ऐसे घिनौने और गलीच सामाजिक वातावरण में—जो अब तक अन्याय, शोषण, उत्पीड़न और घोर असामाजिक अपराधों की दुनिया बन चुका है—बिना संघर्ष के परिवर्तन कतई संभव नही है, अब। आप सभी मेरे इतने हमदर्द है—उसके लिये कृतज्ञ हूं, बहिन !'

—'क्या खूब कहा—भाषण देना तो अच्छा जानती हो, ऋतुम्भरा ! लेकिन इन पांचों वर्षों के दौरान तुमने यहाँ की हकीकत को तो जिया ही हैं। बोलो, क्या तुम्हें ताजिन्दगी ऐसे ही सड़े-गले हालात मे रहना पसंद है। क्या है तुम्हारा निर्णय ? लगता है सियासत की कच्ची गोलियाँ ही खेलती रही हो, अब तक। जयप्रकाश और डॉक्टर लोहिया जैसे इन्सान भी जेल के सीखचों की इस बन्द और बीमार जिन्दगी को जीना पसन्द नहीं करते थे—'लाल भगोड़ा'; किताब इसका सच्चा सबूत है न। ''' आजाद होकर ज्यादह आजादी के साथ कारगर ढंग से अपना काम किया जा सकता है—वे भी इस हकीकत को अच्छी तरह पहचानते थे।

'''''' और तुम्हारे पास अब यह मौका आ ही गया है—अधिक आजादी से जीने का। यहाँ बैठोगी तो जिन्दगी भर यही सड़ती रहोगी। इस देश की सुप्रीमकोर्ट भी तुम जैसों को मुक्ति आदेश तो जरूर दे सकती है, पर तुम्हें मुक्ति तब भी नही मिलेगी'—और क्षण भर फिर मौन छा गया।

'क्यों ?'

'—क्योंकि '''''' यह जालिम पुलिस तुम्हारे पीछे हाथ धोकर पड़ी ही रहेगी। कोई भी मामला बनाकर फिर इसी पिंजरे मे भेज देगी, तुम्हें ? बोलो क्या निर्णय है तुम्हारा ?'

'खैर, जिन्दगी इस जेल ही में सड़नी है, तो मैं उसके लिये भी तैयार हूँ, बहन ! मैं अब किसी भी अनहोनी से डरती तो नहीं ·······लेकिन·······!'

'लेकिन क्या ?'

'मेरी भी एक शर्त है ।'—उस स्थिर दृष्टि के अचंचल बोल फूट पड़े। 'तुम्हारी भी शर्त है ?'·······'एक जोरदार ठहाका उस निस्तब्ध वातावरण में गूंज उठा··· ···एक बेबस बंदिनी भी कहती है कि उसकी भी एक शर्त है !'—वज्रा ने फिर सायास ठहाका लगाया । 'तब ठीक है—मुझे तो यही जिन्दगी जीना है'—जैसे सकल्प का दिया फिर एक बार उस मन के स्वच्छ आगन में प्रज्वलित हो उठा । ऋता तपाक से उठ खड़ी हुई ।

'रुको, कुछ तो समझदारी से काम लो, भई । बहुत बनती हो राजनीति की पंडित । ऋतुम्भरा ! मैं अब भी दस साल तक तुम्हें व्यावहारिक राजनीति सिखा सकती हूँ, समझी ? मैं भी कभी यूनीवर्सिटी की उस गर्ल्स हॉस्टल की वार्डन रही थी, जहाँ से तेरे जैसी हजारों छोकरियाँ निकाल चुकी हूँ··· ··· एक वार्डनशिप से यहाँ तक की यह जय यात्रा यूँ ही नहीं हो पाई है ?' - और झटके से उसकी बाँह पकड़कर फिर बैठा दिया। ऋता ने वज्रा की ओर मर्मभरी दृष्टि से ताका तो देह में हल्की-सी कँपकँपी हो आई ।

कुछ क्षण और मौन गहगहा उठा ।

ऋता धीरे से बोली—'मेरा निश्चय तो अडिग है, वज्राजी ! मौत की मर्मातक पीड़ा जब इस मन ने पूरी तरह स्वीकारी है, तो फिर भयभीत होने का प्रश्न ही नहीं । एक प्रबल इच्छा जरूर इस मन में है कि इस प्राण-परोरु के उड़ने से पहले मैं एक बार उन लोगों को देख भर पाती !'

'कौन लोग !'—दृष्टि में कुतूहल नाच उठा ।

'सुचित्रा और·······वह·······वह उल्लास'······ ·······कहते-कहते पलकें अजाने आनंद से झिप गयीं ।

'हूँ ऽ !'—वज्रा के व्यंग्य भरे होठ हिल पडे । फिर न जाने क्या सोचकर वह हठात् उठ खड़ी हो गयी—'चलो, ऋतुम्भरा !······· यदि यही

इच्छा है तुम्हारी तो वह भी पूरी क्यों न कर दी जाये। पर·········· !'

'पर ?

'शायद है, वे अब तक जीवित भी हो न हों·······खैर, अभी हाल फोन किये देते हैं।'—और वे सभी अधीक्षक कक्ष में धीरे-धीरे चल कर आ पहुँची। चोंगा उठा लिया - 'हलो, मैं'—कुछ क्षण कुछ सुनते हुए ·· "मैं" हलो! जी हाँ ' सुदेश बोल रही हूँ उल्लास ·· हाँ औं ·· मैंने रिक्वेस्ट हाँ एक बार ·· वहां तो ·· और सुचित्रा को भी ·· हाँ आ आ हम आइसोलेशन ही आ रहे हैं तब ·· आयें न ? ·· कुछ सुनते हुए ·· ठीक है, ठीक है और खट से चोंगा रख दिया। कॉलबैल झनझनाई। अर्दली अन्दर आकर सैल्यूट ठोक खड़ा हो गया।

'मेटाडोर ले आओ।'

जी !'—और खट से सैल्यूट कर फिर बाहर निकल आया।

'भाग्य ही समझो कि वे कमबख्त अब तक जिन्दा है'—कहती बन्ना मुस्करा उठी। कैसा संयोग है यह भी कि इधर जेल की मियाद पूरी और उधर जिन्दगी की मियाद भी पूरी। लेकिन इन हालातों में इन्हे सौपें भी तो सौपें किन्हें ? खैर, देखते है—कौन लेने आता है इन्हे कल ? आयेगा भी सही या नही'—एक हल्की-सी मुस्कराहट से वह दृष्टि चमक उठी।

'– कितने बेदर्द और जालिम हैं, ये लोग ? ··· नाम कितना सुन्दर है ·· सुदेश और देह भी तो' ··पर मन कितना जहरीला है यह – ऋता पलके झुकाये अपने मन की पीड़ा अन्दर ही अन्दर पीती ही रही। तभी मेटाडोर का हार्न बाहर से सुनाई दिया, और वे तीनों उठकर बाहर आ गईं। बैठी तो घर्र र्र र्र करती गाड़ी उस आइसोलेशन वार्ड की ओर दौड़ पड़ी। पाँचेक मिनिट लगे होगे कि गाड़ी वार्ड के कैम्पस में आ पहुँची। दो गार्ड और वार्डन लपक कर नजदीक आ गये, और वह कारवाँ अपनी मंजिल की ओर चल पड़ा। फिनाइल मिश्रित रसायन की गंध अब भी इस चाँदनी के सैलाब को गधा रही है। वे धीरे-धीरे उस सेल तक आ पहुँचे जहाँ जीरो वॉट की हरी-हरी उदास रोशनी वातावरण को और भी गमगीन बना रही है।

'सुचित्रा !' – बन्ना ने ऋता का दाहिना हाथ धीरे से दबा दिया। गार्ड ने टॉर्च का प्रकाश अन्दर फेंका तो फर्श पर गिरे उस नारी कंकाल की आँखें भी चौंधियाती खुल पड़ीं।

'हाय सुचित्रा !'— ऋता वह आहत दर्द पुकार उठा । इस जानी-पहचानी पुकार का जादू भी कितना असरदार कि वह नारी कंकाल वहीं बेबसी से उठ बैठा, धीरे-धीरे खड़ा हो, लड़खड़ाते कदमों से सीखचों के पास आ धम से बैठ गया । ऋता का मन पीड़ा से जैसे पगला गया । वह भी नीचे बैठ गयी । दोनों हाथ सीखचों में डाल, उस कंकाल को जैसे प्यार से ललकती बाहों मे बांध लेने के लिए हौले से खींच लिया उन डरौने कोटरों में अनबुझी आंखों की वे स्थिर पुतलियां भी जैसे विचलित हो गयीं । ऋता को मुहूर्त भर घूरती ही रही । फिर एक अस्फुट फुसफुसाहट........ऋ तु " म !—और विस्मय के सीमांत में फैल गयी । लेकिन क्षण भर में रक्त-मांस से विहीन-सा वह चेहरा जैसे तमतमा गया । धीरे से ऋता दाहिना हाथ अपने होंठो तक खींच लिया तो लगा कि जैसे वे किटकिटा रहे हैं रक्त की पतली सी धार बह उठी, ऋता की अंगुलियों से खून टप टप टपक उठा । पर, *ऋता न चीखी, न चिल्लाई ही कि इतने में उस कंकाल ने हठात् ही* ऋता के मुँह पर घृणा से जैसे थूंक दिया तो वह रक्तसना हाथ उस किट-किटाते जबड़े की गिरफ्त से छूट गया ।

'चुड़ैल !'— एक क्षण फुसफुसाहट वातावरण मे फैल गयी । 'आ ह ! उ ल्ला स !'— और वह कंकाल पीछे घिसटते हुए हल्के धमाके के साथ वहीं फर्श पर निढाल हो लुढक गया । गार्ड की टॉर्च के प्रकाश का धब्बा कुछ क्षण उस निर्जीव देह पर वैसे ही टिका रहा ।

'चलो, यह भी अच्छा रहा । मिल गया न तुम्हें भी प्रसाद इस दर्शन का ?—और कुछ बाकी रह गया हो तो कहो ।'—किलकती हुई वाणी स-व्यंग्य बोल उठी ।

तभी ऋता ने पीड़ा से पुलकित अपने हाथ को खद्दर के रूमाल से लपेट लिया ।

'लेकिन—अब हम तुम्हें तुम्हारे उस उल्लासदत्ता से नही मिलवा सकते हैं, छोकरी ! देखा न, एक की तो जान इस तरह आज ले ली तुमने.........पता नही, वह कब तक और जीती बेचारी । नही, नही चलो हम न ही चले ।

और, वे सब उस गमगीन माहौल को पीछे छोड़, धीमे कदम आ गये ।

'देखो फर्श पर गिरे खून के दाग बखूबी सब साफ हो जाने चाहिए। और उस काटखने जबड़े में लगा खून भी। मौत 'सेल' में हुई है इसलिए सावधानी से रपट तैयार करनी है, तुम्हें। समझ गये न ?'—बत्रा ने वार्डन की ओर मर्मभरी दृष्टि से देख भर लिया।

'जी।'

'अच्छा, तो हम चलते हैं'—और मेटाडोर फिर जेल अधीक्षक के चैम्बर ओर दौड़ पड़ी।

आठ

जेठ की चिलचिलाती धूप। लोगों की संगमरमरी देह भी बर्फ की शिला की तरह जैसे पिघल रही है। बंद मेटाडोर के गहरे काले और अंधे कांचों के बीच कैद व्यक्ति की आंखों को फिर भी काले और मोटे कपडे की पट्टियां कसे हुए है। बाहर जलती धूप और तपती लू के थपेड़े, और अन्दर का दमघोट वातावरण। मेटाडोर किसी अज्ञात स्थाल की ओर भागी जा रही है–ऐसे वक्त भी। वीरान सूनी सूनी सड़कें अपनी काली कलूटी देह के डम्मर से चिपचिपा रही हैं। मेटाडोर के पीछे पुलिस गार्डों की दो गाड़ियां भी दौड़ रही हैं। कहां जा रहे हैं ये लोग ? कौन हैं अन्दर—कभी कोई छड़ी-बिछुड़ी आंख देखकर विस्मय से भर जाती है। यह जानलेवा मौसम और ऐसी बेतहाश भागमभाग ? आखिर किसलिये है यह सब ?

और तभी दूर एक दोमंजिला मकान अपनी ही चार दीवारी के बीच खड़ा खड़ा ऊंघता हुआ-सा दिखाई दे रहा है। सनूसनू करती यह गर्म लू उसकी पथरीली देह को भी जैसे दहला रही है।

वह कारवां भी हठात् जैसे उस गेट के पास आकर रुका हो था कि चौकस चौकीदार ने लपक कर लौह-कपाट खोल दिये। मेटाडोर और पुलिस गार्डों से लदी गाड़ियां घर्र र्र र्र करती अन्दर घुस आयी और पोर्टिका के नीचे आ लगी। फ्रंट सीट पर बैठा मुटियाता पुलिस अधिकारी अपना बैटन लिये तुरन्त नीचे उतर आया। संकेत पाते ही मेटाडोर का पीछे का दरवाजा खोल दिया गया। चार वर्दी-धारी महिलाओं ने बड़ी सावधानी से अन्दर से किसी

संगीन अपराधी को अर्धचेतनावस्था में बाहर निकाला। अपराधी लगता है, शायद कोई महिला ही है। तभी तो ऊपरी लबादे से ढके अपराधी को बाँहों से कसकर पकड़े वे मकान के भीतर ले जा रही हैं। सभी गार्ड अपने ऑफिसर के आगे आगे दौड़ते कदमों से अन्दर आ पहुँचे—कि स्विच का बटन दबा और दरवाजा विद्युतगति से अपने आप बन्द हो गया।

पट्टियाँ अब खोल दो न !—ध्वनि के साथ ही परतदर परत पट्टियाँ खोल दी गयी। अभियुक्ता कुछ क्षण अपने दृष्टिपथ के अन्धकार में डूबी हतप्रभ-सी बैठी रही। दाहिनी हथेली से आँखें मली। कटि में खोंसे खद्दर के रूमाल से, पसीने से नहाये अपने मुँह को धीरे पोंछ लिया।

तभी एक महिला गार्ड ने फ्रिज के शीतल पानी का एक गिलास उसके सामने ला रखा। अभियुक्ता के वे अनमने हाथ किसी अजानी घृणा से हल्के से थरथरा गये, पर, जिजीविषा ने आखिर वह गिलास ले ही लिया, और एक ही साँस में घटक गयी। कुछ स्वस्थ हुई तो दृष्टि इधर उधर दौड़ पड़ी—देखा—मिसेज सुदेश बत्रा और उसकी अजीज वह प्रिया, उसके ही सामने आराम कुर्सियों में पसरीं बतिया रही हैं। दोनों के बॉब कट वाल 'पी' केप में उन्हीं के अधियारे मन की तरह लुके-छिपे हैं। वर्दियों में कसमसाती वे देहें किसी पुलिस अधिकारी-सा भ्रम पैदा करती हैं।

देखते ही मन आश्वस्त हो गया, लेकिन उसकी सफेद खादी की वह साड़ी और नीले रंग का ब्लाऊज पसीने से अब भी चुचुआ रहे हैं। चकित हिरणी-सी निगाह, चारों ओर विस्मित भाव से कुछ टोह रही हैं—कहाँ है वह ? न जाने ये हरामजादियाँ क्यों लाई है उसे यहाँ ?....... और.... तभी सुचित्रा-सेन का वह भुतहा कंकाल—दाँत किटकिटाता हुआ सा, उसके भयाक्रान्त दृष्टिपथ पर उभरकर फैल गया। सारी देह किसी अज्ञात उत्पीड़न के भय से सिहर उठी, लेकिन "लेकिन, मन ही मन उस संकल्प के प्रकाश ने सारे आतंक के उस अन्धेरे को तुरन्त लील ही लिया।

वह भी प्रस्तुत है, अब। जब इन यातनाओं की ये हजारों जोंके इस देह को चूसने लगेंगी तो फिर बचेगा ही क्या—कंकाल ही न ? वह भी प्रस्तुत है इसके लिए। सुचित्रा की ही तरह अडिग और अविचलित। लेकिन फिर तभी क्षण भर के लिए उदासी की एक हल्की परत उसकी कोमल भावना पर फैल गयी। उसे लगा कि उस प्रिय सखी ने भी उसे कितना गलत समझा ?....

उल्लास तो उसी का है " इससे इन्कार कब किया था मैंने ? मैं तो स्वप्न में भी उसे हथियाने की कभी सोची ही नहीं। हाँ, यह जरूर सच है कि मै उससे प्यार करती हूं, और अब भी करती तो हूँ ही। लेकिन मैंने उस प्यार पर कभी डकैती डालने की इच्छा तक नहीं की। काश ! प्राणाधिक प्रिया सुचित्रा इसका अहसास कभी कर पाती !—और एक भीगी निश्वास धीमे से निकलकर उस वातावरण में फैल गयी।

'ऋतु ! किन सपनों में खो रही हो, भई !'—उसका दाहिना कंधा थपथपाते हुये प्रिया बोल उठी। अपनी 'पी' केप उतार कर समुद्र फेनिल सनमाइका के उस अंडाकार टेबुल पर रख दी। मीठे शरबतिया शब्दो की फुहार उन होठों से झरने लगी—'देखो ऋतु !' यह है हमारा अन्तिम प्रयत्न। हम तो तुम्हारे भले के लिये ही कह रहे हैं, यह सब। तुम हमारी बात मान जाओ। शादी कर लोगी तो यातना के इस अन्धे कुए से मुक्त हो जाओगी। नहीं तो वैसे भी तुम अब किसी अनसूंधे और अछूते फूल की तरह यहाँ तो नही रह सकती ""यह वही जगह है जहाँ सुचित्रा की उस कमल देह को उन मस्त हस्तियो ने मसलकर रख दी थी। फिर तुम पर तो और भी कई निगाहें ताक लगाये जो बैठी हैं ""' हम तो भई पुलिसकर्मी हैं, लोलुप कुत्ते तो है ही—तुम्हीं क्या, सारी दुनिया यही कहती रही है हमें ? हमारे लिये तो न कोई बहन है, न कोई बेटी या माँ ही। कली, फूल-काँटे—यहाँ तो सब चलता है। जघन्य अपराधो के इस संसार के देवता जो हैं हम—शबाब और शराब का चढ़ावा ही चढता आया है यहाँ। समझी ? ""'' और " और तुम्हारी इस जिस्मानी रौनक की कीमत तो शराब की एक बोतल के बराबर भी नहीं है, अब। और एक तुम हो जो उस पर इतनी ढीठाई से नाज् कर रही हो !

—बोलो न, क्या चाहती हो तुम ?'—हौले से सिर के बालों को पीछे झटककर वह उसकी ओर टकटकी लगाये देखने लगी।

'रोशन !'—कड़कती हुई आवाज थर्राई। टॉर्चरिंग के वे सभी औजार इसी टेबुल यर सजाकर, इन बाईजी को अभी हाल दिखा दो। वक्ता का वह कोमल चेहरा क्रूरता से धमक उठा।

'जी !'—महिला गार्ड वहाँ से तुरन्त ही चल दी।

'छोकरी ! तूने उस हरामजादी सुचित्रा को अपनी आँखो से देख ही लिया है – जिसे अब तक तू अपनी प्रिय सखी समझती रही है। यदि वैसी ही गति अपनी करवाना चाहती है, तो फिर तैयार हो जाओ ''''''नहीं तो—' और उसने फिर क्षण भर रुककर उसकी अविचलित आँखों में झाँक लिया।

'—नही तो, भई ! हमे गुनाहों के दोजख के इन देवताओं को चढावा तो चढ़ाना है ही। सभी को अपनी फिक्र रहती हो है—अपने कामों में तरक्की कौन नही चाहता ? जानती नही तुम कि जितना ऊँचा पद, उतनी ही ऊँची बलियाँ भो। पुलिस तो ग्रीक गॉड बेकस है, बलि चाहता है, बलि के साथ ही साथ शराब भी।

'—और जब अपनी गर्दन ही ''''''' वह कहते-कहते सहसा रुक गयी। 'और अपनी गर्दन क्या?' चौंककर दृष्टि ने पूछ ही लिया।

'तुम यह सब जानकर क्या करोगी, छोकरी ? हमारे लिये भी अपनी इस नौकरी और इज्जत का सवाल जो है। यदि कारगुजारियाँ नहीं दिखायेंगे तो टिकने कौन देगा हमें यहाँ ?—यह तो उस बी. एच. यू. की वार्डनशिप से ही अच्छी तरह सीख लिया था।

'आप बी. एच. यू. में कभी वार्डन भी थीं।'—कुतूहल भरी जिज्ञासा पूछ बैठी।

'येस, आई एम दी सेम परसन—कुमारी सुरुचि शर्मा—परहैप्स यू डोण्ट नो ?'

'ओह, तो आप ही है वह सुरुचि शर्मा ?'—हल्के आतंक से वाणी सहम गयी।

'तब तो जानती ही हो न मुझे। लेकिन तुम उस वक्त बी. एच. यू. में कहाँ—' वे कजरारी पुतलियाँ जैसे नाच उठीं।

'नहीं, आप तो बहुचर्चित रही थी उस वक्त। कई सीनियर से पता चला था आपके उस व्यक्तित्व का—उस केरेलाइट गर्ल का वाकया भी तो—'कि बस सपाक से बोल उठी—' अभी पूरा पता चल ही जाता है तुम्हें मेरे व्यक्तित्व का। बहुत ही शातिर और ढीठ रही हो न तुम भी।

इतने में रोशन और उसके साथी गार्डों ने एक-एककर वे सभी औजार टेबुल पर सजाने शुरू कर दिये। ट्यूब लाइटों के प्रकाश उनकी चमक को और भी चमचमाने लगा।

'रोशन ! इन बाईजी को वहाँ ले जाओ, और भलीभाँति इन्हें दिखा दो।

'जी' और महिला गार्ड उसे घेरकर दीवार से सटे टेबुल पर सजाये औजारों को दिखाने लगीं। साथ दी घोर पीड़ादायी और प्राणान्तक प्रभाव वाले वे सभी चित्र भी—उन अंग-उपांगो के साथ ही दिखलाये। ऋता की स्थिर दृष्टि ऊपर से अविचलित भाव से उन्हें देखती चली गयी, लेकिन अन्दर का समूचा पानी दोलायमान हो उठा। तभी रोशन बोली— बाईजी, यह देखिये– इसका इस्तेमाल गुप्तांगों के लिये किया जाता है, स्वचालित है यह। बटन दबाते ही बिजली की तरह यह अपना काम शुरू कर देता है तो मिनिट भर भी कोई रेजिस्ट नही कर पाती। बेहोशी तो आती ही है, मुँह से झाग झरने लगते हैं—इस तरह। रक्त का फब्वारा फूटता है इस तरह और " और ....' कहते-कहते वह दृष्टि ऋता के भाव-शून्य चेहरे को देखने लगी। फिर बोली—यह केवल उन जालिम और जरायमपेशा औरतों को ही आनन्द देने के लिये है सुचित्रा नक्सलवादिनी थी न, इसीलिये इसका आनन्द भी ले पाई।

सुनते ही ऋता का रोम-रोम खड़ा हो गया।

'बाईजी ! आपकी केटेगरी भी तो अब वही है, और.......और अब तो मामला और भी संगीन जो हो गया है ?'

'कैसे ?' होठ काटती ऋता फुसफुसाई।

'आप साहिबा ने तो उस भली चंगी सुचित्रा को भी उस रात भयकर रूप मे कितना उत्तेजित कर था कि थरथराती हुई बेचारी वह मर गयी। यह तो एक हत्या का ही मामला है न, बाईजी ! और आपको मालूम होना चाहिये कि कल ही उसके कागजात बनाकर क्रिमिनल कोर्ट मे भी पेश कर दिये गये है, और आज आप 'रिमांड' पर है, समझी कुछ ?—रोशन की वे डरौनी बड़ी-बड़ी पुतलियाँ यह कहते-कहते जैसे पुलक उठी। लेकिन ऋता की आँखें एक बार विस्मय से फैलकर फिर स्थिर हो गयी। आसन्न मृत्यु का वह त्रासद और भयावह अन्धकार का क्षण उसे अब बहुत ही नजदीक दीखने

लगा—सोचते ही मन की समूची धरती एक बार फिर हिल उठी।—दिस इज़ द न्यू बिगिनिंग ऑव लाइफ'—आर्उनिग जेहन के पर्दे पर उभर आया, और अन्तिम फैसला करने मे उसे अब क्षण भर भी नही लगा, बोली—'तो मैं भी एक उग्रवादी हूँ—तुम्हारा यह अन्धा कानून भी तो यही तय कर पाया है। सच है—इन असामाजिक और घनघोर घृणित अत्याचारों से भरी-पूरी, जननी जन्म भूमि का यह मैला आँचल, आर्थिक और सामाजिक समता के के स्वप्न देखने वाले हम जैसे लोगों के लिये है ही कहाँ ? तुम सच ही कहती हो, बहिन ! कि सुचित्रा मेरी प्राण प्रिय सहेली थी ही, और उल्लास दत्ता भी मुझे प्राणाधिक प्रिय हैं ही। लेकिन…… ……' कहते-कहते वाणी रुक गयी।

'लेकिन क्या, यह सब तो हकीकत है ही न, नही है ?'

'लेकिन इस हकीकत के बावजूद भी मैं उग्रवादी नही हूं, न कभी रही हूं।'

'अच्छा-अच्छा'—तालियाँ पीटती रोशन ठहाका लगाते हुए बोली—'तो अब यह बात है। मौत की डायिन के किटकिटाते उस खौफनाक जबड़े से इतनी जल्दी डर गयी, ऐसी उम्मीद ही न थी हमें !'—और सभी लोग एक साथ ठठाकर हँस पड़े।

'नहीं !'—तमकती वाणी चीख उठी। तो ठहाके तत्काल थम गये। प्रश्न भरी दृष्टियाँ ऋता के चेहरे पर मधुमक्खियो की तरह चिपकी।

'मौत तो मेरे लिये इस जिन्दगी की सौगात है, बहन !'—और उस दाहिने हाथ की मुट्ठी की चपेट से टेबुल पर रखे टॉर्चरिंग के वे औजार भी घनक उठे।

'मैं तो इन नक्सलियो को बेहद इज्जत की निगाह से देखती ही हूँ। उन्हें सदैव ही इन प्राणों का स्नेह मिलता रहा है, क्योंकि …… ……' कहते हुए वह दृष्टि तथाकथित दूध की धुली उन पुलिस अधिकारियों को घूरने लगी।

'तुम्हारा मतलब ?'— वत्रा कड़कती जबान से बोल उठी।

'—कि वे एक देशभक्त हैं'—सच्चे और गहरे देश भक्त। आज की त्रस्त और उत्पीड़ित इस मनुष्यता को हमशक्ल इन कुत्तों और भेड़ियो से, जो उसे इस कदर चीथ रहे है उसे बचाने के लिये अपने प्राणों की बाजी वे इस तरह लगा रहे हैं। और ऐसे कथित उग्रवादी कब और किस युग मे नही रहे हैं ? और तभी तो ऐसे बिस्मिलो, शेखो और सिंहों, लालो और पालो, रायो

श्रौर बोसों को कब किस सरकार ने स्वीकारा था ? भगतसिंह की हड्डियों के उन फूलों तक को उस जमाने की सबसे वडी सियासी जमात के नेताग्रों ने जैसे ग्रस्वीकारा ही था न।

—श्रौर तभी सुभाष को ग्रपनी प्यारी मातृभूमि की मुक्ति के लिए ही इस तरह छोड़कर वाहर जाना पड़ा, श्रौर वह जंगी लड़ाई वाहर से ही लड़नी न पड़ी ? गये—सब चले गये वे लोग। श्रौर श्रब उन्हें पूजते हैं हम इस तरह। मरे हुयों का श्राद्धकर्म नहीं है क्या यह ?

ग्राँखों में खून सा उतर श्राया ग्राक्रोश ग्रारक्त वर्ण हो गया।

'पट्टाभि सीतारमैया की हार मेरी ही हार है'—कहने वाला वह गौरवमय श्रौर महिमामंडित समय भी ग्रपनी उस क्रूरता से जैसे इन सभी को ग्रस्वीकारता ही रहा। श्रौर श्रब तो ग्रनेक जमातें हैं, दल हैं, पार्टियाँ हैं, कांग्रेसें हैं, दलबदल है श्रौर उन्ही की सरकारें भी, जो कभी बनती हैं तो बिगडती भी हैं। जैसे ये सियासी पार्टियाँ नहीं हुई, ग्रन्डरवीयर हो गई। बू मारने लगी तो बदल ली गयी।

लेकिन, इन सबका लक्ष्य तो एक ही है—सत्ता की शहद के उस विशाल छत्ते को हथिया लेना ही। बेचारे करोड़ो किसान श्रौर मजदूर, रात श्रौर दिन एक कर, मधुमक्खियों की तरह भिनभिनाते थके हारे, राष्ट्र लक्ष्मी के इस मधुकोष को भरते रहते है। फिर भी गोलियाँ श्रौर लाठियाँ बरसती है तो सहते रहते है। राजनैतिक हत्याग्रों श्रौर हड़तालो श्रौर तालाबंदियो से कराहते कई घर श्मशान भूमि में बदल गये, पर कौन परवाह करता है, ग्राज ? इस महाजनी सभ्यता की पैशाचिक ये कुक्रिया—लगता है, सचमुच ही ये देवों का लोक नही है, यह तो कोई ग्रपरिचित नर्क ही है, श्रौर सभ्यता तथा संस्कृति से निर्वासित 'घास फूस के ये करोड़ों विवर'—उस रूमानी कवि की दृष्टि को भी धोखा नही दे पाये।'—बोलते-बोलते नीचे का ग्रधर, किंचित रोष से उस दंत पक्ति से दबकर रह गया।

'बस कर छोकरी बद कर बकवास !'—भर्राये कंठ की ग्रावाज दहाड़ उठी। 'इस बाईजी को इसी वक्त इसकी सही जमीन दिखलादो !' सुनते ही उस महिला गार्ड ने चमड़े का हन्टर तत्काल हाथ में ले लिया। 'चलो बाई-जी !'—श्रौर धकियाते हुए उसे दूसरे चैम्बर में ले ग्राई। स्विच बोर्ड के बटन दबते ही हजार-हजार वाट के बीसियों बल्ब खट से जल उठे। कमरे के

बीचोंबीच फौलादी सीखचों वाला वह संकरा जंगला जिसमें खड़ा भर रहा जा सकता है, ऋता उसके अंदर ढकेल दी गई तो रोशन ने झट से उसे बदकर ताला जड़ दिया।

'खड़ी ही रहो अब, बच्चू ! बाई !'—और नीचे से वे दोनों कोमल चरण लौह शृंखला से जकड़ दिये गये। तेज रोशनी फेंकते चार लाइट स्टेन्ड भी उसके चारों ओर लाकर खड़े करवा दिये गये। अचानक ही तत्काल जोरदार ठहाकों, भयानक और विकट चीख-चिल्लाहटों के टेप, लाउडस्पीकरों पर इतराते, उस चैम्बर को थर्राने लगे। तभी रोशन और उसके साथियों ने देखा कि वह नारी देह इस तेज रोशनी और कनफोड शोरगुल से अब निढाल हो चली है, तो वे उसे उस जंगले की जकड़बंदी ही मे छोड़ तुरन्त बाहर खिसक गये।

'मैडम !'—खट् से सैल्यूट ठोककर रोशन और उसकी सहायिकाएँ पंक्तिबद्ध खड़ी हो गयी।

'अच्छा, रिटायरिंग रूम मे ही अब आराम किया जाये न'—प्रिया की ओर देख वत्रा मुस्करा उठी। वे तुरन्त उठ खड़ी हुई, बतियाती हुई रिटायरिंग रूम में आ, मजे से आरामकुर्सियों मे पसर गयीं। 'गुलमर्ग' कूलरों की शीतलवायु, उन देहो पर ठंडी-मीठी थपकियाँ भी दे रही हैं। तभी 'थम्सअप' की बोतलें फ्रिज से निकल आईं और उनके साथ ही ठडो एरिस्ट्रोकेट के दो-एक दौर भी हो गये। प्रिया और सुदेश मदछकी निगाहों से एक दूसरे की ओर देखती मुस्करा उठी।

'क्यों, क्या अनुमान है, प्रि ऽऽया !'—अधखुली वह गुलाबी दृष्टि चहक पड़ी।

'सब ठीक हो जायेगा न अब। ऐसी ढिठाई की जमी हुई यह ग्लैशियर कुछ ही दिनों में पिघल ही जायेगी।'

'हाँ ऽऽऽ आँ कहती तो ठीक ही हो'—और जाम फिर होठों से लगा सारा एक घूंट ही में घुटक गयी। मुंदी पलकें फिर कुछ सुगबुगाईं—कितनी ईगोइस्ट है यह छोकरी, है न प्रि ऽऽऽ या !' दाहिनी पलक किंचित दबकर मुस्करा उठी।

'सुचित्रा की सहेली है" पर"" देखें, कब तक इस अहं का हिमालय नही पिघलता है ?'—कहते ही वह कुछ सजग हो बैठ गयी।

'सच, है तो उसी धातु की यह भी। पर, सोचो तो, इन पाँच दिनों को भी यह सह गयी तो ?'

'इम्पोसिबल ''ग्रसंभव है यह प्रिया !' ग्रसंभव !'—हल्के से झटके से वह गर्दन हिल पड़ी।

'ऋतुम्भरा की बच्ची ग्राज ही रीत जायेगी, देख लेना !' नशीली निगाह फिर तरेर उठी।

'लेकिन वह सुचित्रा तो''''कहते हुए सहमी-सी वाणी थम गयी।

वह तो, यार! ''वह हजारों में''नहीं, नहीं लाखों में भी एक ही थी न। कहाँ राज भोज ग्रौर कहाँ यह गंगू तेली ? नारी जीवन के वर्चस्व की वैसी प्रतिमूि विरल ही होती है, प्रिया। परसों, जब उस शव को गार्ड स्ट्रेचर पर लिटाये ले जा रहे थे तो देखकर मेरी वज्र-सी यह छाती भी भर ही ग्राई। सचमुच पसीज गयी, प्रिया। तुम उसे मेरी बुजदिली ही कहोगी। खैर, यह बुजदिली ही सही मेरी। मुझे पहली बार जिन्दगी में यह ग्रहसास हुग्रा कि मेरा नारीत्व ग्रभी तक जिन्दा है।'—वह मदछकी दृष्टि फिर मुस्करा उठी।

हूँ ऽ ऽ ऊँ ?'—सामने निगाह उठी ग्रौर एक विस्मय भरे दुलार से उसे सहला गयी।

'ग्रौर''''ग्रौर तभी मैंने तुरन्त झुककर उसकी कदमबोसी कर ली थी।'

'प्रिया !'—धीरे से फुसफुसाते होठ लज्जा से कपोलों तक ग्रारक्त वर्ण हो उठे।

'सच ?'—साश्चर्य पुतलियाँ थिरक उठीं।

'सच !—गार्डों ने भी देखा तो कनखियों में मुस्करा रहे थे, कमबख्त।'

'है ?'

'सच मेरी प्रिया ! न जाने कैसा ग्रावेग था मन का कि उफनते हुए दूध की तरह छलक छलक गया उस वक्त।'

'लेकिन यत्रा !'—किसी ग्राशंका से वह दृष्टि फिर फैल गयी।

'लेकिन, क्या ?'

'वे कमबख्त—यह सब ग्रन्दर तक नहीं पहुँचायेंगे ? न जाने क्या इन्टर-प्रिटेशन करें'' क्या ग्रर्थ लगायें उसका, कौन जाने ?'

'कि मैं उसके साथ कुछ हमदर्दी रखती हूँ, यही न ? ' उग्रवादी और उनके प्रति किसी प्रकार की हमदर्दी रखना हम मुलाजिमों के लिए खतरनाक तो है ही, है न ?'—चिन्तातुर दृष्टि ने प्रिया की ओर ताका।

'है तो ऐसा ही, बहन। यदि ऊपर सब जान गये यह तो कहीं हमारा '

'टिकना दुश्वार न हो जाये, यही न ?'—प्रश्न पूरा करते हुए बग्रा बीच ही मानेश बोल उठी। फिर खुद ही उत्तर देते कहने लगी—'जो कुछ भी उस वक्त हो गया, प्रिया ! तो जोखिम उठाने को मैं भी तैयार ही हूँ—नू न सही और सही '' और न सही ' और सही !'—और सायास मुस्करा उठी।

'हूँ ऽ ऽ ऊँ, इतने मिजाज़ हैं जनाब के ?—तो फिर इस लौंडिया ने भी कौन गुनाह किया है जनाब का—कि इसे इस तरह चिलचिलाती तेज रोशनी की इस कब्रगाह में दफनाया जा रहा है ?'

'इसका उत्तर तो यह समय ही देगा, प्रिया। लेकिन हमने सुचित्रा के साथ क्या-क्या जुल्म नहीं किये ? बोटी-बोटी तक न नुचवा ली थी उसकी हमने ?-कितने हैरतअंगेज जुल्म—इस इन्सानियत पर नहीं किये हैं हमने ? लेकिन, वही एक इस्पाती शख्सियत था जो सब कुछ बड़े मजे से सहन कर गया। ऐसे शख्सियत की पहचान भी किसी रूहानी दिल और दिमाग की ही हो सकती है न और यार, राजा रूठेगा तो अपनी नगरी अपने पास ही तो रक्खेगा। रक्खा रहे अब नगरियों की कमी ही कहाँ है ?'— बड़े ही आश्वस्त भाव से शब्द स्वतः उन मदपायी होठों से फिसल पड़े। उसने कलाई में बँधी घड़ी की सुइयों की ओर देखा—'ऐं तीन बज रहे हैं, पूरे दो घंटे बीत गये, चलो, चलकर देखें उसे। क्या हालडाल है ?'

'ठहरो, कुछ क्षण रुको तो। वह रोशन अपना कार्य कर की रही होगी।' और 'ब्लैकनाइट' की उस बोतल से फिर दो जाम भर ही लिये। धीरे-धीरे चुस्कियाँ लेती रही। पर, यह दौर पन्द्रह मिनिट तक ही और चला कि रोशन और उसकी एक सहयोगिनी तभी वहाँ आ पहुँची।

'''''और कब तक, मैडम। वह चिड़िया पाँचवी दफा बेहोश हो चुकी है। अब फिर और ?'

'हूँ ऽ ऽ ऊँ'—विस्मय से आँखें चमक उठीं। चलो हम भी चलते हैं, और वे लोग रिटायरिंग चैम्बर से तुरन्त बाहर निकल आईं। यातना कक्ष में पहुँची तो देखा कि चिड़िया तो अब भी निढाल हो जंगले के लौह सींखचों

पर गिरी हुई है। मुँह से झाग बह रहे हैं, आँखें फटी-फटी सी पथर गयी हैं। तमाम कपड़े पसीने से तरबतर।

और रोशनियाँ सभी गुल हैं। लाउडस्पीकरों के टेपरिकार्ड स्तब्ध और मौन। केवल कॉमेट बल्ब की लाल रोशनी अब तक जल रही है। कूलर और पंखे – सभी तो ऑन हैं, वायुमण्डल फिर सुखद और शीतल।

'पन्द्रह-पन्द्रह मिनिट का 'गेप' रक्खा गया था न ?'

'जी, जैसा कि हमेशा ही होता रहता है।'

'इसे बाहर निकाल, तख्ते पर लिटा दो। इन्टीमेट फुहारें और गुलाब जल के छींटों के बाद होश आते ही हमें इत्तला देना, समझी न ?'

और वे दोनों फिर अपने रिटायरिंग चैम्बर की आरामकुर्सियों पर आकर पसर गयीं। जाम फिर भर लिये गये।

'छोकरी, जालिम ही लगती है।'—गुलाबी निगाह की वह आवाज धीमे से फुसफुसाई। फिर एक मद ठहाका।

'हम कौन कम जालिम हैं, मेरी वशा रानी ?'—प्रिया का मुँह सलज्ज-भाव में मुस्करा उठा।

'सो तो हैं ही'—एक 'सिप' लेते हुए अधर थिरक उठे।

'उस सुचित्रा का वह अस्थिपंजर भी इसे भयभीत नहीं कर सका, है न, प्रिया ?'

'सच, हाथ से खून टपकता रहा था, पर कमबख्त वह—न चीखी ही, न चिल्लाई ही। लगता है कि…'

'क्या ?'

'कि दूसरी सुचित्रा ही है, यह। है न ?'

'शा ऽ य ऽ द !'

'तो, फिर ?'—और वह दृष्टि कुछ सहम सी गयी।

'तो फिर क्या ?—एक बार फिर वही कदमबोसी ही न, और क्या ?' —और उस किंचित मुस्कराहट के धीमे से ठहाके की ध्वनि ने चैम्बर के कण-कण को छू लिया।

'वधू', मेरी ही बिल्ली और मुझसे ही म्याऊँ ?' – हल्के से रोष से पुतलियाँ तरेर उठी। लेकिन प्रिया की वह चुप्पी वत्रा के अन्तःकरण में गहरी बहुत गहरी उतरती चली गयी। लगा कि प्रिया सत्य ही तो कह रही है। यह इतना सारा लवाजमा और खुशनुमा वैभव की यह खुमारी, इन शानदार वर्दियों की—उभरे वक्ष पर झिलमिलाते तमगों के ये सुन्दर सितारे, और उत्तरदायित्व का यह समूचा आसमान उठाये इन कंधों पर चमकते-दमकते ये स्टार्स ! — क्या कमी है. यहाँ ? और उसने फिर एक जाम भर लिया तो वे लिपस्टिकी होठ उससे चिपककर, वह रस धीरे-धीरे चूसने लगे। सामने ही बैठी प्रिया ने 'ब्लैकनाइट' का रहा सहा रस भी अपने जाम में उड़ेल लिया, दो घूंट भरे तो होठ धीमी आवाज से थरथरा गये दाख" छुआरा छांडि के विष कीरा विष खा ऽ ऽ त""खात। विष।

'हूं ऽ ऽ ऊँ ! राइट यू आर, माइडियर, यू आर परफेक्टली राइट।— हम तो विष के ही कीड़े हैं ना—विषपायी जनम के' हा हा हा " !' कि रोशनी समीप आगयी। बोली—'अब सब ठीक है।'

'येस, डियर। तब ले आओ न उसे भी यहीं ? और देखो, पहले टेबुल पर रखा वह तमाम तामजाम तो हटाओ।'-और देखते ही देखते सारा काम बड़ी सफाई से कर लिया गया। चाँदी की डिबिया खुली तो दोनों ने पान की गिलौरियाँ मुँह में दबालीं।

'यस, ले आओ तुरन्त उसे।'—आदेशात्मक आवाज की गति के साथ ही रोशन अपने साथी गार्डों के साथ ऋता को लिवा लाई।

'बैठो न, ऋतुम्भरा !' मक्खन-सी मुलायम वाणी धीरे से बिछल पड़ी। ऋता को एक केनचेअर पर बिठाते हुए रोशन ने एक गार्ड को संकेत से कुछ कहा—तो क्षण भर में मिल्करोजी शर्बत का शीतल गिलास ऋता के सामने रख दिया गया।

'ऋतुम्भरा, तुम्हें तो मालूम है कि सुचित्रा""कहते-कहते बत्रा सहसा चुप हो गयी।

'क्या ?'—जिज्ञासा की लौ की तरह दृष्टि ऊपर उठ गयी।

'—कि वह इस दुनिया में अब नहीं रही।'

'हैं !'- चकोरी सी वह दृष्टि शून्य में तकती रही।

'हाँ, बहुत खेद है हमें कि सारा खेल उसी दिन समाप्त हो गया। पर, संदेश छोड़ गयी है. तुम्हारे लिये।'—और प्रतिक्रिया जानने के लिए वन्ना ने अपनी दृष्टि उसके चेहरे पर गड़ा दी।

'लो, पहले यह शर्बत तो पी लो, नहीं तो गर्म हो जायेगा।' वे मनुहार भरे शब्द-जैसे उसके मन को टटोलने लगे। पर ऋता ने गिलास छुआ तक नहीं।

'क्या सदेश छोड़ा है, मेरे लिये ?'

'– कि तुम उल्लास का साथ छोड़ दो, और फिर—' वह फिर कुछ टोहती चुप हो गयी।

'और फिर क्या ?'

'यही कि उस नष्टनीड़ को लौट जाओ, फिर से आबाद करो उसे ! और तुम जानती हो क्या ? सुचित्रा की मौत अब रंग लाई है—उल्लास की रिहाई के आदेश सुप्रामकोर्ट ने दे दिये हैं। वह कल हीं रिहा कर दिया जायेगा। फिर. तुम यहाँ किसके लिए ?'—और फिर एक क्षण की चुप्पी।

ऋता ने चुपचाप यह सब सुन लिया। जी मे तो आया कि कहदे कि बडी आई हो हमदर्द बनकर। किसके लिये ? अरे, मेरे करोड़ों गरीब देश-वासियों के लिए –ऐसी गुलामी और गंदगी जीती. इन सबके खिलाफ संघर्ष करती मेरी उन करोड़ों बहनों के लिए !

और किसके लिए ? न मुझे किसी संसद भवन के वातानुकूलित भवन में बैठे बैठे महज बहस और विरोध करते रहना है, न किन्हीं विधान सभाओं में चीख-चीखकर घड़ियाली आँसू ही बहाना है। संविधान ! सविधान और संविधान ! देश की इस विराट नंग-धड़ंग गरीबी की देह को कोई निजात मिली है, अब तक ?

—तेरी भैंस घुस गयी संसद में तेरी भैंस चर गयी संविधान !—सच ही तो कहा है उस कवि ने ? संसद से सड़क तक ये ही हालात है, आज ! – सोचते ही मन दुःख से गहगहा उठा।

कैसा है यह देश कि अपना अरबों रुपया इस संसद और संविधान को बरकरार रखने के लिये इस तरह खर्च किया जा रहा है ? और और हर

वर्ष नये-नये सैकड़ों करों की जोंकें इसकी अधभूखी, अधनंगी देह का खून चूसकर मुटिया रही हैं ? —और वह दर्दाहत वक्ष भीगी निश्वास छोड़ गया।

'तो, क्या तय किया है छोकरी तुमने ?

'मैंने ?' सजग होती दृष्टि फिर ऊपर उठी। बोली—'सुचित्रा-सी अपनी बेटियों की मौत पर माँ भारती सदैव गर्व करती रहेगी। उसके लिए इस हृदय में तो सदैव प्यार ही रहा है। वह प्यार अब श्रद्धा बन गया है। उल्लास रिहा हो रहा है तो अच्छा ही है। बाहर रहेगा तो जी तोड़ काम में जुट जायेगा। लेकिन"" · !'—वे स्तब्ध आँखें कुछ कहती-सी फिर स्थिर हो गयीं।

'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। साफ-साफ कह दे रही हूँ कि हमारा प्रस्ताव स्वीकार लो—नहीं तो, जेल के इस अंधे कुएं में सड़ती ही रहो फिर""फिर, जिन्दगी का उजेला नसीब होना नहीं है।' यह समझ लो अच्छी तरह।'—और वह वक्ष सावेश उभर उठा।

सुनते ही ऋता की आँखें स्वतः मुस्करा उठीं। देखते ही वत्रा ने कड़क कर कहा—'है न मंजूर ?'

'कौन सी मंजूरी ? – किसी के कहने-सुनने से यह घूमती हुई धरती भी रुकी है कभी ? न सूरज ही को कोई भी संध्या समय अस्त होने से अब तक रोक ही सका है। मैं भी इसी धरती की धूल की उपज हूँ, धूल ही में मिल जाऊँ तो इसमें दुःख ही क्या है ? यह परम्परा तो विरासत में मिली है, जिसकी जी तोड रक्षा करूँगी ही'—और वह दृष्टि अजानी दीप्ति से दीपित हो उठी।

'—आप कहती है, मैं फिर उसी जगह लौट जाऊँ। लेकिन—वह धरानंदिनी भी फिर कभी उस राजभवन लौट आई थी, बताइये न ?—पूछती-सी वह निगाह स्वतः अपने उन दुर्बल और आहत पैरों पर झुक आई।

'हूँ, तो उस सुचित्रा का भूत अब भी सर पर सवार है तुम्हारे। है न ?'

—और लपककर तड़ से एक जोरदार चाँटा ऋता के दाहिने गाल पर जड़ दिया। दिन भर की उस भूखी-प्यासी देह को गश आ गया। वह न रोयी, न चिल्लाई ही, अपनी कुर्सी के हत्थे पर एक ओर निढाल हो लुढ़क

गयी। मुँह से फिर झाग निकल आये और आँखें पथरा गयीं। पास ही खड़ी पुलिस कर्मियों ने तत्काल दौड़ धूप की। किसवे डिस्पेंसरी की डॉक्टर तुरन्त आ पहुँची। उसे एक नंगे तख्ते पर उठा कर लिटा दिया गया। तभी एक सुई लगी तो उस अचेत देह में जैसे तनाव कुछ कम हो गया। डॉक्टर बोली – 'दस-पंद्रह दिन का पूरा आराम चाहिये इसे। बहुत ही कमजोर है यह। कहीं यह हत्या भी सर पर न चिपक जाये।'

बत्रा ने प्रिया की ओर देखा तो प्रिया ने बत्रा की ओर। फिर दोनों ही उस चिकित्सा अधिकारी की ओर मुड़ पड़ी, धीरे से बोलीं—लेकिन, अभी तो महीना भर ही हुआ है इसे, डॉक्टर!'

'तुम जानो अब। मैंने तो अपनी बात कही है। प्रेसक्रिप्शन भिजवा रही हूँ, मेडिकल एडवाइस के साथ ही। उस सुचित्रा का केस भी सीरियस हो चला है न? सी. बी. आई की जाँच जारी है। तुम से अब क्या छिपा है – एक डी. एस. पी. कैसी दिलचस्पी ले रहा है, उसमें?

'कौन?'

'होगा वही आयंगर का बच्चा। जब ऐसे सिरफिरे लोग आई. पी. एस. में आ जाते हैं, तो हमारी यह सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा जाती है न? एक तो अपनी ड्यूटी अंजाम दो, फिर उस वफादारी के लिए ऐसा तोहफा मिले तो कौन दिल चाहेगा कि ऐसे मामलातों में हाथ डालें—तभी तो न छूट भागे थे जे. एन. यू. के इतने सारे अपराधी छात्र।' और वे आँखें किसी कुटिल भाव से भर गयीं तो सव्यंग्य मुस्करा उठी।

'भई डॉक्टर, काँटा तो काँटे से ही निकलेगा। जहर की दवा जहर होती ही है। क्या यह बात नहीं मालूम है इन गधों को?—आज कुछ करो तो मरो, न करो तो भी मरो। धरपकड़ भी शुरू हो गयी है, सस्पेंड हुए सो अलग। बड़े आये कहने वाले कि हमारी इन जेलों में बूचरिंग हो रहा है। मैं पूछती हूं कि कहाँ नहीं हो रहा है बूचरिंग आज? आज तो अपने वतन की इसी ज़मीं पर ऐसे तीर्थ हैं जहाँ कातिलों के लिए दुआएँ मांगी जा रही है। इबादतगाह और पूजागृह इससे अछूते कहाँ है आये दिन पुजारियों, ज्ञानी ग्रंथियों तक की हत्याएँ हो रही हैं। बसों और ट्रेनों में सफर कर रहे बेगुनाह लोगों को गोलियों से न भूना जा रहा है, आज?

और इन यूनीवर्सिटियों के परिसरों में क्या नहीं हो रहा है, आज ? लगता है कि जैसे सारा देश आज एक बूचड़खाना ही बना चाहता है। स्वार्थ से अंधी आँखें न भाई देखती हैं, न बहिन, न माँ, न बाप ही। फिर चाचा-भतीजों, मामा-भानजों की तो बिसात ही क्या ?'—सावेग वह प्रश्न भरी दृष्टि उस डॉक्टर को क्षण भर के लिए सकते में डाल गयीं। न जाने क्यों प्रिया ने तभी गुनगुना दिया—दोस्त दोस्त ना रहा, प्यार प्यार ना रहा—जिन्दगी" तो सुनते ही सब खिलखिला पड़े। गम्भीरता की वह काई तत्काल ही फट गयी।

'रोशन !—भई, कुछ कॉफी आदि डॉक्टरों को नहीं पिलवाओगी क्या ?'—और फिर नजर कलाई पर बंधी टाइमस्टार पर जा अटकी। साँझ की छः बजा चाहती हैं।

'भई, बत्राजी ! मैं तो कन्सलटेंन्ट भर हूँ, अपनी राय आपको बता दी है। यह मरीज़ ज्यादा दिन का मेहमान नहीं हो सकता। और फिर आपकी ऐसी मेहमाननवाज़ी का लुत्फ़ भी कौन अधिक ले पाया है अब तक ? देखो न, सारी देह रक्त-विहीन सी पीली-पीली पड़ गयी है। जगह-जगह नीले चक्कते भी उभर आये है, पसलियाँ तक'—और वह अधेड़ गदराई दृष्टि भी उस बेहोश प्राणी को देखकर सहम-सी गयी।

'तो फिर मारो गोली अब इन सबको। भई प्रिया ! वैसे भी इसे तो हमें मुक्त करना ही पड़ेगा न। रिलीज़ के आर्डर जो आ गये हैं। ऐसे अण्डर ट्रायल्स अब छूटेंगे ही। न्यायालय के आदेशों की अवहेलना कब तक की जा सकती है ? पर—'कहते हुए बत्रा का वक्ष किसी गरूर भरे उच्छ्‌वास से उभर उठा।

'पर क्या ?'—प्रिया मुस्कराई।

'कोर्ट कोर्ट है तो जेल भी जेल ही है, जिसका महत्व भी कभी कम होने वाला नहीं है न !—राम और कृष्ण के जमाने से जो चला आ रहा है यह।'

और तभी गर्मागर्म कॉफी की खुशबू चैम्बर में महक उठी। प्याले और चम्मच हल्की सी खनखनाहट के साथ सज गये तो उनमें ताजा कॉफी बड़े सलीके से उँडेल दी गयी।

चुस्कियाँ लेती वे दृष्टियाँ तरावट और ताजगी से भर गयीं।

नौ

अमावस की काली रात फिर आ गयी। न्यू गुलमोहर कॉलोनी का वह एकान्त बंगला भाँ-भाँ करते हुए उस अन्धकार में ऊंघ रहा है। रातरानी की झाड़ियों पर चमकते जुगनुओं के वे नन्हें-नन्हें बिजली के से फूल दिप-दिपकर बुझ रहे हैं। तभी एक हैड लाइट की तेज रोशनी उधर ही दौड़ती आ रही दीखती है। सुनसान सड़कों की काली छाती को बलात् कुचलती हुई वह मोटर साइकिल 'सुदेश दीप' के फाटक पर आ रुकी। दो जन तत्काल नीचे उतरे। वाहन को किनारे से लगा क्षण भर कुछ सोचते रहे। बन्द फाटक पर ताला जो जड़ा हुआ है।

'चलो, फिर चार दीवारी ही न कूद लें।' कहते-कहते ही वे बगले के अन्दर आ गये। एक बार फिर कुछ टोहते हुए चारों ओर देखा। बरामदे का संगमरमरी फर्श ब्रेकेट लाइट से चमचमा रहा है। दो मुड्ढे करीने से दीवार के समीप लगे हुए हैं।

डिग डांग, डिग डांग—एक म्युजिकल साउण्ड से कॉलबेल गुंजरित हो उठी तो 'रैन बसेरा' का द्वार थोड़ा सा खुल पड़ा, और किसी ने अन्दर से बाहर झाँका—'कौन ?'

'यह मैं हूँ—गुलजार।'

'गुलजार साहब ! अच्छा-अच्छा। पर, मैडम तो किंग्ज वे' ऑफिस गयी हुई है ''' क्या बजा होगा ?'—कहते हुए मोहम्मद याकूब बाहर निकल आया।

'एक बजा चाहता है, कब तक लौटेंगी मैडम ?'

'तब तो आने का वक्त हो गया है, आती ही होंगी। आइये न, तशरीफ रखियेगा अन्दर।'—और 'रैन बसेरा' खोल दिया गया। सभी अन्दर आ गये। बूढ़े याकूब की उन मिचमिची आँखों ने ट्यूब लाइट के प्रकाश में,

गुलजार की उन मदछकी, अंगारों-सी पुतलियों में झाँक भर लिया तो सहसा वे सहम गयीं। साथ का चेहरा भी कम विकट और खौफनाक नहीं है। पलक झुकते ही उसे अपनी गलती का अहसास हो गया। क्या किया यह उसने? कह न देता कि मैडम सवेरे तक ही आ पायेंगी। अब?—कि इतने में किसी गाड़ी की तेज हैडलाइट खिड़की के शीशों से आकर टकराई। हॉर्न बजा—शायद मैडम ही हैं। याकूब तुरन्त बाहर निकल आया, ताला खोल तुरन्त कपाट खोल दिये। गर्रर्र करती हुई वह पुलिस की जीप पोर्च के नीचे आ रुक गयी। बत्रा फाटक खोल, तुरन्त बाहर निकल आई। एक अलसाई जम्हाई अनायास ही मुँह तक आ गयी। तभी पिछली सीट से प्रिया और रोशन भी उठकर बाहर आ गयीं।

'भीतर कौन है?'—बत्रा की संशय भरी दृष्टि ने याकूब को ऊपर से नीचे तक देख लिया।

'गुलजार साहब!'

'हूँ!'—ठीक, फाटक बन्द कर दो। ड्राइवर ने तभी सैल्यूट किया तो बत्रा फुसफुसाई—'शायद हमें फिलहाल जीप की आवश्यकता हो, तुम अभी आराम कक्ष 'रैन बसेरे' मे आराम करो न। आवश्यकता हुई तो बुलवा लेंगे। और याकूब! जलपान आदि की व्यवस्था अब जल्दी ही होनी चाहिये।'—और वह गरूर भरा व्यक्तित्व भी संशय के पैरों से चलता, चुपचाप अपने सहयोगियों के साथ अपने सुदीपित ड्राइंग रूम में आ पहुँचा।

'प्रिया!'—पीछे मुड़ती वह सहमी-सहमी आवाज़ फुसफुसाई।

'बैठ अब, काफी थक गये हैं, आज। और यहाँ पहुँचे तो आगे यह लफड़ा?'

'क्या कीजियेगा, अब?'

'यही तो, तुम्हीं बताओ न कुछ? मेरी ही जान को अटकी है यह शैतान की आँत।—फिर भी, किसी न किसी तरह से दफा तो करना ही है इन्हें। आप लोग आराम से यहीं बैठो। तब तक ......' 'तब तक?'—सहमी-सहमी दृष्टि से उसे ताका।

'लगे हाथ, निबट ही न लिया जाय इस हरामजादे से?—उस पास वाले कमरे में ही बुलवा लेते है, है न?'—अस्पष्ट ध्वनि की वह फुसफुसाहट अन्धकार में डूब गयी।

'सावधान, बन्ना ! चोटें खाये इस काले नाग से खेल रही हो, इस तरह। मेरी भी मानो—कह दो न कि अभी हम थके हुए हैं, कल किसी भी वक्त मिल लेना।'—प्रिया की वह दृष्टि भयभीत हिरणी-सी चौकस हो गयी।

'कुछ मेरे विवेक पर भी तो विश्वास करो। प्रतिहिंसा का मौका ही नहीं दिया जायगा। मैं कोई कच्ची-बच्ची स्नेकचार्मर नहीं हूँ, जी।'—कहते हुए वह उठकर तुरन्त पास वाले चैम्बर में आ बैठी। कॉल बेल झनझनाई तो याकूब मियाँ दौड़ा आया—'जी!'

'गुलजार साहब को यहीं लिवा लाओ'। और वह 'फिल्मफ़ेयर' की प्रति उठाकर उसके पन्ने पलटने लगी। तभी तेज कदमों से गुलजार और उसका साथी चैम्बर में आ धमके।

'बैठिये गुलजार!'—वह मुस्कराहट की चाँदनी, चैम्बर की लाइट के आसमानी रंग को और भी निखार उठी। वे दोनों जब केन की कुर्सियों पर आ विराजे तो बन्ना के संकेत करते ही याकूब मियाँ बाहर निकल आया।

'कहिये, अभी इस वक्त?'—बन्ना ही ने पहल की।

'दर्द रात के इस स्याह अंधेरे में ही अधिक उठता है, मैडम! इसीलिए—'और आँखें चार हुईं तो उस मन का आक्रोश अधिक उबाल खा गया।

'सच है, गुलजार! मैं खुद दुःखी हूँ - शर्मिन्दा हूँ मैं कि अब तक तुम्हारे लिए और अधिक कुछ भी नहीं हो पाया। एक आशा की किरण थी भी। पर उसे भी जुल्मों की इस अंधी काल कोठरी से कल सवेरे ही मुक्त कर देना होगा।'—और वह हताश जैसे अपने हाथ मल उठी। दृष्टि फिर ऊपर उठी, और निस्सहाय फिर लौटकर उस विकटाकार अंधेरे चेहरे पर आ अटकी। दो क्षण फिर मौन में डूब गये।

'गुलजार!'—एक सर्द आह भरी आवाज फिर फुसफुसाई। 'तुम्हारी नौकरी तक नहीं बचा सकी मैं—कैसी लाचारी है यह मेरी। सच मानो गुलजार कि उस सी. बी. आई का भूतहा खौफ अब भी जान खाये जा रहा है हमारी। उधर सुचित्रा की मौत की जाँच कमीशन कर ही रहा है, जिसकी चपेट से हम जैसे अधिकारी भी शायद ही बच पायें।

—और, अब तो—कब सस्पेंशन के आर्डर्स आ जायें हमारे भी—कोई किसी को बताता तक नहीं। एक दूसरे से भयभीत हैं हम लोग—और बुझी-

बुझी उग दृष्टि ने उस क्रूर चेहरे को देखा, तो लगा कि तनिक सी प्रतिक्रिया की छाया तक न रेंगी है उस पर। क्षण भर ही मे वह दृष्टि भाँप गयी कि अब इस संगदिल मे उसके लिए हमदर्दी की एक लीक तक नहीं है।

गुलजार !' एक सर्द आह उन होंठों से अनायास फिर निकल पड़ी। लेकिन वह न हिला, न डुला ही। आबूनस के काले बुत की तरह बैठा रहा। उसके साथी ने भी एक बार उसकी ओर देख भर लिया।

'गुलजार !'—बत्रा की वह दृष्टि अब कुछ सजला गयी— कितनी गहरी हमदर्दी है तुमसे कि पर, करूँ भी तो क्या ? वह हरामजादा आयंगर हमारे पीछे हाथ धोकर जो पड़ा है।—यदि इसका किसी भी तरह तीया-पाँचा अब तक कर दिया गया होता, तो ये दिन हमे आज देखने ही नही पडते न गुलजार !'

और जेब से रूमाल निकालकर अपनी वे सजलाई आँखें जैसे उसने पोंछ ली।

'लेकिन तीया-पाँचा करे भी तो कौन मैडम ?'—अब गुलजार का वह अंगरक्षक भी बोल उठा। बत्रा ने साश्चर्य उसे देखा—जैसे यह पूछ रही हो कि क्या यह बात तुम्ही पूछते हो मुझसे ? लेकिन कुछ बोली ही नहीं, चुपचाप दोनों के चेहरे तकती रही।

'मैडम ! हम ये सब कुछ नही जानते। सुन भी लो अच्छी तरह। हम लोग अब तक अपनी नेक नीयत और आला ज़हन पर भरोसा करते रहे हैं। लेकिन सस्पेंड तो हुए हम, नौकरी से भी हाथ धोये और पूरे दो साल से इस तरह जेल भी भुगत रहे है। आप जिन आयंगर की बात कर रही है वे एक भले मानस और रहमदिल इन्सान भी हैं। यह बात आज तो हमारे हर व्यक्ति मालूम है ही। और आप हैं जो चाहती हैं कि ……' होंठ थरथराकर रह गये।'

क्या चाहती हैं हम ?

'कि हम ऐसे व्यक्ति का तीया-पाँचा भी करदें। आप अब सुन लीजिए —ऐसा काम क्यो करें हम ? यदि आपके लिए यह आवश्यक हो तो क्या आपके पास और आदमी है ही नही ?'—वह मुख मण्डल तमतमा उठा।

'मेरे पास और है ही कौन, गुलजार ! जो… … !'— डरी डरी सी आवाज डूबती चली गयी।

'मत बुलवाओ अब मुझसे !'—तपाक से आक्रोश तमतमाया। —'वह तुम्हारा अजीज यार आई. जी. मल्होत्रा फिर किस मर्ज की दवा है, तब ? कौन नही जानता है तुम्हें कि ······इस तरह उनके दीवाने खास को आबाद किया है, तुमने ? उसकी सेजो का सिगार नही बनी रही हो अब तक ?

—लेकिन मैं अब तुम्ही से पूछता हूँ कि कहाँ गये वे सब तुम्हारे—वह मल्होत्रा जिस पर तुम इतना नाज़ करती हो, इतराती हो। वह चतुर्वेदी का बच्चा, जिसके दिल को शमा की तरह, आज तक रोशन कर रखा है, जो कमबख्त आज भी सारे होम डिपार्टमेंट पर शैतान की छाया की तरह छाया हुआ है—और ···और तुम्हारा वह—वह लोक सेवा आयोग वाला जैन, डी. पी. सी. का मैम्बर, जिसके कारण ही कभी उस मास्टरनी ने खुदकशी कर ली थी न उस दिन - और उसकी खाल तुमने ही बचाई थी उस वक्त—आज इसे प्रशासन की नाक का बाल है अटार्नीजनरल है।—कितना रंगीनमिजाज है, यह तुम बखूबी जानती हो—क्योंकि बगलगीर जो रही हो उसकी ?'

—और उस क्रुद्ध दृष्टि का आक्रोश अब चिंगारी से शोला बनकर भभक उठा। पत्थर फेंक लहजे में बोला—'बोलो न, क्या यह सब झूठ है ? इतना तो हम नाचीज़ भी जानते है, पर, और सब वह तो खुदा ही जानता है कि यह बला कितनी गजब की है—अब कह रही है कि मैं क्या कर सकती हूँ। तो फिर हमारी इस बेपनाह जिन्दगी से क्यों खेलती रही हो अब तक ?—हमदर्दी की यह लफ्फाजी और अपनी बेबसी का यह स्वांग अब नही चलेगा, मैडम !'

—और उसने पैंट की जेब से छः इंची रामपुरी चाकू निकालते ही खोल लिया। अपने सामने टेबुल पर रख दिया। उसकी तेजधार बिजली के प्रकाश मे आँखों में चुभने लगी। बत्रा ने देखा तो मन का समूचा धरातल अनायास ही हिल उठा। लेकिन वे मनोभाव तुरन्त ही बरबस दबा लिये गये। मिठास घोलती बोली—'तो तुमने अब यही निश्चय कर लिया है ?'

'जी !' उत्तर पास ही बैठे बिट्टू ने तपाक से दिया।

'तो फिर भई, देर किस बात की है, करो न अपना काम ? मै भी खुशी-खुशी तैयार हूँ इसके लिये।'—अन्दर के समूचे साहस को बटोरती आवाज़ चैम्बर के चप्पे-चप्पे को छू गयी।

'यह सब तो होगा ही, खातरी रखें। हमें भी इतनी जल्दी अब नहीं है। जब नौकरियाँ ही चली गयीं। शानदार वे फीतें और सितारे हम से छीन लिये गये और गलीच कैदी वार्डर की यह जिन्दगी हमें अब ओढ़नी पड़ रही है तो इससे बेहतर तो यही होगा कि फाँसी के फंदे पर ही न झूल जायें?'—अपनी बेबसी से वे होठ काँप-काँप उठे। एक सर्द आह अन्दर ही अन्दर घुटकते हुए गुलजार की वे बेज़ार पुतलियाँ नम हो आयीं। गले में अटके हुए बोल फिर फूट पड़े 'अब हम किस लायक हैं? सीना तानकर चलना तो ख्वाब हो गया है न अब। जो भी देखता है हमें—घिना और नफ़रत भरी निगाह से ही न?—मैं तुम्ही से आज पूछता हूँ कि कब रहे थे हम इन हत्याओं के सौदागर?—तुम्हारी इस झूठी मोहब्बत और गैबी फरेब ने ही न कर दी यह हालत हमारी? हम तो हमारी उस नौकरी में ही खासे अच्छे थे न!—फिर, क्यों ले आईं खींचकर हमें यहाँ—इस क्रिमिनल ब्रांच में?

—वे तमतमाये बोल चीख से पड़े।

'मैं ले आई?''' और यह मान भी लें कि मैं ही तुम्हें ले आयी तो यह सब तुम्हारे ऐशोइशरत के उस फितूर के कारण ही। गर्म गोश्त चखने की तुम्हारी यह आदत ही खुद तुम्हें यहाँ न ले आती?—मैंने तो सिर्फ सहारा भर दिया है, तुम्हें!'

'सहारा?—सव्यंग्य मुस्कराते हुए बोल उठा—'इस गहरे मौत के कुएं में ढकेलने के लिये ही न? लेकिन सच मानो - इन ढेर सारी हत्याओं का बोझ मैं कभी भी अपने सर पर लेने को तैयार ही न था। इन तमाम बातों की वजह तुम हो, सिर्फ तुम।—' आँखें तरेरती आवाज थर्राई।

'मैं?'

'हाँ, तुम!—नहीं है यह सच? बोलो न?'—तेज धारदार निगाहें बत्रा की आँखों में गहरे उतारते हुए वह फिर बोला—'ये हत्याएँ तुम्हारी इस चीफ वार्डनशिप की सीढ़ियाँ मात्र हैं, जिन पर अपने हवस के सैंडिल खटखटाती, इठलाती हुई तुम इस तरह ऊपर आ बैठी हो।''' '' और हम बेसहारा लोग एक बार फिसले कि फिसलते ही चले गये—गहरे नीचे—गहरे दोज़ख के पाताल में और इस तरह पन्द्रह वर्षों की नौकरी इस फौतदारी में ही गुजर गयी। प्रमोशन मिला भी तो नौकरी से बर्खास्तगी का। अब

हम जनाब एक कैदी वार्डर का काम कर रहे हैं—वह भी इसलिये कि हमारा यह डीलडौल अब भी इतना दबंग और तेज़ तर्रार जो है !'

सगर्व उस निगाह ने अपने वक्ष को देख भर लिया।

'ठीक है, इस जिन्दगी में उतार-चढ़ाव तो आते ही रहेंगे, गुलजार ! इसमें घबराने की बात ही क्या है ? फिर तुम्हें सुख और सुविधाएँ तो अब भी प्राप्त हैं न। क्या कमी है अभी—शराब, शबाब, कबाब – किस बात की कमी है। अब भी आजाद न हो तुम ? जहाँ चाहा, जब चाहा, तभी चले गये। बड़े-बड़े पुलिस अधिकारी भी खौफ नहीं खाते हैं, तुमसे ? तुम्हारी ताकत और रोबदाब में कमी कहाँ है जो इस अंधेरी रात में मुझे जलील करने, इतनी बेसब्री से यहाँ दौड़े आये हो।

—तुम्हारे हक हकूक में यदि कोई कमी आई हो तो कहो न ?······ और मैंने तो तुम्हें पहले ही आगाह कर दिया था न, इधर कदम रखना ही सबसे बड़ा गुनाह है— और, जब गुनाहों की इस दुनिया में आये हो तो जियो न उसे ?'—सुनते ही गुलजार का मन किसी गहरे सोच में डूब गया तो पलकें भी नम हो आईं।

'— और मेरी ओर तो देखो न—मेरे हालात तो तुमसे भी बदतर हैं, गुलज़ार !

'न जाने किस अशुभ मुहूर्त में इधर कदम रखा था कि इस जिस्म की बोटी-बोटी तक बेच देना पड़ी। ऊपर की यह शान-शौकत, यह तामजाम, हुकूमत का यह बौरा देने वाला नशा, ढेर सारी ये सुख-सुविधाएँ—उस समय सैमल की रूई की तरह फीकी-फीकी और बेस्वाद लगती हैं, जब यह हाथ अपने अफसरों की चापलूसी के चटखारे लेता हुआ सलाम ठोकता है, और वे व्यंग्य भरी निगाहें नफरत की ठोकरें लगाती है, मुझे।

—तब ऐड़ी से चोटी तक आग न लग जाती है ? जैसे यह सब उनका जायज़ हक है, हम पर। ऐसी ज़लालत भरी जिन्दगी से मैं भी बहुत उकता गयी हूँ, गुलजार !······ उठाओ यह चाकू और इस गलाज़त भरी जिन्दगी की डोर को एक ही झटके से काट ही दो। मैं तुम्हारी शुक्रगुज़ार हूँगी—शुक्रगुजार हूँगी, गुलज़ार !—मैंने ही, सचमुच तुम्हें इस नर्क में ढकेला है। अब मुझे अपने ये सभी गुनाह कुबूल हैं।

""""आह, उस यूनीवर्सिटी की वह वाइंनशिप ही कितनी बेहतर थी, पर, भाग्य के इन थपेड़ों ने मुझे यहाँ ला पटका—कि आज मैं कितनी अकेली अकेली और इस तरह बेबस हूँ—' उस ऊफनते आवेग के इस तूफान ने, मन की धरती बिसूरते आँसुओं से भिगो दी। गर्दन को हल्का-सा झटक दिया, और टेबुल पर झुकते हुए सिसकती वह वाणी फुसफुसाई - 'गुलजार मेरे, तोड़ दो ऐसी जिन्दगी की डोर को '" तुम्हारी " बहुत-बहुत शुक्रगुजार हूँगी ...... गुलजार !' और गुलजार ने देखा कि बन्ना के आँसू, सनमाइका की उस चमकीली सतह पर झरते हुए झिलमिला रहे हैं, तो वह भी सकते में आ गया। पास ही बैठे बिट्टू की ओर कनखियों से एक बार देख भर लिया, पर अब ?—क्या करे वह, और कहे भी तो क्या कहे ? और किसे कहे वह ? ऐसे हालात की तो उसे उम्मीद भी कभी नहीं थी। उल्टे नमाज गले पड़ रही है, यह तो।

उसने देखा कि बन्ना अब भी सर झुकाये सिसकियाँ भर रही है, धीरे धीरे फुसफुसा रही है --'गुलजार! खत्म करो न यह नाटक ऐसी गलीच जिन्दगी का सीन ड्राप—सीन ड्राप - आई वाण्ट इट" " ' आइ वाण्ट !'

—और अचानक उन खूनी हाथों ने उस नंगे चाकू को धीरे से उठा लिया, बन्द कर चुपचाप अपनी जेब में फिर रख लिया। चन्द लमहों की खामोशी का वह दूधिया कफ़न, ट्यूबलाइट की रोशनी की मानिंद उस चैम्बर में फैला-फैला रहा। कुछ पलों बाद जब सिसकियाँ कुछ थमी तो गुलजार ने धीरे से कहा—'मैडम !' लेकिन वह बेबस गर्दन, अपने गुनाहों के सलीब के भार से दबी-दबी, अब भी झुकी हुई है।

'बिट्टू!—कोई रास्ता दिखाओ न, यार!' गुलजार के वे हबशी से होठ धीरे से हिल पड़े।

—'इस ठण्डे और मुर्दा गोश्त की हत्या"""" ?'

'—अब करना बेकार ही है' बिट्टू ने बाँया हाथ दबाते हुए बीच ही मे इशारा किया। लेकिन कुछ क्षण इसी पशोपेश में और बीत गये तो गुलजार फिर फुसफुसाया—'मैडम !'

और इस बार वह झुकी-झुकी गर्दन फिर धीरे से ऊपर उठी। छलछलाती उस दृष्टि ने जैसे पूछ लिया—क्या ?

'—तो बिदुआ, फिर चल धरो। इस दहलीज़ पर फिर लौटकर क्या आना है अब? तबाह तो हो ही गये हैं, अब और क्या खाक तबाह होंगे? अच्छा...... तो मैडम, खुदा हाफ़िज !'

घुप्प अन्धेरे-से खौफनाक, वे दोनों तुरन्त ही बाहर निकल आये। किक लगाते ही वाहन स्टार्ट हो गया, तो वह फिर उन सुनसान सड़कों का सन्नाटा चीरता हुआ, किसी लक्ष्यहीन तीर-सा भागा जा रहा है।

पाँच-सात मिनिट की प्रतीक्षा और। बन्ना उठी, वॉशबेसिन पर आकर, मुँह अच्छी तरह से धो लिया तो रोमोंदार तौलिये से पोंछ, सुगंधित, क्रीम अपने कपोलों पर मल ली। दरवाजा खोला तो देखा कि प्रिया और रोशन हाथों में रिवाल्वर थामे, दोनों ओर खड़ी हैं। होठ मुस्करा उठे—'आओ।'

वे तीनों अब ड्राइंग रूम में आकर बैठ गयीं। क्षण भर की खामोशी की वह घुटन भी बर्दाश्त के बाहर थी तो प्रिया ने पूछ ही लिया—क्यों, इतनी देर तक क्या गुफ्तगू चल रही थी?'

'गुफ्तगू?—तुम्हें नही मालूम, अभी-अभी उस सलीब से उतरकर आई हूँ। आज तो ढेर ही हो जाती यह, बन्ना। स्टार्स कुछ अच्छे थे सो बच गयी हूँ।'—सहमी-सहमी निगाह ने बेबसी से देखा।

'ऐसा?'—स्तब्ध आँखें आश्चर्य से फैल गयीं।

'मत पूछो यह सब। आज अपने सभी कर्मों का फल पा लेती तो अच्छा ही होता। प्रिया, लेकिन .....'

'लेकिन क्या?'

'हत्यारों का यह रहमोकरम भी अब मेरे दिल को साल रहा है। हमे इस वज़न को किसी न किसी तरह से अब उतार ही फेंकना है, प्रिया!—इसमें तुम—सिर्फ तुम ही मेरी मददगार हो सकती हो'— और उस असहाय दृष्टि ने प्रिया के उस सुदर्शनीय मुख मण्डल को निहार लिया। लेकिन आँखें फिर भर आईं।

'मन इतना छोटा न करो, बहन!—हम तो एक प्राण, दो देह है ही। देह की छाया सदैव उसी के साथ ही रही है न, कौन अलग कर सकता है उसे? कोई प्लानिंग?'

'है—जहाँ चाह है, वहाँ राह भी है, मेरी प्रिया रानी। खतरों से खेलते रहने के लिये ही जैसे परवरदिगार ने यह जिन्दगी बख्सी है, हमें। आज तो लोग काले नागों के साथ उठते-बैठते और सोते हैं। लेकिन प्रिया!—यह इन्सान उन काले नागों से भी अधिक खतरनाक है, क्योंकि जहर जो मीठा है इसका। काटेगा तो भी मुस्कराहट के साथ। और इस तरह हमारी इस खुशगवार जिन्दगी को आहिस्ता-आहिस्ता तबाह किये दे रहा है।

और इन इन्सानी नागों की जातियाँ भी किस्म-किस्म की हैं। झुग्गी-झोंपड़ियों से लेकर गगन-चुम्बी सफेद महलों तक में रहते हैं ये। और जिन्होंने इस विशाल दुनिया की आबादी को दो हिस्सों में बाँट रखा है—एक हिस्सा स्वर्ग है, तो दूसरा कुंभीपाक नर्क।

'लेकिन ·······' कहते-कहते उन विचारों का वेग सहसा क्षण भर के लिए थम गया। उसने कॉलबेल का बटन दबा दिया। किसी के आने की प्रतीक्षा ने दरवाजे की ओर ललक कर देख लिया।

फिर बोली—'जानती हो, प्रिया! इन सभी मानवी नागदेवताओं का लक्ष्य तो एक ही है—सत्ता की प्रभुता और वासना की सुन्दरी। मतलब-परस्ती की रतौन्धी से अन्धे हैं, हम सब। फिर बेचारी वह मानवता किसको दिखाई दे सकती है?

—ये सैकड़ों पार्टियाँ, दल और जमातें, ये अनेक रंग-बिरंगे फहराते झंडे, इस आबोहवा मे आज इसीलिए तो लहर-लहर कर इतरा रहे हैं। संसद का लाल किला और विधान सभाओं के हवामहल अब कौन नहीं हथियाना चाहता है? है न सच?'—जैसे गरूर फिर उन आँखों में लौट आया तो प्रवाल रंग से वे अधरोष्ठ मुस्करा उठे।

'—और अब तो मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे भी किसी से पीछे कहाँ हैं'—चाहे फिर स्वर्ण के हों, या ईंट-पत्थर और सीमेंट के ही। ये साधु-सन्यासी, इमाम और पंथी, संत और महंत सभी तो यह सियासी मोर्चा सम्हाल रहे हैं। तो प्रिया रानी! हमें ही कोई यह दोष कैसे दे सकता है अब।

—'ठीक है, हम अभी सत्ता की उस प्रभुता' से विहीन हैं, लेकिन हम सुन्दरियाँ भी हैं। चोट खाई हुई हैं तो क्या हुआ—नाग कन्याएँ तो हैं हम?

प्रिया ! सावधान-- अब शुरू हो रही है हमारा भी जंग।'—और उस उत्तेजित निगाह ने जैसे प्रिया और रोशन को कील-सा लिया।

'तैयार हो न तुम ?'

'येस, येस'—दोनों ही सोल्लास किलक पड़ी। लेकिन चैम्बर का वह उल्लसित उजाला, बाहर निदियाते, दूर-दूर तक पसरे उस अंधकार को नहीं मिटा पाया।

दस

विधि मार्ग के दाहिने घुमावदार कोने वाले उस शानदार बंगले की गुमटी में बैठा सिपाही भी अब ऊंघ रहा है। अधरात का यह समय चांदनी की श्वेत चादर कंधों पर डाले, सर पर अब भी आसमान उठाये हुए है। तभी एक कार उसी सुनसान सड़क पर तैरती इसी बंगले के फाटक पर आ गर्रर्र करती रुकी—पी पीं पी की ध्वनि से सचेत हो, सिपाही गुमटी से तुरंत बाहर निकल आया देखा, कार को ड्राइव करती महिला के पास एक और नारी बैठी है।

सिपाही ने बिना किसी पूछताछ के फाटक लपक कर खोल दिया। कार अन्दर घुस आयी, पोर्च के नीचे आ खड़ी हो गयी। वे महिलाएँ उतर कर बाहर आ गयीं। कॉलबेल की उस मधुर झंकृति से वह वातावरण भी हल्का-सा आन्दोलित हो उठा। उनीदी आँखों को मिचमिचाते तभी कोई बाहर निकल आया—'फरमाइयेगा ?'

'साहब हैं ?'

'हैं न, पर इस वक्त ······?'

'आवश्यकता है कुछ ऐसी ही·········।'—अपने बॉबकट बालों को धीरे से पीछे झटकते हुए पहली महिला धीरे से बोल उठी। प्रश्नकर्त्ता पहले कुछ ठिठका, चारों ओर निगाह अपने आप दौड़ गयी, बोला—'अच्छा, तब आप प्रतीक्षा कक्ष में बैठिये, मैं उन्हें इत्तला किये देता हूँ।'

कैक्ष का दरवाजा खुलते ही वे दोनों अंदर आ गईं। 'बस, अब सब कुछ ठीक है। सारा माहौल अपना जाना पहचाना है। किसी का भी डर नहीं रहा, अब। वारंट ''' वारंट और वह भी अरेस्ट वारंट। ऐसे तो अनेक वारंट देखे हैं, हमने भी। अब हमारी ही ये निगोड़ी बिल्लियाँ हमीं से म्याँऊ-म्याँऊ करने लगी हैं। वक्त आने पर—देख ही लेंगे, इन्हें भी।'

'—सस्पेंशन तक तो ठीक था, पर अब गिरफ्तारी का गैरजमानती वारंट भी। वैसे अंडरट्रायल सैंकड़ों मरते रहते हैं. पर कभी तो कुछ नहीं हुआ ? आज ही ऐसी बिजली कैसे गिरी—अच्छा हुआ कि किंग्सवे डिस्पैंसरी की उस डॉक्टर ने भनक पड़ते ही हमें फोन कर दिया, नहीं तो मारे ही जाते न आज ?'—और भावनाओं के उस ज्वार से वह समुन्नत वक्ष एक बार उभर उठा। लेकिन यह प्रवाह रुका नहीं। वह पीड़ा का कीड़ा अंदर ही अंदर कचोट जो रहा है—'लेकिन, इन साहब का रुख कैसा होगा ?' —यही संशय का हल्का सा धुआँ सारे मन को धुँधा गया। लेकिन, ढाढ़स, वह जमीन भी कोई कच्ची गच नहीं थी। मन ही मन वह चेतना गुनगुना उठी—'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी, तिनहि बिलोकत पातक भारी'—सोच में डूबी डूबी वे पलकें क्षण भर के लिए झिप गई।

तभी दाहिने हाथ की तरफ का द्वार खुला। सफेद खद्दर के परिधान में सुवेष्ठित सज्जन ने देखते ही पूछा—'अरी बन्ना ! आज तुम इस वक्त ?'

दोनों ही महिलाएँ तपाक से अभिवादन की मुद्रा में खड़ी हो गयीं। 'आइये, बैठक मे ही बैठ लें और वे लोग उसी भीतरी द्वार से उस सुसज्जित बैठक में आ सोफे पर पसर से गये। 'मैं तो अभी हाल एक केस फाइल से निबट कर सोने जा रहा था कि रुचिर ने तुम्हारे आने की सूचना दी।—इस वक्त कैसे कष्ट किया है, जनाब ने ?'—और हब्शियों से उन मोटे-मोटे होठों पर डेढ इन्ची मुस्कान उभर आयी। बड़ी-बड़ी आँखों में अंजन-सी रची उस लोलुप दृष्टि ने बन्ना को एक बार ऊपर से नीचे तक ताक लिया, तो मन का कोना-कोना प्रसन्नता से खिल उठा। सोचा—कितना सुन्दर संयोग है कि आज घर बैठे ही यह गंगा आ गयी, अब जी भर कर निमज्जन करो न इसमें। कोई रोक न टोक हो। गंगा और नारी कैसी समानता है यह कि दोनों ही सदानीरा हैं। रस का प्रवाह कब रुका है, इनका ?- इसमें निमज्जन करना ही तन और मन को पवित्र करना नहीं है, क्या ?

—और कैसा सुखद संयोग है कि पत्नी पीहर मे है, और रुचिर कल सवेरे ही अपने इन्टरव्यू के लिए कलकत्ता जा रहा है—मजा आ गया आज तो—और वह मन ही मन ठठाकर हँस पड़ा। जंग खाये तावे के रंग सा, वह भरा-भरा चेहरा हल्की-हल्की ललाई लिये मुस्करा उठा।

लेकिन, वत्रा की दृष्टि ने यह सब तुरन्त ही भाँप लिया। मन किसी करुण विवशता से अन्दर ही अन्दर काँप उठा। पर वह बोली कुछ नही, और बोलती भी क्या? बाजार में जो बैठे है तो फिर बिकने का डर ही क्या है? और कौन है जो आज तक बिका ही नही। आदमी तो आदमी है, पर आज तो देश के देश तक बिके जा रहे है। फिर लोग भगवान तक बेचते हैं, बाजारो मे—उनकी ये असंख्य मूर्तियाँ और चित्र किस बात के सबूत हैं?—और ये लुच्चा अटार्नी जनरल—कल ही तो इसकी नियुक्ति को वैध ठहराया है। कितना जालसाज है यह। अब देखो—कैसा मुस्करा रहा है। बच्चू जल्दी ही भूल गया वह दिन जब बडे-बे आबरू होकर उस आयोग के कूचे से दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिये गये थे।

लेकिन पार्टी की इस अंधी हुकूमत ने फिर इसे इतना ऊँचा ला विठाया है। सत्ता की यह अंधी गांधारी अपने इन सपूत सुयोधनों को कितना प्यार करती रही है। उसकी आकांक्षा है कि इनके अंग प्रत्यंग फौलादी बन जायें; और कि ये गरीबों की उन हजारों जोरुओ की द्रौपदियों के चीर हरण करते ही रहें—और कि सत्ता हथियाने के लिए पांडव सरीखे अपने ही देशवासियों को लाक्षागृहों मे जलवाने का षड्यंत्र रचते रहें। सत्ता की लोलुपता के कौरववाद की प्रवृत्ति की यह अंधी गांधारी न जाने अब क्या-क्या गुल खिलायेगी, यह जानता भी कौन है? आस्था और निष्ठा के रचनाकार भीष्म भी तो मोहाविष्ट कर दिये हैं, इसने?—मन का यह प्रवाह तब हठात् थमा जब 'थम्स-अप' की चार बोतलें और शीतल जल के गिलास ट्रे मे सजाये नौकर ने ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। सामने ही रखे टी टेबुल पर उन्हें सजा वह चला गया। सभी ने बोतले उठायी और उसके आनंद में कुछ समय डूबे रहे।

'वत्रा!'

'जी!'—वह मौन समाधि टूटी तो वत्रा की मुस्कराहट भरी निगाह सामने उठी।

'अपना प्रयोजन तो तुमने ......!'—सांकेतिक दृष्टि मुस्कराई।

'आपसे अब क्या छिपा है, भाई साहब !'—वह निगाह फिर झुक गयी।

'वैसे, मैं अन्तरयामी तो नहीं हूँ, फिर भी आज ही सुना था कि किसी सुचित्रा के मर्डर वाला वह केस—हाँ, क्या हुआ उसका फिर ?'

'नौकरी से मुअत्तल्ली, और ....'कहते-कहते भयाक्रान्त वह आवाज थरथरा गयी।

'और क्या ?—कहो न साफ-साफ।'

गिरफ्तारी का वारंट किसी पौराणिक राम के उस तीर की तरह इन प्राणों के पखेरू जयंत का पीछा कर रहा है'—वे अनियारी बरौनियाँ आतंकित हो फैल गईं।

'और वह कपोत ड्राइंग रूम की गोद में आ गिरा है, अब। मेरे जयंत तुम निश्चिंत रहो। अब किसकी ताकत है कि तुम्हारा बाल भी बांका कर दे ? हालांकि यह 'केस' काफी गंभीर है। वारंट तो जमानती है न ?'

'नहीं'।

'हाँ ऽ ऽ आँ, ऐसे मामलातों में वारंट जमानती नहीं होते।'—और कुछ गंभीर होकर दोहराया—'केस काफी सीरियस है। पर, बता ! तुम अकेली ही इस गिरफ्त में कैसे आ फँसी ?—यही आश्चर्य की बात है। और भी तो होंगे न ?

'हैं न, मैं, प्रिया, रोशन—और भी कई लोग हैं, पर, उन्हें छू ही सकता है कौन ? बड़ी सफाई से बचाकर निकाल लिये गये हैं न।'—एक हताश उच्छ्वास सहसा ही मुँह से निकल गयी।

'तो मुख्य अपराधी तुम्ही लोग हो—तुम तीनों ? - फिर तीसरा अपराधी कहाँ है ?'

'अण्डरग्राउण्ड।'—कहते ही सलज्ज निगाह फिर नीची हो गयी।

'भूमिगत—क्या मतलब ? तुम लोगों की तरह वह भी यहाँ नहीं आ सकती थी ? अपना यह आवास तो अत्यंत 'सेफ' है निरापद है और विश्वसनीय भी। गुप्तचर विभाग की कोई भी चिड़िया पर तक नहीं मार सकती। मैं तो समझता हूँ कि ......।'—वह प्रश्नाकुल दृष्टि फिर संकेत से भर उठी।

'यहीं ले आयें उसे भी ?'

'क्यों नहीं, सभी एक साथ रहोगी तो मामले के दाँवपेच अपने पक्ष में बैठाने की भी सहूलियत ही रहेगी। पहले अपने मुवक्किल तो सामने हों न? बोलो, क्या राय है तुम्हारी'—तर्क ने निरुत्तर ही कर दिया। उस मुँह के घोंसले से 'हाँ' मरी हुई चिड़िया की तरह 'टप' से बाहर आ गिरी।

'तब चलो, फिर देर किस बात की। उसे भी लिवा ही लायें। इस सी. बी. आई. के दरिन्दे रात-रात भर जागते रहते हैं। स्वामी-भक्त जो हैं, पर हैं कुत्ते की जात ही। जरा-सा चूके नहीं कि उसका खामियाजा जिन्दगी भर भुगतना पड़ेगा।'—और हाथ तुरन्त कॉलबैल पर चला गया। बाहर सुमधुर टुनटुनाहट के साथ ही नौकर भीतर दौड़ आया।

'गाड़ी पोर्च में लगवा दो। हमें अभी बाहर जाना है, समझे?'

'जी, सरकार!'—वह तपाक से बाहर निकल आया। क्षण भर फिर मौन।

'कौन है जी, यह प्रिया?—प्रिया नाम ही सुन्दर है। आपके मुँह से पहले तो कभी नाम तक नहीं सुना था। कोई जेल अधिकारी रही होंगी?'

'नहीं।'—गमज़दा जबान धीमे से हिल पड़ी।

'तब इस गिरफ्त में कैसे आ फँसी?'—कुतूहल भरी दृष्टि जैसे चहक उठी।

'—मेरे ही कारण—ओह, बेचारी प्रिया!'—नम हो आई पलकें रूमाल से हौले पौंछ ली।

'वाह जनाब की निजी सलाहकार हैं वे। कुछ करती धरती भी हैं या योंही बस''''।'

'लीजन ऑफिस की लायब्रेरियन हैं।'

'हूँ ऽ ऽ ऊँ', जनसम्पर्क विभाग के ग्रंथागार की अध्यक्षा की इन कामों में ऐसी दिलचस्पी—आज ही मालूम हुआ।

'नहीं, नहीं, यह सब तो मेरे ही कारण हुआ है, वह बेचारी तो बिलकुल निर्दोष ही है। पड़ोसीन है तो साथ ही साथ उठ-बैठ लेते हैं—यह पीपल तो इस मोह के पापों से ही डूब रहा है, जिसकी छाँह में वह बैठा है; बिजली भी तो वहीं गिरती है न?'—लाचार ठंडी आह निकलकर उस उनींदे वायुमण्डल में खो गयी।

'हुई न यह बात। तुम्हारे साथ दफ्तर मे भी आती जाती रही होगी ?'

'कभी कभार ही।'

'किग्जवे के उस दफ्तर मे भी ?'

'येस !'

'कितनी बार रही थी साथ ?'

'यही, पाँच सात बार ही।'—बेबस दृष्टि ऊपर उठकर फिर नीचे गिर गई।'

'बहुत ही अजीज है तुम्हारी, बत्रा। सारा 'केस' समझ गया हूं। दर्शक भर तो रह नही सकती, और इसीलिए कानून की निगाह मे बच पाना मुश्किल है—पूछा जायेगा कि वह इतनी बार तुम्हारे साथ वहाँ गयी ही क्यों ? क्या सरोकार रहा है उसका ?—और फिर सुचित्रा के उस अन्तिम नाटकीय दृश्य को भी तो देखा होगा, उसने ?'

'जी'—झुकी झुकी निगाह ने स्वीकार किया।

'इतना गहरा लगाव कानून की नजरों में एक अपराध है ही, बत्रा जी। फिर हमारे देश के इस कानून की क्या कहियेगा। जज लोग और वकील अपनी वकालत से उसे जिधर फिट कर दें, वही फिट हो जाता है। देखा न उस रोज—कितना बिलख-बिलख कर रो रही थी वह माँ—गरीब असहाय और बूढी। जवान बेटे को जमीन के सिर्फ एक छोटे से टुकडे के लिए, कठघरे में खडे उन तीन हत्यारों ने उस रात, अपने ही खेत के मचान पर सोते हुए को कुल्हाड़ी से काट दिया था। महीनों तक वह बूढा इसी आशा मे पेशियों पर अदालत में हाजिर होती रही कि कभी तो इन कातिलों को सजा मिलेगी ही। खरगोश-सा वह मासूम विश्वास—उस बूढी माँ का, अटूट होते हुए भी तोड़ दिया गया—सेशन जज ने निर्णय दिया कि चश्मदीद गवाह के अभाव में यह अदालत इन्हे बरी करती है।

बूढिया ने सुना तो चीख पड़ी। गिरकर मछली की तरह तड़पती-तड़पती अचेत हो गयी। तत्काल पानी लाकर छिड़का गया। बार के ही चैम्बर में ला लिटा दिया गया। जब होश आया तो उन आँसुओं की उस गंगाजली के मुँह से एक ही पुकार उठी—'जज साहब'! आप ही अब मुझे भी जहर दे दो—न्याय तो दे ही नही सकते, जहर ही सही। दे दो न मुझे ?—मेरे बेटे के

मब कातिल बरी हैं तो मैं ही जिन्दा रहकर क्या करूँगी। रोती हुई वह फिर सहसा चीत्कारी, और पछाड़ खाकर फिर गिर गयी। मैंने उसी रोज देखा बत्राजी कि वहाँ सभी देखने वाली आँखें आँसुओं से छलछला आई हैं।

और, यह किसी फिल्म की कहानी नहीं, बत्राजी! हकीकत है आज की।—सचमुच देश का यह कानून अंधा है क्योंकि यह सवेदनशील और मानवीय कतई नहीं है। एक ओर ये ही अदालत, रस्सी के फंदे से होने वाली पीड़ा के कारण कातिलों की फाँसियाँ तक रुकवा देती है, तो दूसरी ओर धारदार करौती से रेत-रेत कर गला काटने वालों को चश्मदीद गवाह के अभाव में इस तरह बरी भी कर देती है—कहीं न कहीं इस कानून मे खामियाँ जरूर हैं।

भई, भगतसिंह और बिस्मिल के फाँसी के फंदे की रस्सी रेशम की कहाँ बनी? लेकिन वे उस फंदे में झूले थे। और अब से पहले तक झूलते ही रहे हैं—तब किसी भी कानूनदा ने रस्सी के फंदे वाली फाँसी को अमानवीय कहाँ बताया था? न्याय का विशाल महल, तर्क-वितर्क के ऐसे ईंट-पत्थरों को अपने ढंग से चुन-चुनकर बनाया है, जो आगे भी सनद रहेगा ही।

—और वह सगर्व दृष्टि कोने वाली आलमारी में सजी कानून की उन किताबों से हटकर अब रोशन और बत्रा पर ही जम गयी। विस्मय विमूढ़-सी दोनों नारियों ने एक-दूसरे की तरफ देख भर लिया। बत्रा ने धीरे से कहा —'लेकिन, भाई साहब! आप भी तो इसी कानून की दुनिया के कर्णधारों में से एक हैं न?'

'वी आर पेड फॉर इट!'—हितों की रक्षा न करें तो ये सुख-सुविधाएं और तनख्वाह की इतनी मोटी रकम हमें फिर कौन देगा, बत्राजी?'

'फिर चाहे सरकारी हित जायज़ हो न हों?'

'हूँ ऽ ऽ ऊँ!'—शरारत भरी कौंध से वे पुतलियाँ चमक उठीं। बोल तपाक से निकल पड़े—'भई, बत्राजी! रोटियाँ चुपड़ी हों और वह भी दो दो हों तो ऐसा कौन नहीं चाहता?—ह्यूमन बीइंग वी आर—हम भी तो जिन्दा इन्सान हैं, हाड़-माँस के पुतले ही। दो जून खाने को तो चाहिये ही न —नहीं चाहिये क्या?'

'यही तो "यही तो है वह सत्य !'—उस भेदभरी निगाह ने अपनी बगल में ही बैठे उस व्यक्तित्व को घूर लिया। काली फ्रेम के चश्मे के मोटे काँचों के पीछे चुहल करती पुतलियाँ क्षण भर स्थिर हो, बन्ना के चेहरे पर जैसे चिपक सी गयी।

तभी कार की घर्र र्र करती ध्वनि और हॉर्न की पीपी बाहर से सुनाई पड़ी। बन्ना और वह अटार्नी जनरल उठ खड़े हुए, बतियाते हुए तत्काल बाहर निकल आये।

बैठते ही कार किसी अज्ञात लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ी।

—वह उजला-उजला उजेला " चंदा की उस चांदनी का और वह सुनसान रास्ता—कहीं दूर हवा की लहर पर तैरती वह मधुर ध्वनि ये मौसम और ये दूरी ! —लेकिन, आज तो वे सभी दूरियाँ सिमटकर समीप नहीं आ गई हैं ?'—स्टीयरिंग थामे विचारों की उन अंगुलियों ने कार को नया मोड़ मन को आश्वस्त कर दिया।

ग्यारह

डॉ. लोहिया टी.बी. चिकित्सालय के सपाट खुले हुए फाटक में एंम्बुलेंस धीरे से हिचकोले खाती अंदर घुस आई। सुबह के वक्त सलीके से खड़े कतारबद्ध सिल्वर ओक के लम्बे-लम्बे वृक्ष, रातरानी और मोगरे की झाड़ियों की मीठी-मीठी गंध से झूमते अब भी इतरा रहे हैं। आसमान छूती उन फुनगियों में उलझा हुआ वह चांद अब कहीं नहीं नजर आता। विस्तृत दालान के बीच संगमरमर के फव्वारे के पुरइन पर सजीव-सा वह सफेद कपोत न जाने कब से अपनी गरूर भरी ग्रीवा टेढ़ी किये अब भी बैठा है। उल्लास से ऊपर उछलते हुए पानी की छितराई बूँदें गिर-गिर कर उसे और भी उज्ज्वल बना रही हैं।

पर, यह देखता है कौन ? कौन जाने यह जीवन कितना अनदेखा ही रह जाता है, हमसे—और"""और अंजली में भरा हुआ इस समय का यह गंगाजल, अपनी ही अंगुलियों की पोरों से रिस-रिसकर, पैरों तले की धूल

को दुःख के दलदल में परिवर्तित करता रहता है। न जाने यह कौनसी विवशता है कि हम अपनी ही इस अंजुरी का गंगाजल पी ही नही पाते—फिर दूसरों की प्यास बुझा सकना तो दूर की बात है न !

चिकित्सालय के पोर्च में एम्बुलेंस आकर खड़ी हो गयी। आगे की सीट का फाटक तत्काल खुल पड़ा और डॉक्टर नीचे उतर आया। पीछे बैठीं दोनों नर्सें भी तुरंत बाहर आ गई। स्टेचर पर मरीज को लिटाये वे सभी लिफ्ट में आ गये। गूऊंऊं की गूंज के साथ चंद सैकिन्ड में तीसरी मंजिल पर आ पहुंचे। साथ के कागजात का क्लिप अपने तीन सीनियर साथियों के सामने रख दिया। करीब आधा घंटे तक उस केसहिस्ट्री पर ही विचार विमर्श चलता रहा। स्ट्रेचर से सहारा देकर मरीज को आराम कुर्सी पर बैठा दिया गया तो यह उन्हें टुकुर-टुकुर देखता रहा।

--डॉक्टर। न जाने कितने अन्दर 'ट्रामल्स' जेलों से इसी तरह निकालकर, ऐसी ही दशा में बाहर के इस बेदर्द माहोल के कूड़ादान में फेंक दिये जाते हैं जो वहीं दम तोड़ देते है—उन्हें तो यह कूड़ादान भी नसीब नहीं होता।'

'येस, येस !' - और वे सभी खिलखिलाकर हँस पड़े।

'यू आर ए बिट सेंटिमेंटल, है न ? भावना में इस तरह ज्यादा बहते नहीं हैं !'—डॉ. गंभीर ने मुस्कराते हुए अपने उस जूनियर से कह दिया। 'हमारे लिये तो हर मरीज एक सा है। हमदर्दी का उसूल हम सभी के लिये है, पर, इतना अधिक भी भावुक नहीं होना चाहिये हमें। मेरी समझ में यह ....'

'क्योंकि, सर ! '— वह बीच ही में बोल उठा। पर, कुछ हिचकिचाहट से आवाज गले ही में अटक गयी।

'हाँ, हाँ, कहो न कोई सगा-सम्बन्धी है ?'

'नही, सर ! ऐसी तो कोई बात नही, पर - यह मरीज मेरी मातृशिक्षा संस्थान का कभी विशिष्ट छात्र रहा था, जब मैं एम. एस. के तीसरे वर्ष में था तब यह क्रता एम. एस-सी-की फाइनल में थी। भौतिक विज्ञान की यह मेधावी छात्रा अपने अध्ययन के उपरान्त, किसी भी विश्वविद्यालय के विभागीय अध्यक्ष पद को सुशोभित कर सकती थी। पर, आज इसकी इस

कारुणिक दशा को देख कर मन कुछ भावुक हो ही गया। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ' निस्पृह भाव से वह दृष्टि फिर नीचे झुक आई।

'अच्छा ऐसा है! डॉक्टर श्ररुण, यह केस अब तुम्हारा ही नहीं, हम सभी का है।' और एक्सरे प्लेट को हाथ में उठा लिया।

'देखिये न डॉक्टर फेफड़े तो दोनों ही इस कदर स्पॉटेड हैं।' निगाह फिर सामने उठी। 'इट इज़ ए टैस्ट केस फॉर श्रस, डॉक्टर। अच्छा, इसको भी श्राइसोलेशन के वी. श्राई. पी. चैम्बर ही में ले जाश्रो।'

'उसमें तो पहले से ही वह मरीज है, न?'

तो क्या हुआ मर्ज भी तो एक ही है!'—श्रौर डॉ. गंभीर के होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट उतर आयी।

सहारा देकर मरीज फिर को स्ट्रेचर पर लिटा दिया गया श्रौर वह स्ट्रेचर ट्रॉली उस कन्सलटेण्ट चैम्बर से बाहर निकल श्राई। सभी जैसे मौन श्रौर गंभीर। पाँच मिनिट ही बीते होंगे कि स्ट्रेचर के साथ उन्होंने उस वी. आई. पी. चैम्बर में प्रवेश किया। एक परिचारिका जो पहले ही से वहाँ मौजूद थी, लपककर समीप श्रा गयी। सकेत हुश्रा— उस बैड पर""श्रौर मरीज को बैड नं. 3 पर सहारा देकर सुला दिया गया। मरीज की आँखें कृतज्ञता के भाव से भर श्रायी डॉक्टर श्ररुण ने देखा तो धीरे से बोला, सुता बहिन श्राप श्रब निश्चित रहियेगा। हम सभी सेवा में हैं, श्रब तकलीफ तानिक भी न होने देंगे।

—श्रौर श्राप देखियेगा कि शनैः-शनैः एक दिन पूरी तरह स्वस्थ होकर ही यहाँ से लौट जायेंगी। डॉक्टर गभीर श्रपने देश के चिकित्सा विज्ञान की जानी-मानी हस्ती हैं। यकिन रखें, श्रब सब ठीक हो जायेगा।'

सुनकर मरीज ने फिर कृतज्ञता भाव से सिर्फ मुस्करा दिया। शीतल हवा के मंद-मद झोको से हिलते, खिड़की के पारदर्शी काँच के पास रखे गुलदस्ते के दो गुलाब, श्रपनी पंखुड़ियों से छू-छूकर उसे सहला रहे हैं। स्वस्थ नीले श्राकाश का एक टुकड़ा भी काँच के उस पार श्रनंत विस्तार तक फैला है। नभी नर्स ने श्राकर धीरे से कहा—'अपनी यह बाँह इधर करो'—श्रौर हल्के हाथ से सुई लगा कर स्पिरिट का फोहा मल दिया। वे बीमार श्राँखें कभी उस नीले श्रनंत विस्तार को, तो कभी गुलाबी गुलाब के जोड़े को काँच की सतह पर श्रठखेलियाँ करते देख ही रही थी, नर्स ने फिर धीरे से पुकारा

—'अच्छा जी अब जरा मुँह खोलो तो' काँच के गिलास की दवा धीरे-धीरे उस खुले मुँह में उड़ेलने लगी।

—'एक घूँट और दवा खत्म। अब सोजाओ, अच्छी तरह 'उस मुस्कराती मीठी ध्वनि से मरीज़ का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने तब वक्ष तक सफेद चद्दर खींच दी। छत का पंखा हमेशा की तरह दो पर अब भी घूम रहा है। नर्स के जाने की ही जैसे नींद प्रतीक्षा कर रही थी वह गयी तो टप से पलकें अपने आप मुंद गयी। सारा वातावरण फिर शान्त और सुस्थिर हो गया।

तभी बैड न. एक पर सोये मरीज ने करवट दूसरी ओर वदली तो वे उनींदी आखे खुल पड़ी। दृष्टि चुपचाप चारो ओर आसपास घूम गयी, देखा —कुछ ही दूर पर उस शायिका पर कोई सो रहा है। जीवन के सुनसान और बोझिल एकान्त का यह साथी भी कोई बीमार ही है। चाहे जेल हो, चाहे अस्पताल हो—अब इस बीमार जीवन के लिए तो सब एक से ही हैं।

· और वह भोगा हुआ सारा अतीत, चलचित्र की तरह चेतना की पिछवई पर एक एक कर उभरने लगा। और वह सुचित्रा – इसी जिन्दगी की इस तपती हुई गर्म तवे-सी गच पर पानी की शीतल लहर की तरह खिंच कर आखिरकार मिट ही गयी। मेरे दुर्घ संघर्ष का साथी लेत क्या रहा, इस चेतना की आँखों का ध्रुव तारा ही टूट गया।

और स्मृतियों की वे लहरें इस समय के तट बंद में लौट-लौट कर टकराने लगी · उस सुची के कारण, मेरे वे अजीज साथी भी आशंका भरी निगाह से किस तरह देखा करते थे, हमें? भई, लो न, अब तो कुछ नहीं है ऐसा मेरे पास कि जो इस शख्सियत को देखती वैसे नजरें मन ही मन मुस्करायेंगी। साफ हो गया न अब तो सब। क्लीन स्लेट है, यह हमारी जिन्दगी। और उस छाती में हल्का-हल्का सा दर्द फिर उठने लगा, तो दाहिने हाथ की वे बेजान अंगुलियाँ भी उसे हौले से सहला उठीं। पलकें मुंद पड़ीं। सफेद चेहरे पर बेचैनी की हल्की झाँई घिर आई। धीमे से आवाज गूंजी देजी!'

समीप ही आलमारी के कपड़े महेजती देजी तत्काल दौड़ आई।

'दर्द!'—एक धीमी-सी कराह। दौड़कर दूसरी आलमारी खोल पानी का गिलास और दो गोलियाँ लिये वह फिर लौट आयी।

'खोलो मुँह !' –और एक-एक गोली पानी के सहारे गटक ली गयीं। डेज़ी ने देखा कुछ पलों में ही वह तनाव अब शांत हो चला है। वे मुंदी-मुंदी पलकें एक बार कुनमुनाईं, फिर स्थिर हो गयी—सारनाथ की लेटी हुई उस बुद्ध प्रतिमा की तरह। वह तुरन्त वहाँ से खिसककर फिर अपने काम में लग गयी।

दोपहरी का सूर्य देवव्रत भीषण भीष्म की तरह किरणों के असंख्य बाणों से, माटी की इस विशाल देह को छितराने में अब भी व्यस्त है। बाहर लू के गर्म-गर्म थपेड़े, खिड़कियों के बड़े-बड़े काँचों से टकरा-टकरा कर रह जाते है। पंखे सभी ऑन हैं, फिर भी उमस तो है ही। आँखें मुनमुनाकर फिर खुल पड़ीं। दृष्टि फिर चारो ओर कुछ पल चुपचाप देखती रहीं लेकिन उससे कुछ ही दूर पर लेटा वह मरीज अब भी शांत भाव से सो रहा है। न जाने यह सब क्यों अच्छा लग रहा है उसे। शायद इतने दिनों के अकेलेपन की बेरहमी से कटती यह जिन्दगी, अपने आस-पास किसी जीवित प्राणी के लिए तरस गयी थी। वैसे यहाँ भी क्या नहीं है नर्सें, डॉक्टर, दवाइयाँ सभी कुछ है। डेज़ी और डॉक्टर अरुण मित्रा का कितना स्नेह उसे मिलता रहा है यहाँ। यह मित्रा ही हैं कि जिनके कारण इस जिन्दगी की यह लौ सिर उठाये हुए है। सेन, सान्याल, चौधरी, उग्रा सिंह— सभी तो भूमिगत ही हैं। अपनी रिहाई के दूसरे दिन ही किसी तरह चित्तरंजन एवेन्यू के उस तल पर की मद्धिम रोशनी में मिलन हो पाया था देखते ही तपाक से बोल पड़े—'पहले ठीक तो हो लो।'

और 'पहले ठीक होने के लिए' ही वे मित्रा जैसे लोग यहाँ उठा लाये। तब से पड़े हैं यहीं पर—इस दूभर जिन्दगी की यन्त्रणा झेल रहे हैं— मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः न धूम्रो चिरायत।

बस, धुँधुआते रहो अब—न जाने कब मिलेगी छुट्टी इससे ? कभी-कभी तो लगता है कि मौत ही छुट्टी दिलायेगी मुझे—सोचते ही आँखें सजल हो गयीं। लगा कि वह जेल से छोड़ क्या दिया गया, लोगों की निगाहों में मुखबिर तन कर निकल आया है।

पर, क्या यही सच है इस अंधे सियासती माहौल का ?—अपने ही हमदम और हमराही है वे। फिर ऐसी उपेक्षा और अपमान भरी दृष्टि का मतलब ? खैर, मुझे कोई भी अपने इस रास्ते से नहीं हटा सकता। यह

विराट देश मेरा है और ये करोड़ों देशवासी मेरी इस देह के रक्त की हर बूंद पर अपना अधिकार जो रखते हैं—तो, यह उल्लास भी उन्हीं के अन्तर्देश मे जलता हुआ आशा का दीप बनेगा ही – चाहे अकेला नन्हा-सा ही सही—पर, है तो दीपक ही जीवन का उल्लास—प्रकाश ! प्रकाश।

—और वह दृष्टि दीये की उज्ज्वल लौ की तरह फिर ऊपर उठी। सीलिंग फैन निर्बाध गति से अब भी उसके सिर पर मंडरा रहा है। तभी डेज़ी अपनी दो सहायक परिचारिकाओं के साथ स्ट्रेचर ट्रॉली लिये वहीं आ पहुँची।

'क्या सोचा जा रहा है भई, उल्लास ? चलो, अब इस इंटेसिव केअर के चैम्बर से पास ही वाले बडे कमरे में 'शिफट' कर देते हैं, तुम्हें। अकेलेपन की शिकायत करते रहे हो न, वह भी दूर हो जाएगी। तुम ही से कुछेक और मरीज भी उसी में शिफट किये जा चुके है।'—कहती हुई सारा आवश्यक सामान बटोर लिया गया, तो बोली—'लो' लेट जाओ इस पर'—ट्रॉली की ओर संकेत करती निगाह मुस्करा उठी।

' - मैं ऐसे ही चला चलूंगा अब तो कुछ चल फिर सकता हूँ न। किसी सहारे की जरूरत नहीं है अब, सिस्टर !' - और उल्लास धीरे से उठकर, ट्रॉली पर रखे सामान के साथ चलकर समीप के कमरे में आ गया तो शायिका नं. 11 पर उसे लिटा दिया गया।

तभी डॉ. अरुण मित्रा भी अपने जूनियर साथियों के साथ अन्दर आ पहुँचे।

'दत्ता, क्या हाल चाल है, तुम्हारे ? ठीक हो न अब तो ?' - उत्तर में सुनने वाले का चेहरा भी खिल उठा।

'लो, ये तुम्हारी अमृत बाजार पत्रिका', 'इण्डिया टुडे' और 'रविवार' लेकिन अभी दिमाग पर अधिक बोझ डालना ठीक नही है—फिर भी दिल बहलाने के लिये यह मसाला दिया जा रहा है। इच्छा को भी कहाँ तक दबाया जा सकता है—वैसे ही कभी कभार उलट पुलट लेना इन्हें। ठीक !'— और उसके वक्ष को स्टेस्थेस्कोप लगा टटोलने लगा। पट्टा चढ़ाकर रक्तचाप लिया।

सीरिंज लिये ट्रेज़ी भी तत्काल आ पहुँची। हँसती हुई सुई लगा दी गयी। तकिये का सहारा लिये उल्लास अपने नये बेड पर बैठ गया। डॉ. मित्रा तभी उसके कान के समीप खिसक आये—'किसी ऋता को भी जानते हो, तुम ?

उल्लास की आँखें उत्सुकता से भरी-भरी, टुकुर-टुकुर देखती रहीं। वाणी विस्मय अवाक्।

'कुछ ही दिन हुए जेल से मुक्त कर दी गई है। आयंगर की कोशिश इस तरह कामयाब हुई है। अपील पर उच्च न्यायालय ने रिहाई का आदेश दिया है। नहीं तो ···' और आवाज़ थरथरा गयी। उल्लास ने सुना, लेकिन आँखें निर्विकार भाव से खुली हुई, भीतर ही भीतर क्षणभर कुछ टटोलती रहीं। डॉ. मित्रा खड़े-खड़े उसकी यह दशा देखते रहे। धीरे से फिर बोल उठे—'उस कंकाल शेष का भी यहीं चल रहा है इलाज।'

'है !' जिज्ञासा के विस्मित नेत्र दोलायमान हुए। 'और हाँ, जानते हो —यही है वह।'

'बेचारी ऋतु !'—एक शीतल उच्छ्वास उस रुग्ण वक्ष को उफनाती हुई निकल गयी। डॉ. मित्रा ने सुना तो भाव विह्वल खड़े रहे। सोचा—कितना निसर्ग स्नेह है इस हृदय में। किसी डूबते हुए मस्तूल-सी जिन्दगी को ऐसी ही मोहब्बत बुलंदगी दे सकती है। अंतरंग में डूबी डॉक्टर की उस दृष्टि ने देखा कि उल्लास की आँखें किसी भीगी याद से सजला गयी हैं।

'ऑल राइट, उल्लास ! अब आराम करो तुम।'—ऊपरी कठोरता सहसा-ही बोल उठी। 'हम चल रहे हैं अभी। साँझ को फिर राउण्ड लगेगा ही' और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये वह बाहर निकले ही थे कि अन्य साथी डॉक्टर भी मरीजों को देखते-देखते उन्हीं के पीछे हो लिये। वातावरण फिर शान्त और स्वहीन हो गया। उल्लास ने 'इंडिया टुडे' के दो एक पन्ने पलटे। 'गांधी' फिल्म के कुछेक दृश्य-चित्र चिकने और साफ-सुथरे ग्लेज पेपर पर छपे बड़े भले लग रहे हैं। वह डांडी यात्रा का क्लोज अप, कस्तूरबा के अंतिम क्षणों का मर्म स्पर्शी सामिप्य और अन्तर्लीन गांधी, विभाजन, खूँरेज़ी और आगज़नी का वह अंधड़, निरुपाय-सी लकुटिया लिये, अपनी ही राह चलती वह अकेली महान् आत्मा, और अंत में उसी की दहकती चिता

की वह दृश्य—लगा कि पश्चिम की दृष्टि ने भी इस महत् आत्मा के सौन्दर्य और सत्य को कुछ हद तक सही रूप में परखा जरूर है।

—यही कुछ सोचते-सोचते पलकें अपनी पुतलियों पर झुक आई, और ,मर्माहत, थकाहारा वह उल्लास फिर नींद की गोद मे जा गिरा।

बारह

दस बजा चाहते हैं, इस वक्त। नाइट ड्यूटी के चेम्बर में आराम कुर्सी पर शिथिलगात बैठे डॉक्टर ने अपनी कलाई मे बंधी घड़ी की ओर देखा। वह उठ खड़ा हुआ, अलसाये हुए कदमों से अपनी मेज के पास आया तो चोंगा उठा लिया। रिंग करते ही फोन मिल गया—'हलो! हाँ -जी डियर! मैं बोल रहा हूँ—तुम्हारा मित्र। हाँ ऽ ऽ आ, अभी सब कुछ ठीक-ठाक है - मरीज भी—हाँ, अब तो सोयेंगे ही दस जो बज रहे ·· ··· हाँ, हाँ और सब ठीक है—कुछ ·········· ओह, यह बात है? हूँ हूँ हूँ हूँ ·· ··· कुछ देर बाद चक्कर लगा ही जाना—नहीं, नहीं—जब भी सुविधा हो तब—डेजी डियर के लिए कुछ भी जरूरी नही – है न? हूँ हूँ हूँ—'क्षणभर फिर मौन।

'—और देखिये, कुछ देर बाद मैं वहाँ जा रहा हूं······ वही—हाँ, हाँ सी. बी. आई. ·· ·····हाँ, ऑफिस ही पहुँचूगा······ हाँ ऽ ऽ आ, पीछे से यदि आवश्यकता पड़े तो फोन कर देना – याद है न नम्बर? येस-येस यू नेवर रिंग एट रॉंग नम्बर········ ओ. के.।'

चोंगा धीरे से रख दिया। सफेद गाउन चटपट उतार कर हैंगर पर टाँक दिया। सैंडिल पहिने और शीशे के सामने आ खड़ा हुआ। कनपटी पर बिखर आई केश राशि को ठीक से संवारते हुए स्वयं मुस्करा उठा। सोचा —'कुछ तो लोग कहेंगे ही, कहते रहें, क्या बिगड़ता है?—पर, यह डेजी भी कितनी भोली है? भली और प्यारी है कि इसे कभी धोखा दे ही नहीं सकता, लेकिन इसे अंधकार में भी नहीं रक्खूँगा। मेरी लाचारी यह खुद अच्छी तरह जानती है। सेवा-निवृत्त बाप की सबसे बड़ी औलाद हूँ तो अपनी

जिम्मेदारी भी निभाई ही है। लेकिन इस डेज़ी का यह निष्कलंक स्नेह मेरे लिए पूजा-सी पुनीत धरोहर है। कभी नहीं झुठलाऊँगा उसे।

उसने फिर सामने दर्पण में देखा—उन आँखों ने अपनी ही गहराई में उतरकर झांक लिया—सच है यह, मेरी डेज़ी डियर एक पुनीत धरोहर है। उसे जुठला नहीं सकता—नहीं झुठलाऊँगा। इसी निश्चय के साथ चैम्बर से बाहर निकल, नीचे दालान में आ गया। स्टैण्ड से स्कूटर स्टार्ट करते ही, उस सुनसान होती हुई सड़क पर दौड़ने लगा।

लेकिन चंचल मन तो उस सुदूर के शहर की प्रशांत पार्क कॉलोनी में खडे बंगले के ड्राइंग रूम में पहुँच गया है। चाँदनी की यह धवल और उजली आभा भी उसे उद्विग्न किये दे रही है। काँच की उस अलमारी के किवाड़ जैसे अपने आप खुल पड़े तो उसने बढ़कर वह अलबम उठा लिया, जिसमें उसकी उन अनेक मंगेतरों के छायाचित्र करीने से सजे हुए हैं।

मित्रा ने तो कई बार उन्हें पहले भी देखा है। यह बेचैन मन आज फिर उन्हें अपनी कल्पनाजीवी आँखों से उलट-उलट कर देख रहा है। लेकिन पापा जो रिटायर्ड हैं– प्रश्न केवल ऑफर का ही है, उनके लिए। कितनी सुन्दर और भली सूरतें हैं ये। लेकिन सीरत भी चाहिए न—दो डॉक्टर बहिनें अनब्याही जो बैठी हैं। बेचारे पापा ने जो भी पास था, सारा का सारा हम लोगों पर ही निछावर कर दिया है। छुट्टन तो अब भी रुड़की के इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ ही रहा है। मैं और बहिनें डॉक्टर हो ही गये। लेकिन क्या-क्या कमियाँ हैं रुचिरा और सुरुचि में? मुख-मण्डल पर रुपहली चाँदनी सदा ही मुस्कराती रही है, उनके। यही नहीं, गुणवती भी हैं, लेकिन""" लेकिन इस समाज को तो दहेज चाहिए न। और उसके स्मृति-पटल पर उन जले हुए शवों के पोस्ट मार्टम की याद उभर आई—बाप रे! दहेज के दाह में जले-जले वे सुन्दर शरीर भी कितने वीभत्स लग रहे थे। सारी देह में हल्की-सी सिहरन दौड़ गयी तो गिअर और थ्रोटल थामती हुई अंगुलियाँ भी काँप उठीं।

बेचारे पापा!—सुखद भविष्य के कितने स्वप्न देखे होंगे अपनी संतान के लिए। क्या वे भी न जल जायेंगे ऐसे ही। दहेज के इस दानव की विकराल छाया तो दिनोंदिन समाज पर छाती जा रही है। पापा का वह बूढ़ा,

झुर्रियों से भरा-भरा करुण चेहरा मिश्रा की चेतना के समूचे पर्दे पर क्लोज़ अप की तरह चमक उठा। डॉक्टर पुत्रियाँ और दहेज! कितना निर्मम हो गया है यह समाज? हम लोग फिर भी मनुष्य की मनुष्यता में विश्वास रखते हैं—लेकिन, इस मनुष्य की मनुष्यता—वह तो कुत्तों और भूखे भेड़ियों से भी गयी बीती है न आज?—हर्बर्ट रीड ने झूठ थोड़े ही कहा है, यह? फिर हमें सुकून मिले भी तो कैसे और कहाँ से?

और तब मेरे बिक जाने के सिवाय और चारा ही क्या है? पापा अपने मुँह से कुछ न कहें तो क्या हुआ, उनकी निराशा की झील सी उस निगाह के बोल क्या मेरे मन को नहीं सुनाई पड़ते?

कितने भोले रहे, मेरे पापा! कि इस तरह हम पर ही सब लुटा बैठे हो। पेंशन के चंद चिप्स पर माँ को लिये अब भी जिन्दा हो। बेटियों की कमाई को छूते तक नहीं, और मुझे भी कितना भर मिलता है?

उस रोज रुचिरा बहिन के सामने कितने सहज भाव से कह उठे थे कि मैं अपनी ही मनपसंद लड़की से शादी कर लूँ—कर तो आज ही लूँ—मेरे पास मेरी डेज़ी है ही। लेकिन मेरी उन माँ जाइयों के दहेज का फिर क्या होगा? लोग लाख-लाख तो टीके ही में माग रहे हैं। शादियों का सारा खर्च अलग से। डॉक्टर है तो क्या हुआ—औरत तो औरत ही है न?—कितनी लंगड़ी दलीलें है, ये?

—ऐसा नही हो सकता जी। जो पिता हमारे लिये इस तरह लुट गये हैं, मैं भी उनके लिए बिक जाऊँगा—ओह! मेरी डेज़ी!—डेज़ी डियर—कितना विवश हूँ मैं। पर, तुम तो जानती ही हो कि इस परिसर की हर जुबान पर हैं हम दोनो। सचाई क्या है, इसे कोई नही जानता। मुझ जैसे बिकने वाले लोग क्या खाकर मोहब्बत करेंगे?—लानत ठोको न मुझ पर।

मेरी डेज़ी डियर! तुम्हे इसका प्रतिकार तो करना ही चाहिये। तभी सामने से आती किसी कार की तेज रोशनी से उसकी दृष्टि चौंधिया गयी। स्कूटर की गति धीमी हो गयी। गाड़ी समीप आते ही रुक गयी, देखा—कि कार नहीं, जीप है यह, और वह भी पुलिस की।

घर्रर्र करता स्कूटर भी स्वतः बंद हो गया। 'हलो मिश्रा!'—आयगर ने उतरते ही तपाक से हाथ मिलाया।

'कहाँ जा रहे थे, इधर?'

'तुम्ही से मिलने ।'—और होठ मुस्करा उठे ।

'इस वक्त ?—मैं भी किसी की टोह में निकला हूँ । एक चिड़िया तो हाथ लग ही गयी है, पर, खास चिड़िया को पकड़ने की टोह में ही जा रहे थे अभी । सब कुछ अब मालूम हो चुका है, पर उस काले नाग के बिल में हाथ डालने की पूरी तैयारी करना है ।'

'कोई राजनैतिक परिन्दा होगा ? तभी तो परेशान नजर आ रहे हो । नही तो भई, सी. बी. आई. वालों के कहने ही क्या हैं—सीधा प्रधानमंत्री से सम्पर्क है न तुम लोगों का ।'

—तभी दूसरी ओर से एक हैडलाइट तेज रोशनी फेंकती इसी ओर दौड़ती दिखाई दी । दोनों ही चौकन्ने हो गये—कौन हो सकता है, इस वक्त । गाड़ी धीमी गति से उनके पास से गुजरी । उन्हें देखते ही पीछे बैठे व्यक्ति ने संकेत किया तो ब्रेक लगते ही मोटर साइकिल कुछ आगे जाकर रुक गयी । एक भीमकाय देह उतरकर पास आ पहुँची ।

'गुलजार !'—पहचानते हुए आयंगर आश्चर्य बोल उठा ।

'हूँ !'

'किधर जा रहे थे ?'

'तुमसे मिले ही ।'—भर्राई हुई वह आवाज़ गूँजी । शराब की बू हवा में लहरा उठी ।

'हूँ ऽ ऽ ऊँ, बोलो फिर ?'—बांये हाथ से रिवाल्वर टटोलते हुए आयंगर बोल पड़ा ।

'वे आँखें चार हुईं तो क्षण भर ही में वह सूनी सड़क आतंकित हो उठी ।

'कहिये गुलजार, क्या इरादे हैं, तुम्हारे ?' - आवाज कसते तीनों ही डिप्टी जो अब तक अन्दर जीप में थे तपाक से उतर आये । गुलजार की चमकती निगाह ने घूर कर उन्हें देखा । नशे में डूबी जैसे क्षण भर मौन कुछ टोहने लगी । पीछे मुड़कर बोला—'चलो बिट्टू, गाड़ी तो लौट ही चलें ।'

'नही गुलजार ! इस तरह बिना कुछ कहे ही कहाँ जा रहे हो ?'—और आयंगर ने बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रखा ही था कि उसने तुरंत झटक दिया—'नो सर, इस तरह छूओ मत मुझे ! जानते नहीं हो, मैं बहुत

ही खतरनाक व्यक्ति हूँ कभी भी किसी की भी जान ले लेना तो मेरी आदत है' वह भर्राई आवाज पल भर के लिए गूंज कर फिर डूब गयी।

तभी दूसरे डिप्टी ने डपटकर पूछा—'क्यों बे इतनी रात किसकी इजाजत से जेल के बाहर घूम रहा है?' और उसे मैले से धारीदार टी शर्ट को गले से पकड़कर हिला दिया।

'छुओ मत!'—एक तेज किन्तु तीखी चिल्लाहट।' देखा है न, यह खिलौना। दनादन मौत का गीत गाता है—एक एक को अभी इस नंगी जमी पर सुला ही देगा।'—हाथ की पिस्तौल हवा में हिलाते हुए, आवाज हवा को थर्रा गयी।

'हरामजादो! तुम मुझसे पूछ रहे हो, कि किसकी इजाजत से घूम रहा हूं? आयंगर, सावधान! हमारी गिरफ्तारी के बलबूते पर ही तुम डी. आई जी. इन्टैलिजेंस बने हो न? लेकिन अब मैं ही तुम्हारी मौत का पैगाम हूं, समझे? कान खोल कर सुन लो तुम हमारे आई श्री मल्होत्रा साब ने तुम्हें हुकुम दिया है कि उन लोगों के खिलाफ सभी मुकदमें कल ही उठा लो। नहीं तो—सीना फुलाकर आँखें तरेरते हुए फिर बोला तुम्हारे सर पर मँडराती यह मौत किसी भी रात तुम्हें जरूर धर दबोचेगी।

'समझे बच्चू! -तुम्हारे ही बाप ने कहा है, यह।

फिर—फिर हम कुछ भी सुनना नहीं माँगता। हूं, चल बे विट्टुआ!'-और एक ही किक में गाड़ी स्टार्ट। पीछे मुड़ी और तुरन्त फिर उसी दिशा में भग चले, जिधर से आये थे।

लेकिन आतंक के ये बारूदीकण, उस रुपहली चांदनी के उस उफनते प्रकाश पर फैल-फैलकर उसी में डूब गये। आयंगर, डिप्टी और डॉ. मित्रा स्तब्ध से एक दूसरे का मुँह देखते रहे। तभी उस ठंडे मौन की बर्फीली चट्टान पर वाणी की चोट करते हुए आयंगर बोल उठा-—'देख लिया न, हम है सी. बी. आई. के डी. आई. जी.। कितने खतरे है इस नन्ही सी जिन्दगी को। कुछ लोग लोगों को जान बख्शा करते हैं तो कुछ लोग इस तरह हमेशा किसी की जान लेने पर आमादा रहते हैं।

—जानते हो, इसका क्या इलाज है?'—अपनी रिवाल्वर पर दृष्टि गड़ाते हुए कह उठा—'एक और मौत। मौत का इलाज तो मौत ही है।

डॉक्टर, हमारी यह सीरिंज दूर से ही ऐसा इन्जेक्शन लगा देती है कि ऐसी बीमार और विकृत आदतों का मर्ज सदा के लिए शांत हो जाता है। देखा न—अभी से धमकियाँ मिल रही हैं, लगता है घाव कहीं अधिक रिस रहा है उस गल्होत्रा के। सर, सर करते सदा ही यह मुँह सूखता रहा है, पर अब ये सर सिर पर ही चढ़ बैठना चाहते हैं। मिश्रा ! गर्म गोश्त की राजनीति है यह। कहाँ नहीं है इसका अस्तित्व ? इसके काटे हुए को फिर कुछ और सूझ ही नहीं सकता। बीस हजार नारियाँ तो केवल पहाड़ जेल में ही, विचाराधीन कैदियों की नारकीय जिन्दगी बसर कर रही हैं। कई गुलज़ार और विट्टू हैं जो आये दिन नोंच नोंचकर रंगरेलियाँ करते रहते हैं, और करते रहेंगे। क्या प्रशासन यह सब नहीं जानता ?—बेचारी कोई महिला पत्रकार फिर कितनी ही किताबें क्यों न लिखे, इन पर। इन गुलजारों का लेकिन क्या बनता-बिगड़ता है ? —सभी जो भागीदार हैं इसमें।

—और आँखों वाले अंधे इन्हें ही तो कहते हैं ? धीरे-धीरे जालसाज़ी का यह विशाल ऑक्टोपस, अपनी लालसाओं की लम्बी चिपचिपाती भुजाओं की गिरफ्त लिये इन्हें—खून चूस रहा है। कितने बड़े-बड़े कहे जाने वाले ये अफसर लोग, इसी ऑक्टोपस की शक्तिशाली भुजाओं की भाँति, इस देश के कोने-कोने मे फैल चुके हैं।—और मिश्रा ! हैरतअंगेज़ बात तो यह है कि यह सब 'न्याय' और 'व्यवस्था' के नाम पर ही किया जा रहा है।

······खैर, आओ जी, बैठें अंदर—और खुद ही ने फिर स्टीयरिंग सम्हाल लिया, जीप स्टार्ट होते ही चली।

मिश्रा का स्कूटर भी तेजी से उसका पीछा करने लगा।

दस मिनिट उपरान्त उन सभी ने डी.आई.जी. के ऑफ़िस में प्रवेश किया। चैम्बर में कुर्सियों पर बैठते ही पहला प्रश्न हुआ—'हाँ, मिश्रा, तो यह बताओ कि क्या प्रगति है, अब ?'—सहज होते उस चेहरे पर मुस्कराहट फिर लौट आयी।

'प्रगति ?'—हो रही है, हालांकि गति धीमी ही है।

'हूँ, बिल दे सरवावद ?—अच्छे तो हो जायेंगे न' उस टोहती दृष्टि ने फिर पूछा।

'निश्चय ही स्वास्थ्य फिर लौट आयेगा, यकीन रखें। उस लम्बे उत्पीड़न की गहरी छाया अब भी उनके तन और मन दोनों पर ही है। जेलों में जो

होता है, आप से छिपा हुआ तो नहीं है न ? तीसरे दर्जे के तरीके जो इस्तेमाल होते हैं, अब भी।'

सुनते ही वह वक्ष एक गहरी निश्वास से भर गया। 'ठीक है, तब'—कहते हुए खाकी हैट सिर से उतारकर टेबुल के कोने पर रख दिया।

'मैं चाहता हूँ कि ये एक बार ठीक हो ही जायें। और कुछ नहीं, मुझे इसी से संतोष हो जायेगा, मित्रा ! तुम तो जानते ही हो, मेरी यह पुरानी कमजोरी रही है—ये सभी अपने जमाने के हैं, एक ही जगह शिक्षा पा रहे थे तो हमदर्दी हो जाना तो स्वाभाविक है ही। कुछ भी कहो तुम—कमजोरी तो है ही' · वह जैसे किसी गहरे सोच में डूब गया।

'—तुम्हारा वह अनुमान भी सही हो सकता है। ठीक हो गये तो फिर वही रफ्तार बढ़ेगी · पहले थी सो अब भी रहेगी न ? उस सान्याल से यह दत्ता कुछ कम है क्या ?—अच्छा है, उसी की तरह ये भी ·······'

'—भूमिगत हो काम करेंगे, तो ठीक, नही तो यह बदनसीबी फिर उन्हें कभी भी और कहीं भी दबोच सकती है। सत्ता, सत्ता है, चाहे वह देशी हो—चाहे विदेशी। उसकी मुखालफत लोहे के चने चबाना है। और फिर—आज की राजनीति के इस अंधे माहौल में कौन किसे पूछता है ? जहाँ बड़े से बड़ा नेता जब एक दूसरे का चरित्र-हनन बड़ा रस ले लेकर इस कदर कर रहा हो। पार्टी के अंदर पार्टी, गिरोह के अंदर गिरोह—आपस ही में कितना कीचड़ उछाल रहे है, आज। न कोई नीति, न कोई सिद्धान्त। सब जगह यही आपाधापी।

फिर, यह अंधा प्रशासन क्यों न अपनों को ही सुख-सुविधाएँ, पद, प्रभुत्व और पैसे की रेवड़ियाँ न बाँटे ?—राँडें तो रोती रहती है और पाहुन जीमते रहते हैं, और रहेंगे ही।'—सुनते ही धीमा ठहाका चैम्बर में गूँज उठा।

सहसा कॉल बैल झनझना उठी। सभी कान चौकन्ने हो गये। अर्दली अंदर आया, सैल्यूट करते ही बोला—'कोई साह मिलने आये है।' विजिटिंग कार्ड मित्रा ने ही उठा लिया, पढ़ा नीतूसिंह जन, महाधिवक्ता राज्य सरकार।'

'फाइन !'—आयंगर ने अपने डिप्टी सहयोगियों की ओर मुस्कराते हुए देखा। लो, ये तो खुद ही आ धमके। अब ?'

'और कोई साथ हैं या अकेले ?'

'एक महिला भी है।'

'अच्छा, दो मिनिट ठहर कर उन्हें यहीं भेज देना। किन्तु ठहरो, मैं ही उन्हें दो मिनिट में लेने आ जाऊँगा। सोफे पर बिठाओ न ?

'वहीं बैठे हैं सर !'

'ठीक है, तब जाओ तुम।'—सुनते ही अर्दली अदब से बाहर निकल आया।

'तो भाई मेरे, अब हमें इस महाधिवक्ता से उलझना है,—तपाक से वह खड़ा हो गया तो सभी खड़े हो गये।

'तो मैं चलूँ, फिर कभी मिल लूँगा।'—डॉ. मिश्रा ने मंदमंद मुस्कराहट के साथ देखा।

'नहीं—यदि कोई बात हो तो अभी हाल कह दो न ? यहाँ तो यह चरखा ऐसे ही चलता रहता है।'—कंधे पर थपकी लगाते हुए आयंगर भी मुस्करा उठा।

'तब ठीक, जल्दी ही मिलेंगे न ?' और वे स्वीकृति के पैर मौन भाव से चलकर बाहर आ गये। नीचे आ मिश्रा ने स्कूटर स्टार्ट किया और सोनियर्स हॉस्टल की ओर दौड़ पड़ा। मन फिर उन्हें अजीब और अजानी उलझनों की उन भुतिहा छायाओं से जूझ रहा है। कितने आतंक और भय का यह जहर चुपचाप पीती रही है यह चाँदनी अब तक ? स्कूटर की गररं-गररं से बेखबर चेतना का वह पाँखी कल्पना के आकाश का कोना-कोना छूने के लिए, गहन अतीत से वर्तमान की परिधि को लाँघता, सुदूर भविष्य ` क्षितिज को छूने के लिए लपक रहा है - लेकिन वह क्षितिज रेखा - दूर, ौर दूर होती जा रही है।

तभी अचानक एक बिन्दु-सा दीख पड़ा। ललकते मन की लालसा उसी ओर लपक पड़ी—देखा, कि वह बिन्दु किसी अस्पष्ट आकृति में बदल रहा है। देखते ही देखते वह आकृति स्पष्ट उभर कर उसके समूचे दृष्टिपथ पर छा गयी।

—कौन कौन—डेज़ी ?...... मेरी डेज़ी डीयर !—मन धीरे से चहक उठा। स्कूटर की गति स्वतः मंद पड़ गयी। स्तब्ध दृष्टि, एकटक

भाव से अपनी ही पलक छायी उस छायाकृति को कुछ पल निर्निमेष देखती रही। इरादा फिर बदल गया नहीं, नहीं मुझे इस वक्त इमर्जेंसी वार्ड के अपने चैम्बर में ही पहुँचना चाहिये। क्या पता, क्या कुछ हो?

लेकिन ठिठककर कुछ देर स्कूटर मार्ग के किनारे छोड़, सन्नाटे के सितार पर बजते चाँदनी के गीत की उस अन्तर्ध्वनि को चुपचाप सुनता रहा। पर चैन कहाँ? हठात् फिर मुड़ पड़ा, स्कूटर उठाया और चुपचाप अपनी सुपरिचित राह पर दौड़ पड़ा।

तेरह

कुछेक मिनिट ही बीत पाये कि स्कूटर की हैड लाइट का प्रकाश चिकित्सालय के गोलाकार विशाल आँगन के बीच में खड़े, संगमरमर के फवारे के सिर पर बैठे सफेद कबूतर पर आ गिरा। पर, कोई हचचल ही नहीं। दालान में खड़ी वृक्षराजि स्कूटर की घरघराहट को मौनभाव से सुन रही है। स्कूटर स्टैण्ड पर खड़ाकर, धीरे-धीरे सीटी बजाता वह स्वागतकर्ता कक्ष के सामने आ खड़ा हुआ।

– कोई नहीं है यहाँ तो। लगता है, सोने चले गये है सब। कदम फिर कहीं नहीं रुके। कम्पाउन्डरों के विश्राम कक्ष की ओर भी झाँक भर लिया और सधे कदमो से अपने चैम्बर की दहलीज़ पर आ पहुँचा। निश्शंक भाव से पर्दा हटाकर वह अंदर घुस आया—देखा, डेज़ी आराम कुर्सी की पीठ पर शरीर निढाल किये जैसे ऊँघ रही है। सीलिंग फैन उसी तरह अब भी घूम रहा है।

उसने बुश-शर्ट उतार, स्टैन्ड पर टँका अपना सफेद एप्रिन पहन लिया। आकर अपनी रिवॉल्विंग चैयर पर धम से पसर गया। टेबुल के काँच के नीचे रक्खे कुछ कागजों ने एक बार उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, पर वह टाल ही गया। उसकी निगाह फिर सामने उठी, देखा—अनिन्द्य वह डेज़ी निर्विकार भाव से, बेखबर अब भी उसी तरह ऊंघ रही है। क्षण भर वह निगाह उसे टुकुर-टुकुर ताकती ही रही। एक सर्द गहरी साँस मुँह से निकल गयी।

'— इतने प्रगाढ़ आस्थामय और अडिग प्रेम को यह अस्वीकार भी कर पायेगा ?' — सोचते ही एक कँपकँपी रग रग में दौड़ गयी। कैसे होगा यह सब ! डेज़ी, डेज़ी डीयर' मन ही मन दोलायमान हो उठा वह। ललाट पर चंद बूंदें—पसीने की घिर आई। हाथ टेबुल पर रखे कांच के पेपरवेट को छू गया तो मन हुआ कि उठाकर अपनी ही कनपटी पर दे मारें। सारा तमाशा खत्म हो जाय। उन आँखों के आगे फिर अंधेरी यवनिका गिर गयी तो पलकें अपने आप बंद हो गयी। मन अन्दर ही अन्दर गहरे डूबता चला गया।

—यह है अपना वह विकट वर्तमान, कहाँ तक बचोगे इससे, बच्चू ! खोलो न आँखें ? देखो, डरावना तो है यह, पर है तुम्हारा ही यह वर्तमान। तुम्हीं हो न इसके जनक ?—फिर, डरते हो क्यों ?—जिसे इस तरह जन्म दिया है तुमने तो स्वीकार भी करो उसे— स्वीकार ! और वे पलकें इसी सोच के साथ हठात् खुल पड़ी। खुलते ही निगाह सामने ही दीवार पर टँकी राष्ट्रपिता गांधी की तस्वीर पर जा टिकी—अनंत सखा और अमर बलिदान की वह जीवन-ज्योति वह बापू की तस्वीर मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम का कितना पवित्र सदेश है। वह हृदय फिर पल भर के लिए भावाकुल हो उठा।

और तब निगाह तुरंत ही वहाँ से हटाकर उस निंदियाती डेज़ी पर आ टिकी। तपाक से उठ खड़ा हुआ वह। साहस का सहारा जो मिल गया था। धीमे कदमों से चलता उसी आराम कुर्सी के समीप आ पहुँचा तो फिर क्षण भर ठिठक कर खड़ा हो गया।

'छू भी लें या कि नहीं'—दाहिने हाथ की वह तर्जनी शंका की तरह स्वयं के होठों को छू गयी। न न छूओ मत, निंदियाता है यह प्रेम—इसे तो निरखो भर !— और, बच्चू ! जिसे अब तुम अपनी जिन्दगी से ही इस तरह विदा दे रहे हो, उसे छूने का अधिकार ही कहाँ रहा है ?'—और वैचारिक झटका, तेज चाकू की धार की तरह, उसके अन्तर को चीरता हुआ अन्दर गहरे उतर गया तो वह सहसा तड़प उठा। दृष्टि आँसुओं में डूब गयी। विस्मयविमूढ सी वह भीगी दृष्टि अपने उस सूनेपन को देखती रही—कितनी कितनी भयावह रिक्तता है, यह डेज़ी माइनस लाइफ इज इक्वेलेन्ट टू जीरो —है न, सच ?—एक बार वह अभीभूत मन फिर दोहरा उठा। गर्दन निराशा से हिलकर कुछ कधे पर झुक आई। पेंट की जेब से रूमाल निकाल

परेशानी के पसीने से भीगी उस पेशानी को पौंछ लिया। तभी-टन-एक टकोरा बजाकर, दीवार घड़ी फिर अपनी टिकटिक में व्यस्त हो गयीं। निंदियाती उन आंखों ने भी उसी क्षण जमुहाई ली। पलकें उघड़ी—तो देखा कि मित्रा उसी के समीप खड़े, रूमाल से अपनी पेशानी पौछ रहे है। वह तुरन्त खड़ी हो गयी, मुस्कराती दृष्टि प्रश्नाकुल हो उठी तो जैसे उसके मर्म को छू गयी—अस्पष्ट सी ध्वनि निकली—डेज़ी, माइ लव।

और डेज़ी की मृणाल बाहों ने तत्क्षण लपक कर उसकी देह को अपने मे भर लिया। मित्रा का भीतर ही भीतर रिसता मन असहाय-सा आँसू की बूंदे टपटपाता रहा। कुछ क्षण ऐसी ही तन्मयता की अवस्था में बीत गये। तभी बोल धीमे से फूटे—'आओ, उस सोफे पर ही बैठें हम।'

और वे दीवार से सटे केन के सोफे पर आ बैठे। लेकिन मित्रा अब भी चुप है। डेज़ी ने बैठे ही बैठे फिर उसे अपनी उत्फुल्ल बाहो में भरते हुए धीरे से पूछा—'आज ऐसी क्या परेशानी है, डीयर!'—और वह स्निग्ध दृष्टि उसके समूचे व्यक्तित्व को गहरे दुलार से चूम उठी। मित्रा के असमजस की वह दोलायमान धरती अब कुछ स्थिर हो चली थी। उसकी महकती स्नेहिल दृष्टि ने सहसा ही उसकी ओर देखा, बोला—डेज़ी, माइ डेज़ी,—माइ लव!—असहाय-सी ठंडी-ठंडी वह निश्वास उसके वक्ष को झकझोरती बाहर निकल गयी। कमरे का वातावरण जैसे आर्द्र हो गया। क्षण भर का मौन दोनों के बीच तैरता रहा।

'—डेज़ी डीयर! अब हम दोनो ही एक क्रॉसरोड पर खड़े है—क्या नही जानती हो तुम यह?'- और वह निगाह अपने पैरो तले झुक आई।

'सच?'

'सच, सचमुच सच है यह, मेरी डीयर डेज़ी!—और इतना ही नहीं, अब तो तुम्हें छूने तक में मुझे हिचक होती है, कैसी विवशता है, यह?—जो अंगुलियां अपने तेज नश्तरों से दर्द से रिसते घावो को काट-कूटकर; बड़ी ही सफाई से उन्हें रसायनों से साफ करती रही है, आज तक—वे ही आज इस तरह तुम्हे छूने तक में हिचकिचा रही है।

'और मैं अपने ही इन रिसते घावो का ऑपरेशन करने में खुद इतना असमर्थ हूं।

तुम तो ओ. टी. में सदैव मेरे साथ रही हो न, डेज़ी ! क्या कभी तुमने भी इन्हें काँपते हुए देखा है ? ...... लेकिन आज किसी अजानी झिझक से ये इतनी आक्रान्त है कि मेरी यह वाणी कुछ भी कहने में असमर्थ है' - और उस आहत दृष्टि ने डेज़ी के प्रफुल्लित चेहरे को फिर भी चूम लिया। डेज़ी की उस आत्मविभोर दृष्टि ने उन आँखों की गहराई में झाँककर जैसे सब कुछ देख ही लिया। उस भयावह विवशता की भनक तो पहले ही से, नागदंश की तरह उसके दिल को डस चुकी थी। लेकिन, उस सारे ज़हर को अपने प्यार की प्रगाढ़ता के अमृत से धीरे-धीरे पचाती रही थी।

—और अब तो वह इतनी आश्वस्त थी कि उसके मित्रा को उससे कोई छीन ही नहीं सकता है। विवाह की इतनी लम्बी अवधि की प्रतीक्षा के उन रॉकेटों के न जाने कितने आघात अब तक सहे हैं। इसीलिए इस ओर से यह मन अनासक्त-सा हो गया है। उसने तुरन्त ही बैठे-बैठे बाँहों में कसते हुए कहा—'माई डीयर !'

—और वह दृष्टि दृष्टि से मिलकर एकाकार हो गयी —'तुम मुझ से अलग हो रहे हो न, भई हो लो, बेझिझक हो लो —लेकिन मैं खुद यह अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरा मित्रा डीयर तो सदैव मुझ ही में निवास करता है, और करता रहेगा। मैंने तो वह मन ही जीता है तन न सही न सही। देखो, इधर देखो—मेरा यह मित्रा तो खुद मैं ही हूँ, और मुझसे ही मुझी को कौन छीन सकता है, अब ?

'—जानती हूँ—सुनती रहती हूँ, लोग कहते हैं कि अंधी हूँ मैं। हाँ, सचमुच ही अंधी हूँ, मित्रा — उस सूरदास की तरह ही, जिसने कभी कहा था कि हिरदय ते जब जाउगे, मरद बदौंगो तोहि। क्या भूल गये तुम वह फिल्म —साथ ही साथ तो देखी थी न।

— यही अंधापन मेरे इस अंतरतम का प्रकाश है, मित्रा डीयर ! लेकिन, याद रखना मैं किसी परम प्रभु की भक्त नहीं हूँ—महज एक प्रेमिका हूँ। ज्योति मेरे अन्दर की है, जिसे बाहर के ये दुनियावी तूफान और अधड़ अब नहीं बुझा सकते है— कदापि नहीं। और इसीलिए बड़े ही प्यार से मैं आज तुम्हें विदा दे रही हूँ, और तहे दिल से चाहती हूँ कि अपने कर्तव्य में पूरी लगन और निष्ठा से जुट जाओ। मेरा यह प्यार तुम्हारे लिए बंधन नहीं, बंधन से मुक्ति है, डीयर !—वह तुम्हारे इस कर्तव्य पथ का कभी भी रोड़ा

बन ही नहीं सकता । मेरे लिए तो इतना ही काफी है, डीयर ! कि तुम्हें अपने कर्तव्य पालन में मुस्तैद देख सकूँ । एक भाई का अपनी बहिनों के प्रति —एक बेटे का अपने माँ-बाप के प्रति जो परम कर्तव्य है, —मेरा प्यार कभी उसमें बाधा डाल ही नहीं सकता, डीयर ।

'—माँ-बाप से वंचिता इस आत्मा का है यह प्यार, जो उस अपूरित अभाव को आज तक सहती आयी है -मेरे मित्रा डीयर—सर्वस्व — मेरे प्राण !'

- और वह भावाकुला तुरंत उठ खड़ी हो गयी । अपनी कोमल हथेलियों की अंजली में मित्रा का मुखमंडल भर कर एक बार चूम चूम लिया । फिर बड़े ही प्यार से वे कपोल थपथपाते हुए मीठी मनुहार भरे शब्दों में कहा - 'मित्रा डीयर ! उठो न भई ! यह देह बीमार नहीं, बिल्कुल स्वस्थ है—जिसकी कुण्डली ही में बसी है वह कस्तूरी, जिसे इस मन के मृग को अन्यत्र खोजने की अब जरूरत ही नहीं रही ।

प्यार भरी ऐसी सुखद थपकियों से सजग हो, मित्रा की समूची देह, भावावेश से थरथरा उठी । वह उन्मत्त सा हठात् खड़ा हो गया, और डेज़ी को कसकर अपने वक्ष से लगा लिया तो उसके होठ उन होठों पर स्वतः झुक आये । भावाकुल पलकें पलकों पर झुकी साँसों के सितार की वह रसवती सरगम न जाने कितने समय तक बजती रही – बजती ही रही, और लगा कि समय की वे सुइयाँ भी जैसे ठिठक गयी हों ।

चौदह

'तो यूँ कहो न, यह आपकी इज्जत का सवाल है, जैन साहब ?'— सचमुच वे आँखें चमक उठीं ।

'नहीं, फिर भी दिलचस्पी है इनमें, नहीं तो आपको इस वक्त कष्ट ही न देता ।'—अपनी बड़ी-बड़ी पुतलियों में बनावटी विवशता का रंग भरते हुए उसने कहा । लेकिन आयंगर की चकोर दृष्टि ने उनमें गहरे उतरकर उन्हें थाह ही लिया । तुरन्त बोला—जैन साहब, आपके पद और प्रतिष्ठा के

अनुरूप तो यह बात है नहीं। न जाने ऐसी औरतों में आप जैसे लोग भी क्यों इतनी दिलचस्पी लेते है। इसमें अवश्य ही कुछ गहरा राज़ है।'

—अपने कंधों को हल्का-सा उचकाते हुए वह मुस्करा उठा।

'कोई और भी इन्टरेस्टेड है, क्या?'—विस्मय भरी दृष्टि चिहुंक उठी।

'क्यों नही' क्यों नही'—आप जैसी परिष्कृत अभिरुचियों का अभाव तो दुनिया में रहा ही कब? कला, साहित्य और संस्कृति के पुरोधाओं ने ही इनका कोई ठेका थोड़े ही ले रखा है।' और जब आप जैसे कानूनविद् इस तथाकथित अभिजात समाज के इतने कायल हैं, तो और सरकारी अधिकारी भी हो ही सकते है न। पर, जैन साहब! यह हमें नही भूल जाना चाहिये कि यह सब समाज और सरकार की घोषित नीतियों के खिलाफ है। नहीं है यह सब?'

—उस तेज दृष्टि की तीखी चुभन से अकुलाकर जैन की पलकें नीचे झुक आई। वह क्षण भर का मौन भी उसे अन्दर ही अन्दर कचोट उठा। साहस बटोरते हुए धीरे-से आयंगर का हाथ दबाते हुए बोला—'यार यह वक्त ऐसी बातो का नही है। इन परिधानों के नीचे तो सभी नंगे ही हैं न? फिर मैं ही तो नही अकेला। और यह नंगापन इतने वीभत्स रूप मे तो खुलकर नही आया है कि लोग मुझ से ही घृणा करने लगें। आज को इस सत्ता के इन सर्वोच्च शिखरों पर विराजमान ये लोग, जब उस इतिहास की कब्रगाह में दफन हो जायेंगे तो इन्ही कब्रों से बू ही बू इस धरती पर फैलती रहेगी। चाहे फिर उन्हें संगमरमर के कलात्मक पत्थरों से कितना ही मढ़ते रहो, मुगलिया गुलाबो के इत्र से बार-बार उन्हे धोते रहो, पर प्यारे, कब्र तो कब्र ही रहेगी, जिसमें कुलबुलाते कीड़ो और सड़-सड़कर मिट्टी बनते हाड़-माँस की उन अपनी करतूतों की बदबू के सिवाय और क्या रहेगा? बोलो न?'—वह फलसफाई नज़र फिर गर्वोन्नत हो उठी।

आयंगर ने सुना तो दंग रह गया। कितना मक्कार बन गया है यह मनुष्य कि अपनी ही इन घिनौनी हरकतों को इस तरह फिलासफी का जामा पहनाता रहता है। और इस नीतूसिंह जैन का समूचा वह अतीत चलचित्र की तरह, उसकी दृष्टि मे उभर आया। खादी का सफेद बुर्राक चोला इसकी ऊपरी सतह को कैसा आभामण्डित कर रहा है: आँखों की बरौनियों तक

खिची विलास की वह कजरारी रेख, इसकी कृत्रिम हँसी के साथ, कैसी भय-मिश्रित मिठास पैदा करती है कि सामने वाला कीलित हो हो जाये। जबान से शरबती शब्दो की लार-सी टपकती रहती है।

लेकिन, जैन साहब— यहाँ तो आयंगर है। मन ही मन सजग होते हुए वह बोला—'जैन साहब! वाकई आप महाधिवक्ता है, लेकिन मैं किसी हाई कोर्ट का जज नही हूँ। एक अदद डी. आइ. जी. हूँ—वह भी सी. बी. आई. का ही। फिर आपकी पहुच कितनी सशक्त है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। जो भी तथ्य हैं, वे सब साफ़-साफ है ही। हकीकत को झुठलाया तो नही जा सकता, इस तरह। मैंने तो अपनी बात कह भर दी है, क्योंकि—' और उसकी दृष्टि टेबुल के काँच के नीचे बिछे छाया चित्रों पर जा अटकी।

'क्योंकि क्या मिस्टर आयगर?'

'यही कि साहब के कुछ अहसान मुझ पर भी है। इसीलिए कोठी के 'राउण्ड-अप' को अब तक टालता रहा हूँ। अच्छा ही हुआ कि आप स्वय बत्राजी के लिए पधार गये तो अपनी स्थिति साफ हो गयी। हमारी गिरफ्त कितनी ही मजबूत क्यो न हो, आप जैसे लोगो के लिए यह कुछ भी नही है। केन्द्र तक मे जड़ें फैला रखी है न। इसलिए निवेदन यही है कि इस शह से बच ही निकलियेगा—और वह आप के लिए आसान है ही।'—मद-मंद मुस्कराहट उन अधरो पर फिर फैल गयी। नीतूसिंह की उन चालाक कनखियो ने यह सब भाँप लिया। सोचा—चलो यह कुछ तो अहसान मानता ही है। इसकी पदोन्नति के वक्त डी. पी. सी. का चैयरमैन मैं ही तो था—आज वह प्रभाव काम ही आया। बोला 'प्रिय आयंगर, एक मदद तो हमारी कर ही सकते हो?'

'वह क्या, सर?'

'कि तुम्हारी फाइण्डिग्ज् की वे फाइले चद लम्हों के लिए देखने को हमें भी मिल जायें।'

'ओह सर!— नाऊ, इट इज् टू लेट—वे सब तो आई. जी. साहब के चेम्बर में सुरक्षित है। आप दो ही दिन पहले पधारते तो कुछ सेवा हो सकती थी। इतनी गफलत कैसे हो गयी?

'भई, ये चिड़ियाएँ कमबख्त आज ही इस आशियाने में आई है। क्या करें, सम्बन्ध हैं तो निभाने पड़ते हैं। न कुछ करें तो अपनी मनुष्यता से

ही न गिर जायें ? फिर यह सब लोगों को कितना ही घिनौना लगे तो लगे ? बोलो, है न यही बात। उस रोज़ तुम्हारे ही 'केस' पर कितनी अजीबोगरीब बहस छिड़ गयी थी ? पर, जिसे सपोर्ट करना चाहिए, उसे लोगों ने हर हालत में 'सपोर्ट' किया ही।' - और वह गर्वोन्नत दृष्टि आयंगर को ऊपर से नीचे तक घूर गयी।

'उपकृत हूँ, जैन साहब !—मंद मुस्कराहट होठों पर खिल आई। क्षण भर फिर मौन। बोला 'क्या आज्ञा है, अब ?'

'यही कि जहाँ तक आपसे बन पड़े—इस केस को 'मोल्ड' करके 'माइल्ड' बनाने का प्रयत्न कीजिये। जेल सर्विसेज में आज जो कुछ हो रहा है, आप लोगों में छिपा तो है नहीं। पर आयंगर—एक बात पूछूँ ?—वह वाणी कहते हुए सहम गयी।

'बाई ऑल मीन्स, सर !'—उकसाती आवाज़ गूँज उठी।

'इस केस में और कौन-कौन इण्टरेस्टेड है ?' उस घूरती दृष्टि ने उसके चेहरे में टटोलते हुए पूछ ही लिया।

'जानकर क्या कीजियेगा, सर ?'

'फिर भी तो ...... ?'

'वही—जेल विभाग के आई. जी.—मल्होत्रा साहब ! शायद बवाजी उभयस्पर्शी रेखा हैं, है न ?' व्यंग्य भरी मुस्कराहट से जैन जैसे कुछ तिलमिला गया। तत्काल बोल पड़ा—उभयस्पर्शी नहीं, बहुस्पर्शी कहियेगा, आयंगर ! भाग्यवान हो कि इस रेखा की गिरफ्त से अब तक बचे रहे हो। ये तो हमी हैं वे ओफ्यूमो जो अब भी उसे भुगत रहे हैं। यह भुगतना जैसे हमारी नियति ही बन चुका है अब—सो भुगतेंगे ही। छुटकारा मिले भी तो कैसे ? यह कमबख्त उस पटनिया श्वेत निशा त्रिवेदी का वह मुक्ति मार्ग भी तो नहीं अपनाती है। क्या कहें, आयंगर ! पूरा तंतुजाल जो फैला रखा है इसने !' और वह राज-भरी निगाह आयंगर के दिल की फिर टोह लेने के लिए मौन देखने लगी।

'—फाइलें तो अब तक न जाने कितनी खुल चुकी हैं इसकी—हत्या व्यवसायी जो रही है। जिसने अपने खास खसम तक को नहीं बख्शा, वो किसे बख्श सकती है, आयंगर !' यह हम भी अच्छी तरह जानते हैं।—वे

सभी फाइलें, समय के इस गर्म तवे पर रिसती पानी की बूँदों की तरह सब सूख गयी हैं—और, तुम भी इस फाइल को भी सूखते हुए देख ही लोगे'—वह वाणी कुछ तैश खा गयी तो उस खद्दर के महीन कुर्ते के नीचे वक्ष में साँस फूल उठी।

'क्यों नहीं, क्यों नहीं, जैन साहब!'—वह अपनी कुर्सी ही में उचक पड़ा। 'आप जैसी विभूतियाँ जिनकी पीठ पर हों, आज का यह आस्थाहीन समय किसका क्या बिगाड़ लेगा?

मेरे मज़हब की बात क्या पूछती हो मुन्नी,
शिया के साथ शिया, सुन्नी के साथ सुन्नी!'

—और होंठों का वह ठहाका खिलखिला पड़ा तो जैन भी खिसियाते हुए मुस्करा दिया।

'लगता है, उर्दू ज़बान पर भी दखल है, तुम्हारा।'

'थोड़ा बहुत ही, जैन साहब। यह सब लखनऊ विश्वविद्यालय की उन अंजुमनों का ही असर है, सर!

तभी दीवार घड़ी ने दो के टकोरे ध्वनि में मिठास-सी घोलते बजाये। दोनों की दृष्टि अपनी कलाइयों में बँधी घड़ियों पर आ टिकी। जैन को तभी अहसास हुआ कि वह निदियाती नारी प्रतीक्षा-कक्ष में बैठी, अब भी उसकी प्रतीक्षा कर रही है।

वह तुरंत उठ खड़ा हो गया। बोला—'तो अब 'राउण्ड अप' का तो कोई इरादा नहीं है न?' 'उस ओर से आप निश्चित रहें, सर। मैं भी अहसानफ़रामोश तो नहीं हूँ, हालांकि'—ज़बान अपने आप चुप हो गई।

'हालांकि, क्या?'—वह चौकस दृष्टि तपाक से उसके चेहरे पर चिपक सी गयी।

'यही कि ये हाथ कई मासूम और बेगुनाहों के खून से रंगे हुए जो हैं, सर! उस सुचित्रा के बाद तीन निरीह प्राणों को ये ही क्रूर पंजे अपने शिकजे में कसने ही वाले थे, लेकिन कुछ लोगों की भाग दौड़ आखिरकार रंग लाई, और वे अधमरी अवस्था में इस तरह बाहर फेंक दिये गये कि न जीने में, न मरने में ही।'

'अच्छा, तो इतना दर्द है इस डी. आई. जी के वक्ष में भी—यह आज ही मालूम हुआ। आयंगर ! बच्चू ! हर जवानी रंगीन और कुछ न कुछ रहम दिल तो होती ही है, फिर तुम तो अभी तक ऐसे मदमस्त बछड़े हो, जिनके कंधों को रहस्यों का जूआ छू तक नहीं गया है। लेकिन हकीकत भरी इस दुनिया की कसौटी पर कहाँ तक खरे उतरोगे ? यह तो आने वाला कल ही बतलायेगा।'

—और उसने आयंगर के कंधों पर लगे वे चमकीले स्टार्स हौले से छू लिये। जबान में मिठास घोलते हुए फिर बोला—'यहाँ तो सभी एक दूसरे के सहारे की तमन्ना रखते हैं। जब अपने ही अपनों की मदद करना छोड़ देंगे तो यह जीवन चक्र चलेगा कैसे ? सोचो तो, अब कहीं दीखते हैं तुम्हें वे हरीश्चन्द्र, जो अपने ही स्वप्निल मायाजाल को भी इस कदर सच मान लें कि सारा राज्य ही दान दे डालें। और कि अपने ही सत्ते जिगर की उस लाश तक को जलाने देने के लिए, अपनी ही बीवी तक को साफ इन्कार कर दे।—' और वे बड़ी-बड़ी बरौनियाँ भी चहकते अंदाज में चमक उठीं।

'—और सुनो, आज तो हमारे इस देश में हजारों रामचन्द्र मौजूद हैं, सौताएँ भी हैं, पर कौन मुआ अपनी विमाता का हुक्म होते ही, अपनी भरी जवानी के वे चौदह अलमस्त वर्ष, जंगलों के दारुण दुःखों की बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए तुरंत चल देता है—इसीलिए कहता हूँ कि इन ख्याली आदर्शों के ख्वाब देखना छोड़ दो। एक सरकारी अधिकारी के लिए तो सरकारी अधिकारी ही दुर्दिनों में आड़े आता है।

'अभी बत्राजी ऐसी ही संकटापन्न स्थिति में उलझी हुई हैं, कुछ सहारा दोगे तो यह दु:खी जिन्दगी तुम्हें आगे तक याद रक्खेगी हो।"—और फिर शहद-सी मीठी चितवन से देखते हुए धीमे से शब्द निकल उठे, हाथ स्वतः कंधे पर चला गया—'यार, ये दिन तो यौवन के हैं न, फिर नहीं लौटेंगे यौवन के ये होठ तो सुनहरे सौन्दर्य की बाँसुरी बजाते हुए ही मुस्कराते हैं, तभी उल्लसित जीवन की सुनहरी टेर भी निकलती है। बच्चू ! ... यदि हमारी मदद की भी आवश्यकता हो कुछ, तो फिर आज्ञा करने में ऐसी देर क्यों ?'—संकेत भरी दृष्टि फिर मुस्कायी।

राजन आयंगर यह सुनते ही स्तब्ध रह गया। आँखें नीचे झुक गयीं, पर कुछ सहमते हुए बोल पड़ा—'इसके लिए धन्यवाद, सर ! वैसे भी आपका

यह अहसान भी मुझ पर कोई कम नही कि इस रात आप यहाँ तक पधारे। मुझे किसी दिन बत्राजी ने भी यही बात कही थी, हालांकि वह प्रसग और स्थिति कुछ दूसरी ही थी। आज फिर उन्ही के संदर्भ में यह बात आपके लबों पर कैसे आई, इसकी तह में जाने की मुझे कोई इच्छा नही है।

'लेकिन, मुझे आपकी मदद करने मे खुशी ही होगी। इत्मीनान रखें।'

'थैंक यू, फ्रेण्ड!'—सस्मित भाव से वे विदाई मांगते स्वर गूंज उठे। जैन तुरत मुड़कर बाहर निकल आया। विश्राम कक्ष की दूधिया रोशनी में निंदियाली वे पलकें उन भारी पदचापों की आहट से उचक पड़ी।

'चलें?'—वह उदास दृष्टि भी मुस्करा उठी।

'येस, वी हैव डन वैल'—और दोनों ही जैसे एक दूसरे को सहारा देते नीचे सीढ़ियाँ उतर गये। बरामदे मे खड़े आयंगर ने देखा—एक दूसरे की कमर मे हाथ डाले हुए वे परछाइयाँ धीरे-धीरे कार की ओर चली जा रही हैं।

वह तुरन्त लौटकर अपने चैम्बर में आ बैठा।

'गये वे!'—वे अस्फुट अधर हिल पडे। अहसानों का बोझ मुझ पर ही लादने आये थे, जैसे मुझे कुछ मालूम ही न हुआ हो, अब तक। इसी चुड़ैल की शह पर डी. पी. सी. की उस बैठक में इसी शख्स ने मेरी पुरजोर मुखालफत की थी। संयोग ही था कि गृह आयुक्त चतुर्वेदी वहीं मौजूद थे, जिन्होने मेरी सेवाओं की सार्थकता प्रभावशाली ढंग से पेश की थी—अन्यथा मुँह पर मीठे मल्होत्रा साहब इस जैन की 'हाँ' मे 'हाँ' मिला रहे थे। वे भी क्या करते, बत्रा के उस मीठे जहर ने उन्हें कील जो रखा था?

—फिर यह नौकरशाही किस दम पर उन राजनेताओं पर ही यह इल्जाम लगाया करती है कि वे पार्टी स्वार्थो से अंधे लोग, अपने ही लोगों को इस तरह रेवड़ियाँ बांट रहे है?'—और वह अपनी कुर्सी छोड़ उठ खड़ा हुआ। धीमे कदमों से चलकर, दीवार से सटे सोफे पर आराम से पसर गया। लेकिन मन अब भी बेचैन है। उद्विग्न-सी दृष्टि ने फिर चारों ओर देख लिया स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति— की उस अंतरंग गूंज से होठ थरथरा गये।

सोचने लगा—सुर, नर, मुनिगण—इन सभी की यही रीति रही है न, तो फिर ये बेचारे मल्होत्रा और बत्रा ही क्या करें ?

थोड़ी देर तक किंकर्त्तव्यविमूढ़ सी वह दृष्टि गांधीजी के उसी तैलचित्र को परखती रही, फिर लौटकर अपने ही अंदर डूब गयी। वह तुरत खड़ा हो गया, आॅफिस से निकलकर विश्राम कक्ष में आ गया। वर्दी उतार दी, कुर्ता-पाजामा पहनकर आदमकद शीशे के सामने आ खड़ा हुआ। देखा—एक चित्ताकर्षक व्यक्तित्व सामने ही खड़ा हुआ है। अपनी ही छवि पर मंत्र-मुग्ध वह मन क्षणभर झूमता रहा, फिर उल्लास भरा अपने विस्तर पर आ लेटा।

लेटा ही था कि निगोड़ी नींद ने आ दबोच लिया। कुछ ही क्षणों के उपरान्त वह किसी अजाने से लोक में पहुँच चुका था, जहाँ यातनाओं से भरी-भरी ऐसी जिन्दगी से जैसे मुक्त हो गया।

पन्द्रह

मंगल के सवेरे की धूप, धुनी हुई रूई-से शरद के बादलों की ओट में लुकछिपकर आँखमिचौनी खेल रही है। पर, हॉकर उन अखबारों की सनसनीखेज सुर्खियों को लादे, अपनी अपनी साइकिलों पर दौड़ते हुए चिल्ला रहे हैं। हॉटकेक की तरह आज का छापा हाथों हाथ बिक रहा है। जेल की प्रधान अधीक्षक गिरफ्तार होकर हजारों की जमानत पर छूट जो गयी है। 'राउण्ड अप' की कहानी, अफसरशाही की रंगरेलियाँ और गवर्नमेंट गेस्ट हाउस का वह चैम्बर—लोगों का रंगे हाथों पकड़े जाना और लाखों के वारे न्यारे होने की घटनाओं ने किसी अत्यंत रोचक नवलकथा की तरह, आम आदमी तक को गुदगुदाकर रख दिया। विस्मय और रोमांस के साथ ही साथ हल्के आक्रोश से भरे-भरे लोग, यहाँ-वहाँ जहाँ-तहाँ इसी की चर्चा करते रहे। कल्पना के कुलावे मिलाते रहे। जो कुछ भी छपा था, उससे किसी को भी जैसे संतोष नहीं है—'यह सब हुआ कैसे, क्यों हुआ, इस सारे काण्ड का बैकग्राउण्ड क्या है—इन महिलाओं के चित्र ही क्यों छपे हैं, उन

अधिकारियों के क्यों नहीं—क्या कुल ग्यारह जने ही थे, अधिक नहीं- और तो और इन महिलाओं का ऐसा चैलेंज उनको बापरे ! ये नारियां हैं, या कि कोई मायाविनी शूर्पनखाएँ ?

इस महानगर के चौराहे और गलियारे, पार्क और क्लब, सभी जैसे खड़े-खड़े आज तो यही बतिया रहे है—साले डॉक्टर और इजीनियर है ऐसे लोग—पर, इनके काम इतने ऊँचे दर्जे के होगे यह तो आज ही पता चला है। यार ! और तो और—वे लोग जो हर पाँचवे साल 'वोट' मांगने आते हैं, वे भी तो हमप्याला हमनिवाला है—इनके ! क्या कहने है जमाने तेरे ?—नूरजहाँ पान भण्डार के सामने लोग-बाग पान की गिलौरियाँ गालो में दबाये, बतियाते हुए मुस्करा रहे है—भई, क्यों न हो यह सब इतने बड़े मँहगाई भत्ते, इतनी सुख-सुविधाएँ—हम गरीबों को कहाँ आदमी बौरा नहीं जाये तो क्या करे ?

तभी पिच से पीक की पिचकारी उगलते हुए अधेड़ से एक सज्जन ने सव्यंग्य मुस्कराते हुए कह दिया—'हाय यार ! उस रात हम कहाँ थे ? निगोड़ी ऐसी रंगीन राते हमारे जीवन मे नसीब ही कहाँ है ?

'हाँ ऽ ऽ आँ अमाँ तुम होते तो बड़े मीर मार लेते न वहाँ ? देख लिया था न हमने भी उस रात वहाँ—उस चौरंगी की मरियम मंजिल मे ? हाथ-पैरों का लाइसेंस तो है नहीं, और शेखी बघार रहे हो इस तरह'—दूसरे साथी ने धप से उसके कंधे पर हाथ मारते हुए कहा।

'बड़ा दम खम चाहिये, प्यारे—इस सबके लिए। और जब इस तरह धर लिये जायें तो जमाने भर का जोर चाहिये न अपने पीछे ?'—आनंद मिश्रित आतंक से वे पुललियाँ जैसे नाच उठी।

'अमाँ ठीक ही कहते हो। साले ये हरामजादे—देख लेना—सभी बेदाग बच निकलेंगे, और मैं शर्त के साथ कहता हूँ, प्यारे—कि इनका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है'—गलमुच्छो में मुस्कराते वे होठ खिलखिला पड़े।

'साले भौंडी सी शक्ल वाला वह तेरा बॉस भी है इसमें- इसीलिए इतना इतरा रहा है ? लेकिन बेटा, तुझे तो अपनी जिन्दगी भर, बॉस के हर कॉल पर खडे-खड़े इसी तरह 'डिक्टेशन' लेते रहना पड़ेगा। और रक्खा भी क्या है, तेरे पास !'—सव्यंग्य उस दृष्टि ने उसकी ओर कनखियों से झाँका।

'नहीं यार, कुछ और मजे भी हैं, प्यारे वहाँ'—किंचित राज भरी मुस्कराहट छिपाये वे-होंठ भी मुस्करा पड़े।

'हाँ भई, क्यों न हो ...... चीफ एक्जीक्यूटिव इंजीनियर के पी. ए. जो हैं। जिसके घर की औरत ने एक अंडा तक नहीं दिया है अब तक, और बाहर ऐसी रंगरेलियाँ। हर ठेकेदार के चहेते रहे हो, तभी यह जिन्दगी इतनी गुलजार है, तुम्हारी। सरक्यूलर रोड वाले उस शानदार बंगले के मालिक हो न—' देखो, देखो—वे कौन लोग आ रहे हैं ?'—और सभी ने दूर के मोड़ पर से गुजरते हुए, छात्रों के उस बड़े हुजूम को उधर ही बढ़ते हुए देखा।

'अरे !'—कहते ही गलमुच्छों से आच्छादित वे होंठ जैसे सहसा कुछ उदास हो गये। वह तुरंत ही अपने स्कूटर की ओर बढ़ चला।

'अमाँ, कहाँ जा रहे हो ?'—एक पैनी आवाज़ भी उसके पीछे दौड़ पड़ी। पर स्कूटर स्टार्ट हो चुका था, और बढ़ते हुए उस छात्र-हुजूम की विपरीत दिशा में वह दौड़ पड़ा। तभी किसी तलाशती नज़र ने सामने देखते हुए कहा—'वह रहा बरखुर्दार !'

'कौन है ?'

'जानते नहीं ? पी. ए. साहब के सुपुत्र को—लीडराने छात्रसंघ हैं—वो चले आ रहे हैं, हुजूम के उस अंधड़ के साथ।'

'अच्छा, यह बात हुई। तभी बेटा वह पी. ए. स्कूटर पर बैठकर भाग निकला। बरखुर्दार कुछ शोहदा टाइप ही लगते हैं, दो बार कला संकाय के तृतीय वर्ष में फेल भी हो चुके हैं। लौंडियों को 'टीज़' करते रहे हैं तो जेल भी हो आये हैं। अब लीडर हैं—ऐसा पैसा कुछ तो गुल खिलायेगा ही न ?'

साली यह लछमी ही अंधी है—जिस किसी के घर जम गयी तो जैसे जम ही गयी। वह अब जो कुछ करे, कम ही है। लेकिन जब इन विश्वामित्रों के सिर ही फिर जायें, और सब ठौर मेनका ही मेनका दिखाई दें तो दोष उनका कहाँ है ?'—कटाक्ष करती वे बरौनियाँ किलक उठीं।

'मे न का—वाह प्यारेलाल ! बड़ी दूर की सूझ है तुम्हारी भी—यह तो इस राजधानी की बात है, पर उस दिल्ली की मेनकाएँ तो और भी कमाल

कमाल की है न ?'—और पिच से मुँह में दबी जाफरानी की खुशबूदार पीक थूक दी।

'अबे, जरा अपने जामे के अंदर ही रहाकर। सरकारी मुलाजिम हैं न हम। राज्य के चाकर हैं। दो वक्त की रोटियों से लगे रहें, यही बड़ी रहमत है उस परवरदिगार की। जरा देख के बोला कर, हाँ'—और वह चौकस निगाह चारो ओर घूम गयी।

तभी नेवी ब्ल्यू कलर का एक स्कूटर घर्रर करता पास ही आकर रुक गया। आधी बाहों के सफेद हाफ कट गाउन की निचली जेब में गले में झूलता वह स्टेथेस्कोप उतार कर रखते हुए, नूरजहाँ पान भण्डार के विशाल शीशे के सामने आ खड़ा हुआ।

'आइये डॉक्टर साहब !'—पनवाड़ी का अंग-प्रत्यंग जैसे मुस्करा उठा। लेकिन, तभी बतियाता वह बाबू लोगों का झुण्ड बिखर गया। डॉक्टर की प्रसन्न दृष्टि से दृष्टि मिलाते, पनवाड़ी के हाथ चूना लगाते पल भर रुक से गये—डॉक्टर' साब ! आप लोगों के तो आजकल बड़े मजे हैं न ?'

'कैसे भई ?'

'देखा नहीं छापा आज का ?'

'ओहो, तो यह बात है।'—धीमे से ठहाका लगाते होंठ फिर खुल पड़े—' यह कहानी तो उन ह्वेल मछलियों की है, भाई जान! जिनकी मुट्ठियों में मुझ जैसे हजारों डॉक्टरो के भाग्य दबे रहते हैं। न जाने कब और किस दूरदराज के देहात की हवा खानी पड़ जाये। और तुम तो जानते ही हो इन देहाती भाइयों को—झूठ-फरेब, कत्ल, बलात्कार, चोरी-डकैती और राहजनी—किस बात मे कम है यह प्रदेश ? आज तो सिरमौर बन गया है।

'ये बिहारी भी पीछे कहाँ हैं हमसे, डाक्टर साब !'—पान की गिलौरियाँ बनाते वह नजर चमक उठी। डॉक्टर ने गिलौरियाँ हाथ बढ़ाकर ले ली और मुँह में भर लिया। पर्स से दो का एक नोट निकाल कर पनवाड़ी के आगे बढा दिया। फिर पीछे मुड़कर पीक उगलते हुए बोला,—आज कौन ससुरा पीछे रहना चाहता है, भाई जान ! हमारे यहाँ एक एक ट्रांसफर पर हजारों से कम पर बात नहीं होती जितनी बड़ी जगह, उतनी ही ऊँची रकम।

'और ट्रान्सफर तो अब मिनिस्टर ही करता है।'— कहते हुए आवाज कुछ सहम गयी।

'जे तो हमहू जानत हैं'— कत्थे के दागों से भरे उस हाथ की अंगुलियाँ भरतनाट्यम् की मुद्रा में थिरक उठी।

'हूंऽऽऊँ !'—और डॉक्टर तत्काल टाटा की मुद्रा में हाथ उठाये, स्कूटर के समीप आ गया। स्टार्ट करते ही होस्टल की ओर चल पड़े। पंद्रह मिनिट ही बीते होंगे कि स्कूटर शेड में रखकर, अपने कमरे में आ पहुंचा। गाउन उतार, हैंगर पर लटका दिया कि उसकी दृष्टि कमरे की देहलीज पर पड़ी।—अरे! पत्र आया है ?—शायद पापा का है—जिज्ञासा और कुतूहल से हृदय उमग उठा। न जाने क्या लिखा है—कुछ दिनों पहले ही तो वह मिलकर आया था, उनसे। पत्र खोला तो तन्मय हो गया—पापा की वह करुण और कोमल तस्वीर उसके अक्षर-अक्षर से उभर रही है........रिश्ता फाइनली हो ही गया है—हूँ! ....चैत्र की पूर्णिमा के लग्न है !

लड़की........वही है न ?—बाप भी डॉक्टर है, भाई भी और खुद भी गायनी की एम. एस.। छोटी बहिन भी एम. बी. बी. एस. के फाइनल में है—घर का नरसिंग होम है, हजारों की आमद।

और, उसने लड़की के छायाचित्र को अपने सामने रख लिया, और इत्मीनान से केन चैयर पर बैठ गया। देर तक फोटो निरखता रहा, तभी जैसे अंदर से किसी ने पूछा—कैसी लगी लड़की—है न कुछ चीज ?........डॉक्टर और ऐसा सौन्दर्य मणि कांचन योग है न यही ?... ... सचमुच मणि कांचन है।

वह कुछ देर फिर उसी मीठे मौन की गहराई में उतरता चला गया—जहाँ अब अतल अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ है। अब आंधी की पिछवई से अंगुलियों में थमी वह तस्वीर न जाने कहाँ लुप्त हो गयी। न जाने कब वह चित्र उन अंगुलियों से खिसक कर पैरों पर आ गिरा, उसे इसकी सुध ही नहीं रही। और उस मौन के गहरे अंधेरे में तभी मन गुनगुना उठा—किसी अनजाने कोने से एक किरण रंग भरी तूलिका सी, मन की उस भित्ति पर कुछ उकेरने लगी। और मुहूर्त भर ही में—एक और प्रकाश चित्र उस दीवार पर दमक उठा। कौन?— कौन है, यह। वह अवाक् दृष्टि एकधार उसे निहारती रही। धीरे धीरे सजीव हो, मुस्कराता हुआ वह चेहरा

विस्तृताकार हो, उसके समूचे मन पर छा गया—सुखद, शीतल सावन की ठंडी-ठंडी फुहारों से प्रफुल्लित, नीड़ में बैठे उस पंछी की तरह वह मन आनंदित हो डोल उठा—ओह डैडी! यह तुम ? तुम्ही तो हो!—मोती सी स्वच्छ वे दो बूंद आँसुओं की, उन बड़ी-बड़ी पलको के नीचे से खिसक कर उसके कपोलो पर आकर रुक सी गयीं। कातर दृष्टि निरंतर कुछ देर देखती ही रही देखती ही रही ··· ···और धीरे धीरे मौन का एक श्यामल अंधेरा फिर उसके अंतर मे छा गया। उद्वेग से भरे भरे उस मन की आँखें आकुल व्याकुल हो, तत्काल खुल पड़ी। देखा, उसकी सुन्दर मगेतर का वह छायाचित्र तो उसके कदमों पर गिरा हुआ है। असहायसी आँसू भीगी वह दृष्टि तत्काल नीचे झुक आई, अपनी थरथराती अंगुलियों से वह चित्र फिर ऊपर उठा लिया।

पेंट की जेब से रुमाल निकालकर आँसू पोंछ लिये। 'अब?'—मन ही मन वह दोहरा उठा—अब? लेकिन, कही से कोई उत्तर ही नही, महज एक प्रतिध्वनि ही गूंजी—अब ?

उसने हाथ का चित्र टेबुल पर रख, फिर पापा का पत्र उठा लिया, सोच रहा है— सारी समस्याओ का हल यह मेरा विवाह है। लड़की के पिता ने लाख तो टीके ही मे स्वीकारा है। पापाको इससे बढकर और चाहिये ही क्या। एक बहिन के हाथ तो पीले हो ही जायेंगे।

रही दूसरी—सो छोटा भाई है ही। एम. ई. के फाइनल सैमेस्टर में है। इंजीनियर है तो लाख से कम क्या बिड होगी ? बहिन निकल जायेंगी तो समस्या का हल समझो मिश्रा !—और मन फिर सोच की गहराई में उतर गया यह सारा खेल—उन्ही की कृपा का परिणाम है, नहीं तो—मुझ जैसे व्यक्ति को, इस राजधानी के इतने बड़े सरकारी अस्पताल में अब तक कौन टिकने देता ?—कब के सेवानिवृत्त हो चुके हैं, वे। लेकिन लोगों के दिलों में आज भी कितनी श्रद्धा है उनके लिये—और इसलिए आज तक किसी तप्त लू सी चिन्ता हमे छू तक नही पाई। यह पत्र आज उन्हीं ने तो लिखा है - मिश्रा ! सोचो तो, यह पत्र नही, वे खुद तुम्हारे सामने हैं। और वह स्नेहमयी वृद्धा माँ हमारी—कोई फरमाइश तक नहीं की उन्होने। लिखा है न—इस रिश्ते से तुम्हारी माँ आनंदविभोर हो उठी है—वह क्या है, कचन की मूरत ही।

कंचन की मूरत है, बहू—माँ की ममता बोल रही है यह, मित्रा। आखिर उसे भी तो वहू चाहिये न। बोलो न भई, क्या करना है अब ?

और निश्चय का अंकूर हठात् ही अतीत की उस प्रेमिल भाव-भूमि को फोड़, ऊपर उग आया। वह तुरंत उठ खड़ा हुआ।

वायर देन—यस मस्ट वायर पापा !—स्वीकार! स्वीकार!—स्वीकार है मुझे।—यह पहली स्वीकृति आयंगर भैया को ही चलकर क्यों न दूं ?

दूसरों के भविष्य के लिये कितनी चिन्ता है तुम्हें, मेरे बंधु आयंगर। सचमुच मैंने तुम-सा नही देखा—यों तो हसने लाख हसी देखे है, आये दिन जो देखते आये हैं, पर आयंगर तो आयगर ही हैं—अतुलनीय—अकारण बन्धु !

भावावेग से वह सारी देह लहरा उठी, वुशशर्ट हैंगर से तत्काल उतार कर पहन लिया, कमरे के बाहर निकल आया और चल पड़ा—जीवन के एक नये मोड़ की ओर ?

सोलह

अमावस का अंधकार। एक बजा चाहता है. पर, दो काले-काले विकट दैत्याकार देहों से मल्ल अब भी भिड़ रहे हैं। हाथों के उन रामपुरी छुरों की लम्बी-लम्बी जबानों से खून लार की तरह टपक रहा है। चौराहे पर खड़ी ट्यूब लाइटें ही चुपचाप इस जीवन और मृत्यु के नाटक को निरीह दृष्टि से देख भर रही है। दोनों ही गुंथे हुए हैं अब बुरी तरह। नथुने साँसों से फूलते है तो झटके के साथ—कभी कोई नीचे तो कभी कोई ऊपर—गड्डमड्ड हो रहे हैं। कौन हैं ये ?

बीच-बीच में वह मर्मभेदी हूंकार और चीत्कार वातावरण को कंपाये दे रही है। न जाने कब से चल रहा है यह संघर्ष।

तभी किसी मोटर साइकिल की भरभराती आवाज के साथ ही हैडलाइट का प्रकाश पिछाँते से दिखाई पड़ा, तो गुंथी हुई उन क्षत-विक्षत माँसपेशियों

के बंधन तत्क्षण शिथिल हो गये। कौन है—इस वक्त यह ? दोनों मल्लों ने यकायह जोर से पलटा खाया तो अलग-अलग दिशाओं में लुढक पड़े। भाग छूटने की कोशिश में दोनों ने खड़े होने का भरसक प्रयत्न किया, तो खड़े तो हो गए, लेकिन कदम उठाते ही किसी बेजान लट्ठे की तरह धड़ाम से धरती पर फिर आ गिरे। खून से लथपथ, काले-काले नागों-सी वे मांसपेशियाँ अब निर्जीव-सी गिरी धरती की धूल चाट रही है। खून और खून, चौरहे की छाती पर, खून से भरे पैरों की कैरियों की छापें ही छापें, किसी चितेरे के अंधेरे मन की खौफनाक तस्वीर की तरह उभर आई।

मोटर साइकिल की वह रोशनी रिसते खून की उन मांस पेशियो पर आ गिरी। चालक की निगाह ने देखा तो सहसा काँप गयी क्या है यह—खून ? पलकें फटी की फटी रह गयी।

मोटर साइकिल तत्काल उस चौराहे के नुक्कड़ पर खड़ी कर दी गयी। इसका इंजन अब भी धीमी गति से घरधरा रहा है। हैड लाइट की वह रोशनी अब बैरवा इलेक्ट्रोनिक्स मार्ट के बरामदे पर गिर रही है तो दृष्टि पहले उधर ही दौडी अरे, यह क्या ?—ताश के पत्ते ही पत्ते बिखरे हुए हैं। दो एक बोतलें भी लुढ़की हुई है—इधर-उधर। उस गुत्थी के एक छोटे से सूत्र-सी।

अच्छा, तो यह बात है। पर, ये दो बांके इस तरह इस सूने-सूने चौराहे पर लेट लगाये हुए हैं—है कौन ?

उसने तुरंत ही अपने खाकी पैंट की जेब से मिनी टॉर्च निकाल ली, और तेज कदमों से उसी ओर बढ चला।

टॉर्च का प्रकाश--क्षत-विक्षत रिसते घावों के खून से लाल-लाल वे विकृत चेहरे, पथराई डरौनी-सी आंखे इस रोशनी से मिचमिचाई ही नहीं। लगातार जैसे उस टॉर्च डालने वाले को स्थिर दृष्टि से घूर रही है। टॉर्चधारी ने नीचे झुककर गौर से देखा, पहचानने का प्रयत्न करने लगा कि हठात् उठ खड़ा हुआ। घृणा और वितृष्णा के भावों ने मन को पल भर के लिए उदास कर दिया। सम्हल-सम्हल कर कदम रखते हुए, उधर से मुड़कर वह अपनी मोवाइक के समीप आ गया। चाबी घुमाई तो घरघर्र तुरंत बंद हो गयी। ठिठका-सा कुछ देर वह वही खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा, लेकिन

सोचकर वह फिर उस बरामदे में पहुँच गया, जहाँ ताश के कुछ पत्ते, उस मौत के वारंट के अक्षरों की तरह फर्श के कागज पर अब भी उसी तरह फैले हुए हैं। खोजती हुई वह दृष्टि खोजती-सी टार्च के प्रकाश के साथ-साथ इधर उधर घूमती रही। रोशनी ज्यों ही दूसरी ओर मुड़ी कि कुछ ताश के पत्तों के समीप ही एक सफेद लिफाफा उसकी गिरफ्त में आगया। तलाशती उस नजर ने तत्काल झुककर उसे उठा लिया। जिज्ञासा की अंगुलियाँ कुलबुला उठीं, चुपचाप उसे चीरकर अंदर का मजमून निकाल लिया, देखा तो विस्मय से मन भर गया। यह तो उसी की मौत का फरमान है न?

'भले बचे आज—गश्त पर न होते तो मारे ही जाते न? हूँ, तो ये जुआरी पियक्कड़ इस तरह अपनी ही मौत खुद मारे गये है, आयगर!'—उसने चुपचाप वह कागज समेट उसे तत्काल अपने बुशर्शट की ऊपरी जेब के हवाले किया। तुरत ही फिर वह अपना मोबाइक के पास लौट आया, किक लगाते ही गाड़ी स्टार्ट हो गयी तो उस रक्तरंजित चौराहे के किनारे किनारे दौड़ता हुआ, बीसेक मिनिट मे ही प्रधान कार्यालय आ पहुँचा।

पीं. पी पी की ध्वनि। लकड़ी की गुमटी मे ऊघते से संतरी की आँख तुरत उघड़ पड़ी। तत्काल फाटक खोल, ऐड़ी बजाते हुए सैल्यूट ठोक, बुत की तरह खड़ा हो गया। मोबाइक घर्रर करती अंदर आकर अपने स्टैण्ड पर खडी हो गयी।

राजन एस. आयंगर फिर अपने चैम्बर में। हैट उतारकर टेबुल पर रख दिया। सान्त्वना ने एक गहरी साँस खींची। उसने फिर वह सफेद लिफाफा जेब से निकाल लिया। देखा—पत्र नीतूसिंह जैन ने लिखा है—बकलम खुद। पचास हजारी उस वायदे के साथ ही साल भर तक खाने-पीने की व्यवस्था भी। लैटर आज ही की तारीख का है। उसने टेलीफोन का चोगा उठा लिया, रिंग करते ही बोल पड़ा—'हलो! सर, आयंगर स्पीक्स। जी अभी-अभी गश्त से लौटा हूँ—शास्त्री स्क्वायर पर दो लाशें.........जी हाँ, खून से लथपथ—घटना बिल्कुल ताजा है—जी? जी हाँ, अभी स्टेशन वेगन-भिजवा रहा हूँ—हॉस्पिटल?..............हाँ ऽ ऽ आँ..............वहीं भिजवा देते हैं..........मुझे तो मुर्दा ही लगते थे—उस जेल के वार्डर हैं शायद—जी हाँ, जी हाँ—बिट्टू और गुलजार है—' और कुछ क्षण तक चुपचाप वह दूसरी ओर से आती आवाज सुनता रहा। फिर सहसा ही—'जी

हाँ, ताश के वे पत्ते अब भी बिखरे हुए है—बोतलें भी हैं—करेंसी नोट ? ....नही, देखे तो नहीं..........हो सकता है, किसी गहरी रंजिश का नतीजा हो..........जी हाँ।

........तो, भिजवा दूँ न अस्पताल ? अच्छा जी..........जो हुकुम।' और खट से चोंगा फिर से रख दिया। बटन दबाया तो कॉलबैल झन झनाई, अर्दली ने अंदर आते ही सलाम किया। 'देखो, सिपाहियों के साथ स्टेशन वैगन शास्त्री स्क्वायर पर अभी हाल भिजवा दो। दो लाशें पडी हैं वहाँ—वही एक बरामदे में ताश के पत्ते आदि बिखरे मिलेंगे। यही नही, जो कुछ भी मिले दफ्तर ले आओ। लेकिन सुनो। उन लाशों को पहले चीरफाड़ के लिए डॉ. लोहिया हॉस्पिटल ले जाना है, समझे ?'—अर्दली ने बा अदब सलाम किया, आदेश पूर्ति के लिए तुरत बाहर निकल आया। आयंगर की दृष्टि टिकटिक करती दीवार घड़ी की ओर गयी—पौने दो बज रहे है। उसका ध्यान फिर उस पत्र की ओर गया जो पेपरवेट के नीचे अब भी दबा हुआ है।

—पूरा सबूत है यह, इस जालसाज जैन का। महाधिवक्ता बनता है, पर अक्ल कभी-कभी घास चरने चली जाती है। ऐसा लिखकर देने की क्या जरूरत थी—जानता नही, इन नागो को कितना ही पलुआ बना लो, एक न एक दिन अपनी ही मूर्खता से खुद तो मरते ही है, दूसरों को भी इस तरह मरवा ही सकते है। क्या भरोसा है इनका ?—और उसने अपने ऊपर नाचती सीलिंग फेन की उन पंखुड़ियो की ओर क्षण भर देख लिया।

—लगता है, गुलजार अपनी माग के लिखित आश्वासन के लिए अड़ गया होगा, सोचा होगा कि एक ही पत्थर से दो शिकार हो रहे है। मल्होत्रा का यह जरखरीद गुलाम मुझसे तो पहले ही खार खाये बैठा था, और हमेशा वार करने की फिराक मे रहता था। इधर फिर चुपड़ी और दो-दो दीखी तो जैन से भी शर्तें मन चाही ली—लेकिन आयंगर !..........ये विपदंती इस रात मे आपस ही में कैसे जूझ मरे है-क्या रहस्य है इसका, कौन सी गुत्थी है यह ....राम जाने !—वह धीरे से फिर फुसफुसा दिया। मौत के उस दस्तावेज को फिर उठा लिया देखा—नीतूसिंह जैन—कितने साफ-साफ हैं ये हस्ताक्षर। क्षण भर मे मन की वह प्रतिक्रिया प्रतिहिंसा बनकर जाग उठी। 'करो न इस महाधिवक्ता की भी छुट्टी'—लेकिन वह उबाल,

दूध के उफान की तरह एकदम उठकर फिर शांत हो गया। बिट्टू और गुलजार की मौत ने पानी के छीटों की तरह काम किया। सोचा—लोग अपनी करनी का फल आप ही पा गये, और मौत की वह आँच मुझ तक नही पहुँच पाई। कभी भी, कही भी घात लगाकर किसी दिन मार ही सकते थे न मुझे? बहुत ही आसान था इनके लिये तो? लेकिन, यह सब उस परम सत्ता की कृपा है कि मैं अब तक जिन्दा हूँ। नहीं, नहीं..........इस दस्तावेज् का अकारण उपयोग नही करूँगा—और ऐसे सात्विक सोच से वह मन प्रसादकता से भर उठा।

लेकिन समय तो सजग था ही—दो के टंकोर टन टन बज उठे, दृष्टि एक बार फिर दीवारघड़ी पर जा टिकी। कुछ क्षण टिक टिक की वह ध्वनि कानों की राह से अंदर तक उतरती रही, और लगा कि जैसे समय की यह टिक टिक उसके हृदय की धड़कन ही बन गयी है। सोच में डूबी दृष्टि कभी बाहर तो कभी भीतर की ओर झाँकने लगी—लगा कि इन बहेलियों से कितना घिरा घिरा रहता है वह? आखिर यह सब क्यों—इसलिए न की सच्चाई की राह चल रहा हूँ, सत्यान्वेषी हूँ—उसी का आकांक्षी भी। सच तो कहूँगा ही.... ... ...पर........ ..पर सत्य यह दुनिया बोलने दे, तब न? लेकिन यह सत्यान्वेषी है, कोई कस्तूरी का मृग नही – जो ये राजनैतिक बहेलियों के गिरोह इस तरह शिकार करना चाहते है? उसकी जान के ही ग्राहक हो गये हैं।

वह दृष्टि फिर अपनी मौत के उस दस्तावेज पर स्वत: आ टिकी—लगा कि सत्यान्वेषी का चरित्र वास्तव में वह कस्तूरी है जो उसके सारे व्यक्तित्व मे घुली मिली है, और उसी की महनीय गंध से यह मनुष्यता अब भी धरती पर जीवित है—गौतम और वह गांधी उसी कस्तूरी के मृग थे न? —और वह फलसफाई नज़र उसके अंदर का कोना-कोना झाँक आई।

उसने वह दस्तावेज तुरंत समेट लिया, उठा और गोदरेज की अल्मारी खोल, गुमसुम की तरह सहेजकर रख दिया। बंद किया तो फिर निश्चित मन लौटकर अपनी रिवॉल्विंग चेयर आ डटा। बाहर किसी ने बैल का बटन दबाया तो वह झनझना उठी। कान तत्काल चौकन्ने हो गये, मस्तिष्क सजग।

कौन है इस वक्त ?—सोच ही रहा था कि कॉलबैल फिर झनझना उठी। हाथ स्वतः टेबुल के किनारे पर रखे बैटन पर चला गया—कड़कती आवाज गूंज उठी—'मक्खानसिंह, कौन है बाहर ?'

अर्दली तत्काल अंदर आ गया सैल्यूट करते ही बोला—'कोई मैडम है, मिलना चाहती हैं।'

'इस वक्त ?जानते नहीं, हमारे आराम करने का वक्त है यह। क्यों मिलना चाहती हैं ? और फिर इस बेवक्त ही·········क्या नाम है उनका ?' —घूरती दृष्टि ने तपाक से पूछ लिया।

'सर यह रहा वह चिट।'

आयंगर ने चिट ले लिया और क्षण भर अंकित अक्षरों को देखता रहा।

'कोई और भी है साथ इनके ?'

'जी, एक महिला और भी है'—बाअदब जबान फिर खुल पड़ी।

'अच्छा, भेज दो अंदर। देखो, घंटी बजते ही अंदर चले आना। 'जी'—अर्दली उल्टे पाँव बाहर लौट आया। द्वार का पर्दा लहरा उठा और दो महिलाओं ने धीमे कदमों से अंदर प्रवेश किया। आयंगर का चेहरा सायास मुस्करा उठा, बोल फूट पड़े—'आइये बैठिये।'

वे सामने ही कुर्सियों पर आ बैठीं।

'अभी कैसे कृपा की मुझ पर ?'—अंदर की शालीनता तपाक से बोल उठी। लेकिन आगन्तुकों को लगा कि प्रश्न सीधा होते हुए भी सीधा नहीं है। कुछ सम्हलते हुए पहली नारी अपनी सफेद खद्दर की रेशमी साड़ी के आँचल को उस समुन्नत वक्ष पर सलीके से सहेजती हुई बोली—'जनाब से मिलना था, और वह भी जरूरी·········'और उत्तर की प्रतीक्षा मे वह दृष्टि आयंगर के चेहर पर मधुमक्खी की तरह जा चिपकी।

'ऐसे बेवक्त, मैडम ! फोन ही कर देती न। मैं तो आदतन रात देर तक जगता ही रहता हूं, अभी-अभी गश्त से लौटकर बैठा ही हूँ'—सुनते ही उस महिला ने खादी के श्वेत रूमाल से ललाट पोंछ लिया तो सिर के वे घुंघराले खिचड़ी केश भी जैसे रोमांचित हो हिल पड़े। आयंगर की पैनी दृष्टि इस व्यक्ति के ऐसे बदलाव को विस्मय से ही देखती रही। वह टू टोन' का श्यामल जादू अब उन बॉबकट बालों से पूरी तरह जो उतर चुका है।

और न अब लिबास ही कि नज़र गिरते ही फिसल जाये।………इतना परिवर्तन इस जीवन के किस मोड़ का परिचायक है !

आयंगर ने फिर बात उठाई, बोला—'मैडम ! आज तो आपको पहचानने में ही इन आँखों को मुश्किल हुई। लग रहा है कि जैसे कोई इन्द्रजाल इनके सामने चित्रित हो गया है।

आप तो पूरी नेता लग रही हैं।'

सुदेश बत्रा सुनते ही किंचित मुस्करा उठी। अपने समीप ही बैठी प्रिया की ओर कनखियों से देख भर लिया।

'क्यों प्रिया जी, सच है न यह ?'—उस दृष्टि ने समर्थन के लिए उससे पूछा तो प्रिया की पुतलियाँ चुप्पी तोड़ती हुई प्रसन्नता से खिल उठीं। बोली—'सर, यह परिवर्तन तो बस प्रकृति का नियम है………वह बंधी-बंधी जिन्दगी दूभर हो उठी तो वे बंधन सब टूट ही गये। फितरत की कुदरत है यह।'

'भई, बहुत खूब। मेरी भी बधाई स्वीकारिये, बत्राजी। पुलिस विभाग के वे खौफनाक और रहस्य भरे प्रपंच किसी दोज़ख की जिन्दगी से कम नहीं। है न सच ?'—और वह प्रसन्नभरी दृष्टि उस प्रसन्नयौवना को छूती हुई बत्रा की दृष्टि से आ मिली।

'शायद—भाईसाहब की इस संगति का ही सुफल है यह। क्यों बत्राजी ?'—तो बत्रा आदतन मुस्करा उठी। लेकिन मन में सोचा—कितना घाघ है यह व्यक्ति। खाकी वर्दी पहनता है पर बातें करता है आसमानी उसूलों की। पर वह बोली कुछ भी नहीं। ऐसे इन्सान के मन की घात पा लेना कितना मुश्किल काम है। उसने फिर प्रिया की ओर कनखियों से ऐसे देखा जैसे कोई संकेत कर रही हो। धीरे-धीरे जबान खुल ही गयी, कहने लगी—'सर, भाईसाब सचमुच ही बहुत जहीन इन्सान है, साथ ही जितने सहृदय और सहज हैं, उतने ही सेवाभावी भी। मुझमें जो बदलाव देख रहे हैं, वह सब उन्हीं की इनायत है—अब तो हम सभी ने यही व्रत लिया है कि यह तमाम जिन्दगी जनसेवा में ही गुजार दें।'

'अच्छा, तो भाईसाब भी अब इतना ऊँचा पद छोड़ रहे हैं ? यह सब तो मुझे फितरत का करिश्मा ही लगता है, है न करिश्मा ? - वह विस्मयभरी दृष्टि तपाक से पूछ ही बैठी—'सो यू टू हैव जाइण्ड ए पार्टी ?'

'नहीं सर, अभी फिलहाल ऐसा तो नही है पर'.........उस मधुभीनी मुस्कराहट ने कहना शुरू किया—'सदाकत आश्रम से सम्बद्ध है हम लोग। आखिरकार इन्सान ही हैं हम भी तो। इतने हैरतअंगेज जुल्म-ज्यादतियों को कहाँ तक बर्दाश्त करते रहेंगे हम ? हम अब किनारे खड़े रहकर तमाशबीन नही बने रह सकते। हमें उन असंख्य पददलितों और पराजितों के जीवन-संघर्ष में सक्रिय रूप से साथ देना ही है। महिमामयी प्रभावतीजी और जयप्रकाश बाबू ने भी तो कर्त्तव्य की उस धधकती बलिवेदी में अपना सर्वस्व होम दिया था। और अब हमने उसी चेतना की अग्नि-शिखा को निरंतर प्रज्वलित रखने का विनम्र व्रत लिया है, सर !'—कहते कहते वह आवेग पूर्ण चेहरा कुछ तमतमा उठा तो महीन खादी के आँचल से आवृत्त उस गदराये वक्ष में भी हल्का-सा ज्वार उफन कर फिर शांत हो गया।

आयगर ने सुना तो मन में एक बार विस्मयविमूढ़-सा हो उठा। जयप्रकाश और प्रभावती—जीवंत आदर्शों के दो प्रतीक—ऐसे नामों का उच्चारण आज ऐसे अधर कर रहे हैं जो अब तक विलास की व्हिस्की की मदभरी चुस्कियाँ लेते रहे है, और जिनकी पुतलियों की गहराई में जलती, अब भी वे अनंत काम-शिखाएँ बुझी ही नही हैं। और आदर्शों के इस झीने आवरण के तले का तलछट अब भी साफ-साफ नजर आ रहा है।

सोचते-सोचते आयगर मन ही मन उदास हो गया। चेहरे पर वितृष्णा की हल्की छाया फैल गयी। लेकिन मन पर काबू पाते ही वह फिर सहज हो उठा, बोला—'प्रिया जी ! आज तो आपने मेरे अंदर की भी आँखें खोल दी हैं। भाई साहब नीतूसिंह जी और आप लोगों ने वास्तव में अब सही रास्ता अपनाया है.......लेकिन, आप लोगों ने अब तक इस वक्त पधारने के प्रयोजन की तो कोई बात बताई ही नहीं ?'

'हैं हैं हैं'.......प्रिया और सुदेश एक साथ हल्का ठहाका लगाते हँस पड़ीं। बत्रा का सिर किंचित सा ग्रीवा पर झुक आया। मुस्कराती हुई वह अस्फुट वाणी, नीची निगाह किये बोली, 'आज उन्हीं के एक कार्य से आपकी सेवा में हम आये हैं।'—नेत्र किंचित प्रसन्नता से ऊपर उठकर, आयंगर की दृष्टि को टटोलने लगे। लेकिन आयंगर की अचंचल दृष्टि न झुकी, न छिपी ही।

'बताइये न फिर, यहाँ संकोच किस बात का है, अब ?'

'सर !'—कहते ही पलकें तत्क्षण पुतलियों पर झुक आयीं। 'हाँ, हाँ—आप निःसंकोच हो कहियेगा। क्या खिदमत की जाये इस वक्त ?'

'सर !.........एक.........निवेदन है, और वह यह कि अभी-अभी जो हादसा हुआ था, उसमें से किसी के पास एक डोक्यूमेंटरी लैटर था। हम दोनों सीधी वहीं से आ रही हैं'.........वह दृष्टि फिर अवाक् हो आयंगर का चेहरा ताकने लगी।

'कौन दस्तावेज ?'—साश्चर्य पुतलियाँ नाच उठीं। हमें जो सामान ट्रक से अभी-अभी मिला है, उसमें तो ऐसा कुछ भी नहीं मिला है, प्रिया जी !'

'यही तो, सर !—बड़ी परेशानी की बात है यह। उन दोनों की लोथें जब ट्रक पर चढाई जा रही थीं, हम वहीं मोजूद थीं। ताश का तो पत्ता-पत्ता मिल गया है, बोतलें भी—वह दस्तावेजी पत्र ही नदारद है न !.........खतरा तो यही है, किसी ऐसे वैसे के हाथ पड़ गया तो भाईसाहब जैसे भले आदमी के व्यक्तित्व पर आँच आ ही सकती है।' वाणी जैसे निराशा के अंधकार मे डूब-सी गयी।

'ऐसा है ?'—वे नेत्र आश्चर्य से फैल गये। क्षण भर प्रिया की ओर ताकते हुए वह धीरे से बोला—'ऐसा क्या था उसमे, प्रियाजी कि भाईसाहब जैसे सज्जन पुरुष पर आँच आ जाये ? आपकी बात तो कुछ भी समझ में नही आई'—निस्पृह दृष्टि से उसे निहारते हुए वह बोल उठा।

'यही तो तकलीफदेह है, सर।'—सिर झुकाये हुए प्रिया ने धीरे से कह दिया। हम लोगो ने सोचा था शायद कि कहीं......... '—'कहते हुए जैसे वह जबान तालू से चिपककर रह गयी।

'कहो, कहो न कि शायद'—प्रश्न दोहराते हुए पूछ लिया। 'कि कहीं आपने देखा हो उसे !'—वाणी कहते-कहते थरथरा उठी। 'मैंने ?—नहीं तो। गश्त पर तो उधर ही से गुजरा जरूर था। उस वीभत्स दृश्य को देखते ही दौड़ा आया यहाँ। आते ही आई. जी. साहब को रिपोर्ट दी है। उन्ही के आदेश से उस स्टेशन वैगन मे लोथों को हॉस्पिटल सीधा ही भिजवा दिया। वहाँ से जो कुछ भी मिला, वह नीचे सरिश्तेदार के पास

जमा है ही। चाहें तो आप उसे और देख लें, शायद है आपकी चीज आपको मिल ही जाये ? मैं तो क्षणभर से अधिक यहां ठहरा ही नहीं था'—वाणी की दृढ़ता ने आश्वस्त करते हुए कह दिया। 'उसे तो हम फिर अच्छी तरह देखभाल कर आई हैं, सर !"""""लेकिन यहां भी हमारा अंदाज गलत ही निकला"""""भाईसाहब ने तो अब अपना सारा जीवन् ही जन-जन की सेवा के इस त्यागपूर्ण अनुष्ठान में लगा ही दिया'—प्रिया की आंखों ने किंचित किलकते हुए सुदेश की ओर देख लिया। सुदेश ने तुरंत ही उसका दाहिना हाथ धीरे से दबा दिया। लेकिन आयंकर की चकोर दृष्टि ने यह सब देख ही लिया। बोला 'प्रिया जी, भाईसाहब नीलूसिंह जी को अब करना ही क्या रह गया है। बेटे-बेटियों के विवाह अच्छे घरानों में हो ही गये हैं, यही नहीं, शिक्षा की दृष्टि से भी निकम्मे बेटे तक को मुंसिफ मजिस्ट्रेटी दिलवा दी है —इससे अधिक एक पिता अपनी संतान के लिए और क्या कर सकता है ?

'और अब सभी ओर से निवृत्त हुए तो जनसेवा ही जनसेवा है-मेवा भी तो मिलता है, इसमें !'—किंचित मुस्कराते हुए बोल पड़ा—'भाई साहब के लिए तो अब किसी विधानसभा की अध्यक्षता ही अधिक उपयुक्त रहेगी, प्रियाजी। क्या ख्याल है, आपका ?'

ऐसी सुन्दर कामना के लिए आपके मुंह में घी-शक्कर।'—तपाक से उत्तर देते हुए प्रिया की मधुभीनी दृष्टि ने आयंगर के चेहरे को जैसे चूम लिया। फिर धीरे से बोली—'सर, आप जिन ऊँचे आदर्शों के लिए जी रहे हैं, इस गुलामी की वर्दी का लिबास, उसे शोभा नही दे सकता। देता है क्या, सर ?'—एक पैना प्रश्न उस वातावरण में तुरंत उछाल दिया। सुनते ही आयंगर एक बार तो भचकचा गया। सोचा—कितनी शैतान हैं ये लोग। पर, चेहरा तत्क्षण सहज हो आया।

'प्रिया जी ! आज तो आपने मेरे मर्म को छू लिया। बहुत ही मर्मस्पर्शी बात कही है आपने """"लेकिन""""' बलात् मनोवेग को दबाये वह दृष्टि प्रिया की आंखों में गहराई से झांक उठी। पर दृष्टि का चंचल स्वभाव तो खिल उठा, तपाक से पूछ लिया—'लेकिन क्या, सर ?'

'किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में हूं मैं """मैं समझता हूं प्रियाजी कि यह गुलामी का लिबास किसी वर्दी का नहीं, अपने मन की विवशता का ही है। आपका मन यदि स्वस्थ और सबल है तो कौन वर्दी

उसे गुलाम बना पाई हैं, आज तक ? केवल कपड़े भर बदलने से जीवन की की यह धारा नहीं बदला करती, प्रिया जी !

और मेरा मन मानता है कि यह वर्दी अब तक तो कभी, इन आदर्शों को जीने में आड़े आई ही नहीं—यह सब स्वधर्मे निधनं श्रेय की बात है। इसीलिए न मुझे किसी जमात की जरूरत हुई अब तक, न किसी मंच, मठ, दल या संस्था की ही। अकेला चलने में जो सुख है, प्रियाजी ! वह उन आदर्शों के पाखंडों से भरी-भरी इन भीड़ों में कहाँ है ? सत्ता या सरकार किसी पार्टी की भी हो, हर सजग देशवासी के लिए देश तो उसका अपना है ही। वह अपनी शक्ति भर सेवा तो कर ही सकता है। फिर उसे किसी बड़े काम या बड़े धाम की जरूरत ही क्यों हो ?'—सुनते ही प्रिया की दृष्टि कुतूहल से चमक उठी।

'वाह सर। क्या कहने हैं ? आप डी. आई. जी. हैं तो यह कथन शोभा ही देता है। तपती और पिघलती हुई उस कोलतार की सड़क पर भारी-भारी ठेले ठेलते हुए नंगे पैरों वाले उस देशवासी की आत्मा के अनुभव से आपने कभी पूछा भी है कि भई—कैसी चल रही है यह देशसेवा ?'—वाणी ने व्यंग्य भरी चिकोटी काट ही ली।

'सच, सच ही कहती हैं आप, प्रियाजी ?—मेरे लिए केवल एक देशवासी नहीं—समूचा देश है वह। मुझे मालूम है कहाँ-कहाँ और कब-कब उसे इस पुलिस की नफरत भरी ठोकरों से कुचला जाता रहा है, बेरहम वे डंडे बरसते रहे हैं उस पर भी। लेकिन विश्वास कीजिये मुझ पर कि मैंने अपनी शक्ति और सामर्थ्य के इस छोटे से सीमांत में जो कुछ भी हो सका अब तक, कुछ न कुछ किया ही है। मैं मानता हूँ कि यह संतोष की बात कदापि नहीं है, न कभी हो ही सकती है—क्योंकि मैं यह अच्छी तरह महसूस करता हूँ कि मेरा यह अधिकार, यह वर्चस्व—किसी के उत्पीड़न के लिए नहीं, वरन् सेवा के लिए ही है। सच मानिये प्रियाजी ! कि हम पुलिस वाले देश की सेवा के लिये तैनात हैं, हुकूमत करने लिए कदापि नहीं।'—सगर्व वाणी उसी वातावरण में फिर गूंज उठी।

तभी दीवार घड़ी ने चार के टंकोरे मुस्तैदी से बजा दिये। प्रिया ने सुदेश की ओर किसी मतलब भरी निगाह से देखा तो धीरे से दोनों ही उठ खड़ी हो गयीं। उन्हें उठते देख आयंगर भी उठ खड़ा हुआ।

'अच्छा, सर ! इस कष्ट के लिए क्षमा कीजियेगा।'—उस नमित दृष्टि को, आयंगर कुछ कहे कि इतने में वे दोनों स्वतः चैम्बर से बाहर निकल आयीं।

आयंगर के उस ऊब भरे निंदियाते मन ने जमुहाई लेते हुए निष्कृति की साँस ली।

सत्रह

दो अक्टूबर की सुबह। अंधेरे की स्याही धूप के सुनहले जल से पूरी तरह धुल चुकी है। अब ग्राम-ग्राम, नदी-नाले, झील-सरोवर ही नहीं, धुआँ उगलती-झोंपड़पट्टी की उन खपरैलों और आसमान छुती कारखानों की उन चिमनियों को, धरती के इस विस्तृताकार कागज पर, प्रभात के प्रकाशक ने छपाछप छापकर प्रकाशित कर दिया। रात्रि के निविड़ अंधकार में बेतहाशा दौड़ती, अजगरों सी वे सैकड़ों रेलगाड़ियाँ अब उतनी आकर्षक और आतंकपूर्ण नहीं रही। आसमान पर जुगनुओं से टिमटिमाते वे वायुयान अब साफ साफ, गरुड़ों की भाँति उड़ते हुए दिखाई दे रहे है। जीवन का समूचा संसार पूरी तरह अब मधुमक्खियों की तरह व्यस्त हो भिनभिना रहा है।

आयंगर इसी वक्त अपने निजी कक्ष के भीतरी प्रकोष्ठ में प्रवेश करने ही वाले थे कि मल्खानसिंह ने प्रवेश कर, सैल्यूट के साथ आई. जी. साहब के 'रिंग' की सूचना दी। आयंगर अवाक् उसे देखते रहे, फिर तुरंत बोल पड़े—'अच्छा, चलो मैं आया।'

मन किसी अज्ञात आशंका से भरा-भरा, कल्पना के पंख पर बैठा उड़ान भर रहा है। अभी तो सवेरे के नौ ही बजे है, साहब ने कैसे याद कर लिया अभी ? हो सकता है—रात की उस घटना के विषय में ही कुछ और दरियाफ्त करना चाहते हों। यही सोचकर वह तेज कदमों से तुरंत बाहर निकल आया और अपने ऑफिस—चैम्बर की टेबुल से फोन का चोंगा तपाक से उठा लिया।

'हलो, सर !—कौन ? अच्छा साहब से मिलवाइये न ! येस येस ...... हलो, आयंगर है, सर ! जी हाँ .... मैं ? मैं अभी हाजिर हुआ। कोई खास बात है ?—वह तो आपकी बंदानवाजी है...... हाँ ऽ ऽ ओं ...... चाय-नाश्ता तो हो ही चुका है...... जी हाँ ......आज्ञा शिरोधार्य है......

मैं अभी हाल हाजिर हुआ—येस येस ......थैंक्यू !'—और चोगा फिर टेलीफोन पर धीरे से रख दिया। कॉलबेल के झनझनाते ही मल्खानसिंह तुरंत चेम्बर में घुस आया।

'देखो, जीप तैयार है अभी ?'

'जी हाँ, आठ बजे के लिए ही हुक्म था।'

'ठीक'—और 'पी' केप सर पर रख ली। बैटन बगल में दबाये, खट-खट करते वह नीचे पोर्च में आ गया।

बैठते ही जीप स्टार्ट हो गयी तो गेट के बाहर निकल आई।

'आई. जी. साहब का बंगला'—वे उतावले शब्द फिसल पड़े। जीप सर्राटे से सड़क पर दौड़ रही है। कुछ ही देर में प्रशांत पार्क के मोड़ को पार कर, पंतजी की आदमकद मूर्ति की वह छाया छूती सी अब सीधी सड़क पर आ गई है। दो चार चौराहे देखते ही देखते निकल गये। बीसेक मिनिट के उपरान्त जीप आई. जी. के बंगले के फाटक में घुस आई। द्वार पर खड़े बंदूकधारी संतरी ने खट से सैल्यूट किया। जीप अंदर पोर्टिको के नीचे आ खड़ी हो गयी। चालक ने तपाक से उतरकर दरवाजा खोल दिया। आयंगर खट खट करते बैठक के सामने पहुँचा ही था कि चपरासी ने अदब से झुककर प्रणाम किया और पर्दे को धीरे से हटा दिया। चैम्बर के केन्द्र में लगी अंडाकार शानदार टेबुल के चारों ओर सजी केन चेयर्स ट्यूबलाइट के प्रकाश मे एक आतंकपूर्ण आकर्षण लिये हुए हैं। आयंगर को देखते ही आई. जी. बत्रा चहक से उठे, 'आइये आयंगर, तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी।

और बाअदब सिर से 'पी' कैप हटाते हुए आयंगर उनके ठीक सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। बैठते ही 'रिंग' झनझनाई, और अर्दली अंदर आ गया। अदब से सलामी दी।

'चाय-नाश्ते का प्रबंध हो गया ?'—रोबीली आवाज गोली-सी गूंज उठी।

'जी, हाल हुआ जाता है'—फिर वही सलामी। अर्दली आदेश पर दौड़ चला।

वह वाणी फिर सहज हो आई। मिस्टर बत्रा के अधर किंचित मुस्कराते बोल पड़े—'आयंगर, मैंने आज तुम्हें अपने ही एक काम के लिए कष्ट

दिया है। तुम्हारी व्यस्तता से अवगत हैं हम, फिर भी इस वक्त.........'
फिर एक मुस्कराहट फेंकती दृष्टि ने उसे देख लिया।

'आदेश दीजिए, सर! कौन ऐसा है जो आपकी सेवा में हाजिर न हो? फिर आपका काम, मेरा ही अपना काम है न'—बड़े ही सहज भाव से वे शब्द वातावरण में मिठास घोल उठे।

'सो तो हमें उम्मीद है ही।'—कुछ रुकते हुए आई. जी. बत्रा ने किसी रहस्यभरी दृष्टि से उसे फिर टटोल लिया तो बोल पड़ा—'आज सवेरे ही मेरी चचेरी बहन यहाँ आई थी। तुम तो जानते ही हो सुदेश को तो अच्छी तरह। बरसो चीफ़ वार्डन रही हैं जो.........' फिर क्षण भर उसने चुप्पी के साथ टोह लिया। आगे बात बढ़ाते हुए याराना ढंग से बोला.........
'यार, वह कह रही थी कि उसके किसी अजीज ने कोई पत्र, कल रात मारे गये उस जेल वार्डन को किसी गहरी पिनक मे लिख मारा था, वह अब तक नहीं मिल पाया है।'—कहते कहते वह डेढ़ इंच मुस्कान फिर उसके अधरों पर खिल आई। आयंगर ने सुना तो लगा कि उसके मन का अंदेशा पूरी शक्ल में उभर कर दृष्टि के सामने आ खड़ा हुआ है।

'सर!'—कुछ खँखारते हुए शब्द निकल पड़े।

'सुनो तो, पहले मुझे सुनलो। सुदेश के कहे अनुसार ही वह पत्र उसके उस अजीज के लिए बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकता है'—कहते हुए आवाज कुछ सकपका-सी गयी।

'कोई खास बात थी उसमें, सर?'

'यही तो कोई तो खास बात होगी ही'— पर, उस क्षण आगे और कुछ कहते हुए वाणी हिचकिचा कर रह गयी। किन्तु, आयंगर की कुरेदती हुई पैनी दृष्टि के प्रहार से आहत-सा वह फिर बोल उठा—'यार आयंगर, इधर देखो! इस स्थिति में उस गरीब की तुम्हीं सबसे बड़ी मदद कर सकते हो।'

'सर, यकीनन मैं आपकी मदद के लिए हमेशा तैयार रहा हूँ—ऐसी क्या बात कही आपने? फिर उसने सीधी दृष्टि से देखते हुए पूछ लिया—'लेकिन, सर! उसमें ऐसी क्या खास बात थी जो आप जैसे व्यक्तित्व को भी इस कदर बेचैन किये हुए है?'

'अरे पूछो मत आयंगर। सुदेश सवेरे ही सवेरे आकर गिड़गिड़ाने लगी थी। आखिर बहन जो है, चाहे कितनी ही दूर की, और चचेरी ही क्यों न हो।—और जो कुछ उसने मुझसे कहा, मेरे दोस्त! उसे बयान करते हुए दिल भी कांप उठता है।

'आज का इन्सान कितना क्षुद्र और निरा स्वार्थी होगया है, तुम से तो छिपा नहीं है। तुम वैसे मेरे मातहत हो, मैं इसलिए तुम्हें कुछ भी नहीं कहना चाहता था। तुम्हारी नेकनीयती-और भलमनसाहत पर मुझे पूरा पूरा भरोसा है, और भाव की प्रेरणा से, मेरे एक अजीज दोस्त की तरह ही यह बात कहने का साहस कर पा रहा हूँ—हालांकि वह पत्र एक खतरनाक षडयंत्र, और वह भी मेरे प्यारे आयंगर के जीवन से खिलवाड़ करने से सम्बंधित है।''''''''''कहते हुए शब्द कांप से गये। और वही विवश दृष्टि फिर जैसे कुछ याचना लिये विनत हो गयी। आयंगर भी अब तक पूरी तरह सजग हो गया था। दृष्टि नीची किये ही बोला—'सर, गयी रात बत्राजी अपनी प्रिय सहेली के साथ करीब सवेरे तीन बजे ब्यूरो के केन्द्रीय दफ्तर में पधारी थी—विषय मे चिन्तित थीं। उस रात जो कुछ भी मिला था, उसे भी उन्होने कई बार अच्छी तरह देख लिया था। सवेरे सवेरे वह चौराहा और आस-पास के स्थान को अच्छी तरह झाड़-झूड़कर साफ भी करवा लिया गया था, पर, उनके ऐसे पत्र का तो चिन्ह तक न मिला।'

'यही तो रहस्यभरी बात है, आयंगर!'—बीच ही मे तपाक से मिस्टर बत्रा बोल उठे—'सुदेश ने तो यहाँ तक कहा था कि'—और वह तेज निगाह आयंगर की उस अनभिज्ञी दृष्टि में सीधी उतर गयी।

'क्या कहा है, सर?

'कि यह पत्र तुम्हारे ही कब्जे में है—और क्योंकि वह तुमसे ही सम्बध रखता है, तुम किसी भी दिन उसके उस अजीज का अहित कर ही सकते हो।'—सुनते ही आयंगर की आँखें मुस्करा उठीं, तपाक से बोला, 'सर, ऐसा संदेह होना नामुमकिन नहीं है। फिर मेरे लिए सुदेशजी के मन में ऐसी बात उठना अत्यंत ही सहज है। लेकिन इसका इलाज?—इसका इलाज तो मेरे पास हो ही क्या सकता है, हकीम लुकमान के पास भी नहीं है।'—और मुस्कराहट की लालिमा उसके गौरवर्ण चेहरे पर दिप उठी। मिस्टर बत्रा ने देखा तो कुछ आहत-सा हो उठा। लेकिन उसका दबंग चेहरा फिर

भी तमतमा उठा तो बिच्छू के डंक-सी मूंछें तना उठीं। पलटकर बोला—'आयंगर, तुम मेरे मातहत हो, पर इससे पहले दोस्त हो मेरे। मैंने अपने दोस्त से मदद के हाथ की ही इच्छा की थी, पर आज तुमने मेरी दोस्ती के बढ़े हुए उस हाथ को झटक दिया है। और अब'........क्षण भर रुककर—'अपने एक मातहत से इस हुकूमत की बुलंदगी के साथ यह कहता हूँ कि आने वाले समय में, कभी भी यदि उस दस्तावेज़ का गलत उपयोग, मेरी बहन के उस अजीज के खिलाफ किया तो हम जैसा बुरा भी तुम्हें इस जिन्दगी में नहीं मिलेगा। तुम यह अच्छी तरह समझ लेना। तुम्हारी ए.सी.आर. इसी कलम के नीचे तड़प-तड़प कर दम तोड़ देगी उसी दिन—और ....और तुम्हारी पदोन्नति के सारे सितारे ही अस्त हो जायेंगे। समझे?'—कहते कहते उल्लू-सी गोल गोल आँखें चमक उठीं—'मैंने तो सिर्फ तुम्हें यही हिदायत देने के लिए बुलाया था, आयंगर!'—आवाज़ उसी बुलंदगी के साथ गूंज उठी।

आयंगर तत्काल अपनी सीट छोड़ खड़ा हो गया। बाअदब सैल्यूट कर, 'पी' कैप धीरे से उठा ली। बैटन बायीं बगल में दबाते मुड़ने ही वाला था कि उसी वक्त बैटर गर्मागर्म कॉफी की 'ट्रे' सजाये उनके सामने आ पहुँचा।

'बैठो आयंगर! लो, हम लोग अब कॉफी लेंगे'—तमतमाया वह चेहरा जैसे फिर सहज हो आया तो उन अधरों पर मुस्कराहट की झाँई-सी छा गई।

आयंगर ने चुपचाप दो कप कॉफी बनायी, और पहला कप साहब के सामने ससम्मान कप बढ़ा दिया, तो दोनों चुपचाप उस गर्म पेय की चुस्कियों में जैसे डूब गये। गहगहाये मौन के उस अंतराल ने दोनों को ही जैसे अपने में लील लिया। कॉफी की अंतिम घूंट लेते ही, उसकी तंद्रा टूटी। उसने साहब की ओर उड़ती हुई नजर से देखा। वे अब भी किसी उधेड़बुन में उलझे हुए, पेय की अंतिम चुस्की लेकर भी, कप अब हाथ में थामे हुए हैं। मुहूर्त भर की प्रतीक्षा के बाद साहस कर आयंगर फिर धीरे से उठ खड़ा हुआ तो वह सजग हो गये—'येस, आयंगर! कीप माई वार्निंग इन माइंड—हूँ, और सब ठीक है न?'
'जी'—संक्षिप्त-सा उत्तर।

'ओ. के'.—बैठे बैठे प्रत्युतर मे मुस्कराहट उन अधरों पर उतर आई। आयंगर बाग्रदब चैम्बर के बाहर आ गया, सीढ़ियाँ उतरी तो सामने ही ड्राइवर ने तन कर सैल्यूट किया। बैठते ही जीप फिर राजमार्ग पर दौड़ने लगी।

'डॉ. लोहिया हॉस्पिटल!'—वे अस्फुट शब्द भी चालक के कानों मे गूंज उठे। जीप ने नया मोड़ लिया, और अपने मन्तव्य की ओर दौड़ चली। आयंगर का वह आकुल अंतर बडी तेजी से उसी ओर दौड़ रहा था। करीब बीस मिनिट बीतते बीतते वे डॉ. लोहिया राजकीय चिकित्सालय की भव्य उस तिमंजिला इमारत के सामने आ पहुंचे। खट् से जीप का दरवाजा खुला, और आयंगर खट खट करते हुए ज्यूरिस्ट के चैम्बर के समीप से गुजरने लगा। देखा-दो सौ आदमियों की वह भीड़ चीख-चीख कर आसमान सिर पर उठाये हुए है। पुलिस वर्दी के वेश में उस रौबीले डील डौल को उधर ही आते देख वह भीड़ और भी भड़क उठी। शोर-गुल तो इतना हो रहा है कि किसी की बात न सुनाई ही देती है, न कुछ समझ ही मे आता है। आयंगर की तेज नजर ने, उस हुजूम से घिरी, आँसू पोंछती उस फटेहाल नारी को देखा जिसके समीप ही तीन मासूम बच्चे, उसी की साड़ी का पल्लू पकड़े हुए रोये जा रहे है। वह नारी देह भी जगह नाखूनों और दाँतों की खरोंचो से क्षत-विक्षत सी पड़ी है।

आयंगर के समीप पहुँचते ही भीड का चिल्लाना क्षणभर के लिए थम गया। लोगों ने तुरंत थोड़ा हटकर उसे राह दे दी तो उस बिसूरती महिला के पास आ पहुँचा।

'क्या बात है, बहन?'—सुनते ही भीड़ में आगे खड़े हुए नेता टाइप व्यक्ति ने झुंझलाहट भरी आवाज में कहा—'बड़े आये है ये हमदर्द कही के अब। एफ. आई. आर. दर्ज कराने से ही इन्कार कर दिया था उस वक्त अपने थाने पर। यहाँ आये तो इस बेचारी का डॉक्टरी मुआयना करने के लिए ज्यूरिस्ट ने इन्कार कर दिया है। हम गरीबों के लिए तो सब जगह अब इन्कार ही इन्कार है। घंटे भर से चीखते-चिल्लाते रहे है, पर इस अंधे प्रशासन की आँखे ही नही उघड़ती दीखतीं, लेकिन"......लेकिन हम तो अब इसे बेनकाब करके ही रहेंगे'- एक और ऊँची उठती आवाज ने चिल्लाकर कहा।

—'ऐसे हरामजादे डाक्टरों को आज इन्हीं कमरों में बंद कर दो, साले अब कोई घर नहीं जाने पाये। गरीब की हाय कितनी बुरी होती है—आज ही इन अंधे खुदगर्जों को पता चला जाएगा। हम भी यहाँ से तब तक हटेंगे ही नहीं, जब तक डॉक्टरी मुआइना नहीं हो जाता'—तनी हुई मुट्ठियों की उस भीड़ के फूले हुए सैंकड़ों गलों की उत्तेजित आवाज से वातावरण कण-कण कम्पायमान हो गया।

स्तब्ध आयंगर का मन पलक झँपते ही सब कुछ समझ गया।—'बलात्कार!'—अन्तर्मन की उस ध्वनि से रोम रोम खड़ा हो गहा। उतावले वेग से दरवाजे पर खड़े, चपरासियों को धकियाते हुए वह पास के चैम्बर में घुस आया। देखते ही पाँचों सीनियर डॉक्टर खड़े हो गये—'आइये, सर!'

'इतना मजमा क्यों जमा करवा रक्खा है, यह?'—बैठते ही प्रश्न गोली की तरह मुँह से छूट पड़ा।

'सर, ऐसा है'—हकलाती आवाज से ज्यूरिस्ट ने कहा—'इस महिला की न एफ.आई.आर. ही अब तक दर्ज हो पाई है, न कोई पुलिस कांस्टेबिल अब तक कोई रिपोर्ट ही लाया है। फिर, सर!'—कहते कहते जबान चुप हो गयी।

'फिर क्या है, डॉक्टर?'—आयंगर की तेज नजर ने तपाक से पूछ लिया।

'सर, बात यह है—थाने से थानाध्यक्ष का फोन आया था'—कहते हुए वह दृष्टि फिर नीची हो गयी।

तभी बाहर फिर भयंकर कोलाहल हो उठा—लोग बाग चिल्ला रहे थे—'ज्यूरिस्ट, हाय! हाय! पुलिस डी. आई. जी, हाय! हाय!—ये सभी चोर हैं! ये सभी हत्यारे हैं।

—इन सबको""""बर्खास्त करो! बर्खास्त करो! बर्खास्त करो।'

—नारों के इस तूफान ने आसमान को हिलाकर रख दिया। 'क्यों डॉक्टर! क्या आया था फोन? साफ क्यों नहीं कहते तुम लोग?'—आयंगर की आवाज़ उत्तेजित हो उठी।

'डॉक्टरी मुआइना के लिए हमें इन्कार किया गया है, सर!'

'ऐसा है?—नहीं, इसी वक्त इस गरीब का पर्चा बनाकर, तुरंत मुआइना

करवाओ। मैं भी यहीं रहूँगा तबतक। रिपोर्ट तैयार हो जाना चाहिये।—और वह तुरंत उठ खड़ा हो गया। बाहर निकल आया, उस महिला के समीप आकर बोला—'बहिन! जाओ अंदर पर्चा बन रहा है, तुम्हारी अभी हाल डॉक्टरी हुई जाती है। मैं स्वयं वह रिपोर्ट लेकर आऊँगा।'—तमतमाती हुई उस आवाज ने भीड़ के उस उत्तेजित आक्रोश के उफान को ठंडा कर दिया। महिला अपने बच्चों को लिये चैम्बर में घुस गयी तो लोगों की वह भीड़ आयंगर के चारों ओर घिर आई। उस नेतानुमा व्यक्ति के कंधे पर, उसने हाथ रखते हुए पूछा—'यह मामला किस वक्त का है?'

'साहब क्या बतायें हम आपको? ये पुलिस वाले भी इतने दरिन्दे निकल जायेंगे इस परजातंतर में, हमें ऐसी उम्मीद कभी नहीं थी।'—मुँह का थूक हलक के नीचे उतारते हुए, फर्श घूरती वह दृष्टि फिर रुक पड़ी—'साहब, जंकशन के थोड़ा आगे जो झुग्गियाँ खड़ी हैं, वहीं रहती है यह कौशल्या। घर वाला तो महीनों पहले मदरास गया हुआ है। अपनी इन मासूम बच्चियों और उस छोटे बच्चे के साथ अकेली रहती है। दिन में पार्क किनारे पटरी पर बैठी, मिट्टी के रंग-बिरंगे खिलौने बेचकर पेट पालती है'—और वह दृष्टि फिर ऊपर उठी, देखा कि खाकी वर्दीधारी वह व्यक्ति बड़े ध्यान से उस बात को सुन रहा है।

तभी दो नर्सें तेज कदमों से उनके समीप से गुजरती चैम्बर की ओर बढ़ गयी।

'तो फिर कल क्या हुआ था, सच सच ही बतलाना सब।'—उसने धीरे से फिर उस व्यक्ति का कंधा थपथपाते हुए कह दिया।

'साहब, इतने सारे लोग जमा हैं, यहाँ। किसी से पूछ देखिये न? यह हकीकत है, साब। झूठ नहीं बोलेंगे हम।'—कहती हुई वह दृष्टि हल्का से तैश में आ गयी।

'मुझे गलत न समझो, मित्र! सारी बात खोलकर कह दो। मैं विश्वास दिलाता हूँ, तुम्हें कि इस बेज़ार बहिन की पूरी मदद की जायगी।'

'जय हो जय हो सुपरडेंट साहब की!'—भीड़ की आवाज उल्लास से गूंज उठी। उसी वक्त वह महिला, अपने बच्चों को साथ लिये उन दो नर्सों सहित चैम्बर से बाहर निकली और वे लोग महिला प्रसूतिवार्ड के लेडी डॉक्टरी के चैम्बर की ओर बढ़ चली। भीड़ को अब पूरा इत्मीनान हो चला कि उनकी आवाज़ कारगर साबित हो रही है।

'तुम तो उन झुग्गियों के वासी नहीं दीखते, मुझे ?'—आयंगर ने मुस्कराते हुए सहज ही पूछ लिया।

'जी साहब। मैं तो नहीं रहता, पर मेरा फ्लैट सड़क पर, ठीक सामने वाली कतार मे ही है। नशे में धुत तीन सिपाही चिल्ला चिल्लाकर धमका जो रहे थे तो आँख खुल पड़ी। उस खंभे की ट्यूबलाइट के प्रकाश में साफ साफ दिखाई दे रहा था, सब।'—बड़े विश्वास के साथ उसने फिर उसको देख लिया।

'सच ?—कितना बजा था, उस वक्त ?'

'दो बजे होंगे, हुजूर। मैं तो दस कदम दूर, पास ही उस झुग्गी में ही रहता हूं। बच्चो के रोने-चीखने की आवाज से उठ बैठा। दो कदम आगे बढ़ा तो एक सिपाही चिल्ला रहा था—'हरामजादी! चोरियाँ करती है, और जब चोरियों का माल बरामद करने आये है, हम पर अब झूठी तोहमद लगा रही है। साली को मार मार कर अधमरा किये देते हैं, अभी!'—तो हुजूर मेरे कानों में गर्म शीशे की तरह यह आवाज उतर गयी। कदम फिर आगे न उठ सके .... और वे दरिन्दे एक एक कर झुग्गी मे घुसते रहे। बाहर खड़ा चौकस, सिपाही कभी कभी बच्चो की थप्पड़ो से मरम्मत करता रहा'—और बेबस उन आँखों में सहसा पानी की तरलाता छा गई।

'हुजूर! इसमें कुछ भी अगर गलत हो तो मेरा सिर उतार लें'—कहते हुए उसने धीरे से धरती पर अपना मत्था टेक दिया। देखते ही आयंगर का अन्तर्मन विचलित हो गया। लज्जा और त्रास का विषैला रसायन द्रव उसके पोर पोर को आहत कर गया। क्षोभ से दाँत भिच से गये, पर निचले होंठ को दबाकर रह गया। सोच और सोच ही सोच.............. सचमुच, आज के इस इन्सान की इन्सानियत कुत्तो और भेड़ियो से भी गई बीती है। वह धीरे से फुसफुसाया, 'मैं समझता हूं—तुम झूठ नही कह रहे, भाई। यह सच इस दुपहरी की तपती धूप की तरह ही सच है।'

'हुजूर! हम गरीबों की आवाज अब सुनता ही कौन है? अब और परजातंतर है, अब कुछ भी करते रहो, पर गरीबों की सुनता है कौन?—वे लोग हमे धमाकाकर गये है, फिर लौटेंगे वे और हर रोज लौटेंगे—तब किसी न किसी झुग्गी को उसी तरह के हाहाकार से न भर देंगे, हुजूर?—भरे भरे बादलो-सी दृष्टि फिर बोल उठी—'बड़ी मुश्किल से बन पायी है ये झुग्गियाँ। अब हम गरीब इन्हे छोड़कर जायें तो जायें कहाँ?

—कहते हैं, तुम्हारे बाप की है जमीन जो झुग्गियाँ खड़ी कर ली हैं तुमने ? जब तब चोरियाँ करते रहते हो, किसी की जेब साफ करते हुए शरम नहीं आती तुम्हें"" ""हम तो कभी-कभी ही आते हैं, तुम्हारे यहाँ। —फिर इतने नाज़-नखरे क्यों ? ऐसे ही इज्जत वाले बनते हो तो सामने वाले आलाशीन फ्लैटों में ही जाकर क्यूं नहीं रहते। साले, ये इन चोरों और उच्चकों की ये औलाद भी कहती हैं कि हमें भी इज्जत की निगाह से देखो।'—वह निराश दृष्टि किसी आहत परिन्दे की मानिन्द फ़र्श पर जा गिरी।

आयंगर उस झुग्गीवासी की अन्तर्व्यथा से स्वयं व्यथित हो उस सूनी सूनी निगाह से अपने चारों ओर खड़ी कभी उस आतंकित भीड़ को देखता तो कभी अपने वक्ष पर चमकते उन तमगों को।

उसी समय दो नर्सों के साथ वह अबला डाक्टरी मुआइना करवाकर उधर ही लौट आई। लोगों की वे निगाहे उस वहशी हवस के शिकार की ओर उठीं।—जगह-जगह पैबंद लगी उस साड़ी का पल्लू पकड़े थे तीनों बच्चे। अब भी पकड़े-पकड़े चल रहे हैं—दु:खी और भय से त्रस्त। अबला के उस मुर्झाये आहत चेहरे और नुचे-चुथे वक्ष पर मली गयी स्पिरिट की गंध अब भी फैल रही है। पलकें लज्जा और भय से दु:खी, करुणा की गंगोत्री-सी अश्रु जल की धार अपने में ही पी रही है।

साथ ही नर्स ने आगे बढ़कर, ज्यूरिस्ट के वे कागजात आयंगर के आगे बढा दिये। उसने उड़ती नज़र मे फिर उस भीड़ भरे मजमे को देखा जो बीच-बीच मे कभी बाबा साहब अम्बेडकर की जय जयकार कर रहा था।

'अजी नेताजी ! सुनो तो—अब अपने किसी साथी के साथी इस बहिन को लेकर, सदर कोतवाली पहुँच जाओ, और रपट आज ही लिखवा दो।'—और उसने अपने बॉलपेन से उस कागज़ पर आदेशात्मक इबारत में कुछ लिख, हस्ताक्षर कर दिये। नेतानुमा उस खद्दरधारी को उसे थमाते हुए फिर पूछा—'पैदल ही जा रहे हो न ?'

'नहीं, कुछ लोगों के पास साइकिलें भी है, इन्हे भी लादकर ले जायेंगे। हम सभी लोग अब वही पहुँच रहे है।'

'नहीं, नही—सभी को जाने की जरूरत नही हैं, अब। केवल आप में से दो ही काफी हैं। रपट लिख ली जायेगी। ऐसा करो—मेरी ही जीप में चले

जाम्रो न ? तब तक मै अपने डॉक्टर मित्र से ही गपशप करता हूँ'—और म्रपने नजदीक खड़े ड्राइवर की ओर देखा तो उसने एड़िया मिलाकर सैल्यूट किया।

इसके बाद वह सारी भीड़ अपने म्राप छँट गयी। म्रायंगर बगल में बैटन दवाये संतोष भरी दृष्टि से उन्हें जाते हुए कुछ क्षण देखता रहा, म्रौर तब तुरंत ही इमरजेंसी वार्ड की ओर मुड़ गया।

मित्रा, मित्रा म्रौर मित्रा!—वह म्रपराजित दृष्टि भी खोयी-खोयी, डॉक्टर म्ररुण मित्रा को हॉस्पिटल के समूचे परिसर में खोजती रही। न जाने वह आज कहाँ चला गया है? म्रायंगर दो बार उसके चैम्बर में भी झाँक म्राया था, पर कोई भी नही मिला। बाहर बैठने वाले कर्मचारी भी म्राज नदारत है। क्या बात है ऐसी? वह तेज कदमों से फिर जरनल वार्ड लौट म्राया। डॉ. चतुर्वेदी के चैम्बर में घुस पड़ा, देखते ही डॉक्टर ने उठकर म्रगवानी की। म्रायंगर ने बैठते ही पूछा—'डॉक्टर मित्रा नही दिखाई दिये?'

'सर।—दृष्टि दीप्ति से चमक उठी' 'अच्छा म्रापको नहीं मालूम?'—म्रौर अपने टेबुल पर रक्खे कांच के गिलास से लिफाफा निकालकर आगे बढ़ा दिया। म्रायंगर ने लिफाफा खोल लिया, देखो—सुनहरी म्रक्षरों में छपा है—म्ररुण म्रौर सरोज का परिणय। शरद पूर्णिमा को संपन्न हो रहा है।—पढ़ते ही नेत्र उल्लसित हो उठे। 'खूब।'—मुस्कराते वे म्रधर आनंद से थरथरा उठे।

'कब मिला था यह निमंत्रण?'

'म्रभी-अभी डाक से आया ही है। मुझसे कहा गया था—बीस रोज की छुट्टी पर जा रहा हूँ। उन छुट्टियों का राज म्राज खुला है, सर! 'हूँ ऽ ऽ ऊँ'—वे म्रधर म्रस्फुट ध्वनि से कँपकँपाये। दृष्टि विवाह के निमंत्रण पत्र पर स्थिर हो गयी।

'यह तो ठीक नहीं हुम्रा, सर,!'—डॉक्टर चतुर्वेदी की घूरती दृष्टि ने म्रायंगर के चेहरे को टोहते हुए कहा।

'डॉक्टर''''''इसी बात की म्राशंका मुझे भी थी। वह म्राज हकीकत बन गयी है—बेचारी कमनसीब वह डेज़ी!'—ठंडी निःश्वास-सी वह नजर भविष्य के म्राकाश में फैल गयी।

'कोई प्रतिक्रिया ?'—आयंगर ने सीधा ही पूछ लिया। 'न न न.........ऐसा कुछ भी नहीं। डेज़ी अभी तक ड्यूटी पर ही होगी, बुलायें उसे ?'—और उसने फोन का चोंगा उठा लिया।

'रहने दो, डॉक्टर। मैं भली-भाँति जानता हूँ उसे—अनिन्द्या है वह। फिर भी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है, आखिर वह भी आदमजात तो है ही ? उस प्रगाढ़ प्रीति का परिणाम ऐसा अंत किस हृदय में हलचल नहीं मचा देगा ? अभी वह अन्तर्मुखी है—प्रशान्त मन भी। एक बात कहूँ'—विषादपूर्ण उस दृष्टि ने कुछ कातरता से चतुर्वेदी की ओर देखा—'आप लोग उसकी पूरी देखभाल कीजियेगा—न जाने कब क्या अनहोनी हो जाये ? कमबख्त यह उम्र ही ऐसी है। लेकिन मैं समझता हूँ कि.........' वह वाणी फुसफुसाकर रह गयी।

'लेकिन क्या, सर ?'

'समय के मरहम की प्रतीक्षा रहेगी ही। जैसे-जैसे वह गुजरेगा—रिसता घाव भरेगा अवश्य—योअर मेडिकल साइंस स्टिल कॉण्ट हैल्प इट'—वह धीरे-से मुस्करा दिया।

'पर, सर ! यह सब अच्छा नहीं हुआ। क्या आप भी इसे सही मानते है ?'—झुंझलाती हुई वह आवाज भर्रा गयी।

'नहीं तो—कदापि नहीं, डॉक्टर ! मेरी हमदर्दी पूरी तरह डेज़ी के साथ है—नारी पहले नारी होती है, बाद में है वह प्रधानमंत्री, नर्स, डॉक्टर, जज या प्रोफेसर। मूल भावना और आकांक्षा तो एक-सी है न ? दुनिया की किसी भी महिला प्रधानमंत्री को कुरेद कर तो देखिये न ? —इस प्रीति की मूल चेतना के साथ किसी तरह का खिलवाड़ मनुष्यता का अपमान है। पता नहीं, डॉक्टर मित्रा ने ऐसा क्यों किया ?'—और वह प्रश्नाकुल दृष्टि डॉक्टर की ओर उठी।

'अपनी—उन दो डॉक्टर बहिनों का विवाह—और क्या ?'

'वह कैसे ?' - तपाक से खुलते हुए होठों ने पूछा।

'पैसा और पैसा ! आज तो हर कार्य पैसे के बल पर होता है न। भर्तृहरि को भूल गये क्या आप—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतिमान गुणज्ञः

स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयंति

—वे आँखें फिर मुस्करा उठीं। 'माई गॉड।' खुली वे पलकें फिर नीचे झुक आयीं। होंठ धीरे से फुसफुसा दिये—'डेजी, माइ पूअर चाइल्ड—सो यू आर डूम्ड!—बड़ा ही करुणाविल अंत है इस नाटक का!.......शायद, इसीलिए वह बार-बार मिलना चाहता था, मुझ से। न मुझे कभी एकान्त मिला, और न इसी तरह, उसे मैं ही मिल सका। कमबख्त यह नौकरी चैन किसे लेने देती है? कितनी बार आया था वह मेरे पास, डॉक्टर! लेकिन मैं अनेक उलझनों में फँसा ही रहा, कोई मदद ही न कर पाया। ऐसी उलझन समझ पाता तो—मुझे पूरा यकीन है कि कोई-न-कोई रास्ता निकल ही आता।.......वैसे यह मुझे भी क्या, सभी को मालूम है कि—कि डेजी से उसे बेहद मोहब्बत है, और मैं समझता हूँ—आज भी है—लेकिन अब कैसे भुला पायेगा उसे वह—कौन जाने?'—हताश वाणी कहती हुई नैराश्य-अंध में खो गयी।

'आपने सही कहा है, सर! मित्रा का संवेदनशील वह भावुक मन कब टूक-टूक हो जाये—कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मित्रा पर दया भी आती है, मुझे। करें क्या—आज का वातावरण और व्यवस्था ही ऐसी है न? इसका विरोध करें तो जियें कैसे, सर?'

'यह दोष तो इसका है न, डॉक्टर।'—तिलमिलाहट के साथ आयंगर तपाक से बोल उठा। उठ खड़ा हुआ, जरा चतुर्वेदी की ओर झुकते हुए फुसफुसा दिया—'उस निरीह प्राणी का ध्यान रखना, डॉक्टर! प्लीज।'—और बिना किसी तरह की औपचारिकता के वह चैम्बर के बाहर निकल आया।

अठारह

तल घर का टेबुल लैम्प, अमावस के उस गहन अंधकार को अकेले ही दूर करने का सफल प्रयत्न कैसे कर सकता है, जो सारे राष्ट्र को आज अपनी गिरफ्त में लिये हुए है। मेरिनड्राइव की उस अर्धचंद्राकार सड़क के

पार ही तो समुद्री ज्वार ठाठें मार रहा है। तलघर के बाहर लाखों नियोन बत्तियाँ अपना दूधिया प्रकाश दूर-दूर तक बहा रही हैं। तटबंध से टकराती लहरें, चट्टानों पर नाच-नाचकर असंख्य बुलबुलों के मोती बिखेर रही है। इस एकान्त अँधेरे का यह नाचघर दर्शक-विहीन और सूना-सूना है। कभी-कभार ही कोई एम्पाला सड़क के ऊपर तेजी से तैरती हुई निकल जाती है।

लेकिन वह तलघर अभी भी जग रहा है। टेबुल लैम्प की मद्धिम रोशनी टेबुल पर रक्खे कुछ कागजों को अधिक प्रकाशित कर रही है। तभी दरवाजे पर अचानक खट्-खट् की ध्वनि हुई। प्रतीक्षारत सभी सतर्क और चौकन्ने हो गये।

'वही हो सकता है, इस वक्त ?'—सभी निगाहें एक दूसरे की ओर संकेत से भर उठीं। खट्-खट्-खट्—ध्वनि फिर हुई तो राय मोशाय से न रहा गया, साहस बटोर कर तपाक से खड़े हो गये। 'वी फेश हिम नाऊ'—द्वार के कपाट धीरे से खुल पड़े तो उल्लास ने अंदर आते हुए धीरे से कहा, 'वन्देमातरम्।'

'आओ दत्ता, तुम्हारा ही इन्तजार था।'

दत्ता ने रायमोशाय के समीप की कुर्सी खींच ली ; और बैठ गया। द्वार फिर मंद ध्वनि के साथ बंद हो गया।

'चंगे हो न ?'—चौधरी के होंठ कुछ मुस्कराते हुए खुल पड़े। 'देख ही रहे हो।'—संक्षिप्त-सा उत्तर। फिर दो क्षण सन्नाटा। 'हाँ, तो कामरेड, देश के इन विपक्षी नेताओं से हम और अधिक क्या आशा रख सकते हैं, मोरारजी पेपर्स उनकी सही तस्वीर पेश करते हैं तो दूसरी ओर पटना की पार्टी को अपने उस उम्मीदवार को जिताने के लिए तीन लाख की सौदेबाजी की पहल की जाती है। बेटे फिर ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों की बातें बघारते थकते ही नहीं। देश किस पर करे भरोसा तब। नेताजी का कोई डॉक्टर दामाद हो, चाहे बेटा व्यापारी हो—दिल और दिमाग का इलाज अमरीका ही जाकर इस तरह करवाते रहेंगे न ?,—कामरेड गुहा ने टेबुल पर रखे अखबारों की ओर संकेत करते हुए पूछा।

'तो ये आई वाले भी किसी से पीछे रहे हैं—अरे इनके तो न केवल मुख्यमंत्री ही, सांसद तक इसीलिए तफरीह के लिये अमरीका और जापान जाते रहे हैं। गरीबों की गाढ़ी कमाई पर ऐश. ऐसे ही किया जाता है,

कामरेड।—जिनके कारनामों के सचित्र मलबम इस तरह अखबारों में प्रायः दिन छपते हैं, चाहे महाराष्ट्र का मंत्री हो, चाहे किसी और प्रदेश का ही।'

'फिर त्यागपत्र माँग लेने से कालिख धुल जाती है, क्या कामरेड गुहा ?'—दत्ता ने बहस में शरीक होते हुए कहा।

वे सभी निगाहें एकसाथ उसी पर आ टिकी। ऊपर से नीचे तक उसे टोह गयीं। अमितगुहा क्षणभर उसकी ओर देखता रहा, पर होंठ कुछ कह न सके। वह क्षण फिर सन्नाटे में डूब गया।

'दत्ता हो सकता है, तुम्हारा यह कहना सही हो। पर, इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम्हारा वह रीडिंग भी सही हो।

''''''और आज जब तुम हमसे फिर आ मिले हो, तो कुछ काम की बातें अब हो ही जानी चाहिये—' कहते हुए रायमोशाय ने साभिप्राय चौधरी और संधू की ओर देख लिया।

'ऐसा है दत्ता, बुरा न मानना—कुछ बातें विश्वस्त सूत्रों से मालूम हुई है—वैसे भी जानते हो, हममें से कोई भी, किसी डी॰ आई जी., सी आई. पी. से डरते वरते नहीं हैं। पर, एक बात—बतलाओ कि वह डी. आई. जी. तुम्हारा दोस्त नही है ?'—गोली-सा प्रहार करता प्रश्न होठों से छूट पड़ा।

दत्ता के ललाट पर परेशानी की दो चार बूंदें झलक पडी। क्षण भर की वह चुप्पी सलघर के दिल पर दहशत-सी छा गयी। दत्ता की मानसिक उथल-पुथल अब तक शांत हो चुकी थीबोला- अभिप्राय राजन एम आयगर से है ?

'अभिप्राय कुछ भी हो, सीधा-सा उत्तर चाहिये हमें!—वह तेज दृष्टि दत्ता के तन-मन को चीर-सी गयी। बिना किसी झुंझलाहट और आवेश के उल्लास ने धीरे से कहा—'कामरेड,—मेरा दोस्त कोई डी. आई. जी नही है, वह तो मेरे लिए मात्र आयंगर ही है। मित्र रहा है मेरा—विश्व-विद्यालय के दिनों से ही हम साथ रहे है। यकीन करो—मेरे लिए वह नितात मित्र है—कोई डी. आई. जी. नही।'—वाणी की निश्छलता स्वयं मुस्करा उठी।

'दत्ता,''''''हम सब समझते है। मूर्ख बनाने का प्रयत्न मत करो अब। सब कुछ अच्छी तरह जान चुके हैं हम। और जब किसी का मित्र सी. बी.

आई. का ऑफिसर हो, कामरेड ! तुम्हीं सोचो—पार्टी उसे कैसे बर्दाश्त कर सकती है ?

जानते हो न—हम सभी के सिरों पर तुम्हारे उस आयंगर की सरकार ने बोली लगा रखी है। और अब...... जब यह साफ हो गया है कि जेल से मुक्ति मे उसी आयंगर का हाथ है, तो ऐसा व्यक्ति हमारे लिए कैसे विश्वस्त हो सकता हैं ? तुम्हारे इस गुलाबी स्वास्थ्य का श्रेय भी उसी सी. आई. जी. को है न। नही है क्या बोलो न ?'—कहते हुए वह अजगर-सी निगाह उसे आतंकित कर उठी।

'यदि आयंगर तुम्हें नहीं बचाता तो तुम्हारी यह देह, कब की उस सीलनभरी मिट्टी में सड़ रही होती न ?'

दत्ता ने सुना तो दृष्टि सहज ही ऊपर उठ गयी। रायमोशाय की वे तेज आँखें आक्रोश से अब भी चमक रही हैं। उल्लास का मन क्षण भर के लिए विचलित हो गया। उसे अपने उन साथियों से ऐसे व्यवहार की आशा ही नहीं थी, जिनके साथ मौत-से भयावह खतरों में अब तक खेलता रहा है। सात वर्षों तक जेल की क्रूर यातनाओं के नर्क में भी किसी कदर जीता रह सका इस उम्मीद में कि जिन्दा बच निकले तो फिर अपने साथियों के साथ, पार्टी के कामों में जी-जान से जुट जायेगा। लेकिन यह पत्ता-अब इस टहनी से टूट कर गिर रहा है, तो फिर गिरने ही दो। कितनी गहरा और भ्रांतिपूर्ण संदेह है, मुखर्जी पर। मुझे इस नयी जिन्दगी को दिलवाने वाले, मेरे अजीज दोस्त पर—महज मित्रता के नाते ही जिसने मेरी इतनी मदद की थी।

आज तो इस सब पर प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है, इन साथियों ने। वह धीरे से फिरड फुसफुसा दिया—'डू यू डाउट माई इन्टेग्रिटी, कामरेड ?'

'इस सबके बाद भी फिर कोई अस्पष्टता रह जाती है क्या, दत्ता ? कि तुम उस पुलिस अफसर के अजीज दोस्त हो। यह तो तुम्हारे अतीत की वे सेवाएँ हैं कि तुम अभी हमारे बीच यहाँ जिन्दा बैठे हो, अन्यथा इस रिवाल्वर की एक ही गोली तुम्हें सदा के लिए सुला ही देती'—गुहा के किंचित रोष भरे शब्द कड़क उठे।

सुनते ही उल्लास की अभी अभी स्वस्थ हुई देह में कँपकँपी छूट गयी, लेकिन तुरंत ही सजग होते हुए बोला—'कामरेड ! यदि यह अपने ही साथी के काम आ सके तो मुझे बेहद खुशी ही होगी। मैं तो निहाल हो जाऊँगा यदि तुम्हारी रिवॉल्वर की गोली से यह विसर्जित हो जाये। तब—उसके साथ तुम्हारे हृदय के वे तमाम अंदेशे खत्म हो जायेंगे, जिन्हें अभी हाल व्यक्त किया है तुमने।

'लेकिन उसके पहले मैं केवल यही जानना चाहता हूँ कि आखिर, वह कौन-सा अपराध मुझसे बन पड़ा है, जिसकी यह सजा है ?

'यह हमसे अब पूछ रहे हो कामरेड ? अपने ही दिल से पूछो न यह ? वह शख्स तुम्ही थे न जिसने '' ...... अब कहलाओ मत' दत्ता ! —चौधरी की वाचा आवेश के झटके के साथ खुल पड़ी। लेकिन उल्लास की उस विनम्र दृष्टि ने पलकें झुकाये ही पूछ लिया—'वह शख्स जिसने क्या ?'

'जिसने पार्टी के उस सदस्य को विमोहित किया। बेचारी वह सुचित्रा सेन तुम जैसे चालबाज को आखिरी वक्त तक नहीं समझ पाई। तुम्हारी ही पिछलग्गू बन जेल स्वेच्छा से ही गयी—बोलो न, हो न तुम्हो उसके हत्यारे ?

'उल्लास, यदि वह चाहती तो सहज ही उस बिल्डिंग के चोर दरवाजे से हम लोगों के साथ निकलकर, भाग सकती थी। पर तुम जैसे निकम्मे व्यक्ति के पीछे वह जिन्दगी भर जेल भुगतती रही '' और, अन्त में हमे उसकी मरी हुई देह ही हाथ लग पाई—बोलो है न यह सब सच ?'—कहते हुए राय मोशाय के होठ थूक से चिपचिपा गये, भौंहें आक्रोश से तन गयी।

अब उल्लास के मन का मोह पूरी तरह से भंग हो गया। कितना गलत अर्थ लगाया है सुचित्रा की गिरफ्तारी का—जिसमें उन तनी हुई रिवॉल्वरों से घिरे-घिरे हम लोगों को छोड़, साथी लोग जान बचाकर भाग छूटे थे। हम लोग न उलझाते उन्हे तो क्या हश्र होता सबका ?—पुलिस सार्जेन्ट और सिपाहियों से जूझते रहे थे न हम। उनके बच निकलने की वह कामयाबी हमारी ही बदौलत नहीं थी क्या ? किसने इन्कार किया था इससे—उस वक्त भी। लेकिन सुचित्रा को उस पुलिस के खूंखार कुत्ते से कौन बचाने आया था, जब तड़ातड़ चांटे उस गरीब पर पड़ रहे थे। और

हमारे ये रिवॉल्वर, जिन पर ऐसा भरोसा और गर्व है हमें—नीचे गिरे-गिरे पैरों तले कुचले जा रहे थे।

अफ़सोस तो यही है कि उस सत्य की साक्षी वह—अब हमारे बीच नहीं रही। कितना अच्छा होता उल्लास कि आज यह सब सुनने के लिए तू भी जिन्दा नहीं होता।

—उसका मन भीतर-ही-भीतर पसीजता गया। इस झूठी लताड़ और अपमान से अन्तःकरण हाहाकार कर उठा।

दो एक क्षण उपरान्त फिर सिर उठाते हुए, उसने गर्दन को धीरे-से झटक दिया। बोला, 'कामरेड! तुम लोग का—उस दिन की स्थिति का यह मूल्यांकन कितना सही है, उसका पता इसी बात से लग जाता है कि आप लोगों से जेल की वे गुप्त मुलाकातें अधिक सही थीं या आप जो इस वक्त कह रहे हैं—वही सत्य है। बहारहाल मुझे कुछ भी नहीं कहना है, क्योंकि तुम सभी की दृष्टि में अपराधी तो मैं ही हूँ—अपराधी हूँ तो सजा भी भुगतूंगा।

और मेरे अजीज साथी जो भी सजा इस वक्त देंगे, वह मैं बिना किसी गिला के स्वीकार करता हूँ'—और वह यातना भरी दृष्टि निर्णय के लिए उनकी ओर उठी।

क्षणभर फिर सन्नाटा छा गया। सब चुप थे। दत्ता के जीवन की निर्णायक घड़ी जो थी। उल्लास ने रायमोशाय की ओर देखा। लगा कि तनाव कुछ कम हो गया। उन भौंहों के बल मिट चले हैं जो अभी तनाव से बलखा रही थी।

'दत्ता!'—सहसा रायमोशाय के चुप्पी भरे वे होंठ हिल पड़े। और दत्ता ने प्रश्न भरी निगाह से उसकी ओर देखा। अपनी पैंट की जेब से अपना रिवॉल्वर निकाल कर, तपाक से मोशाय की ओर बढ़ाते हुए कहा, 'लीजिए, और अपने उस निर्णय को मेरे इस समर्पित रिवॉल्वर से ही कार्यान्वित कीजिये न!'

अमित गुहा ने रिवॉल्वर ले टेबुल पर धीरे से रख दिया। 'डोण्ट बी स्टुपिड, दत्ता! तुम्हारे प्राणों की हमें तब तक जरूरत ही नहीं, जब तक तुम मुखबिर बन हम लोगों के लिए संकट न बन जाओ। हम लोग हत्यारे नहीं

है, कामरेड ! हम लोगों ने भी गहराई से इस बात पर कई बार सोचा है.........जान लेने के लिए तो अभी देश में हजारों दरिन्दे मौजूद हैं, जो हमारी मातृभूमि के रक्त की बूंद बूंद जोकों की तरह चूस रहे हैं।

'फिर तुमतो हमारे साथी रहे हो। इसीलिए इस रात तुम्हें हमारे बीच इस तरह बैठे रहने का अधिकार मिला है, अन्यथा अगर कोई गैर होता तो कभी की गोली मार देते ?

'लेकिन, तुम अपराधी हो अवश्य। एक बात पूछूं ?'

'आपको अधिकार है, एक नहीं—जितना चाहे पूछें। जब अपराधी ही करार दे दिया गया है तो फिर कोई प्रतिवाद क्यों ?'—वह विनम्र वाणी अपने आप फुसफुसायी।

'तो क्या तुमने सुचित्रा के मन में अपने प्रति प्रीतिकर भावनाएँ नहीं भरी ?.........तुम्हें तो उल्टा उसे 'डिस्करेज' करना चाहिये था न ? पर न जान कैसे वह प्रेम का पाठ पढ़ाया कि धीरे-धीरे हमारे दल के लिए उसकी कार्य शक्ति चुकती चली गयी।

'दत्ता ! जानते हो इस तरह तुमने ही हमारे उस सशक्त साथी को अपंग बना दिया था—कि वह रात दिन तुम्हारी छाया की तरह तुम्हारे पीछे लगी रहती थी। क्या इतना जल्दी भूल गये थे उस अहद को कि हम इस पीड़ित और पददलित मनुष्यता को इस क्रूर शोषण और जघन्य अत्याचारों से मुक्त कर के रहेंगे—और हमारे लिए किसी भी व्यक्ति का प्रेम-वेम कोई मूल्य नहीं रखता ?

'मैं पूछता हूँ—भगतसिंह, बिस्मिल और आजाद ने भी ऐसा प्रेम किया था ? बोलो, दो न उत्तर ?—दत्ता, बड़ी गद्दारी की है, तुमने। हमारी मिस सेन को अपने से विचलित किया है—तुमने—और तुमने ही।'

जैसे अकाट्य तर्क से कंठ फूल उठा।

'मोशाय बाबू ! यकीन कीजिये मुझ पर। सुचित्रा इस बलिपथ से कभी विचलित भी हुई क्या ? वे वीभत्स नारकीय यातनाएँ—जितनी उसने सहीं है, उनका स्मरण करते ही कठोर से कठोर दिल भी काँप उठता है।.........और बेचारी जिस बलिपथ पर चल रही थी, अंतिम दम तक चलती-चलती उसी पर खो गयी है। यह एक ज्वलत सत्य है—युग-युगान्तर जिसे झुठला नहीं सकते।

'हो सकता है, मेरे प्रति उसका कोई प्रेमभाव रहा हो—और, यदि रहा भी हो तो मेरा मन उसके लिए अत्यंत उपकृत है। लेकिन विश्वास कीजिये, उस शहीद आत्मा का अपमान मैं हरगिज़ नही करूँगा। मैंने उसे एक शब्द भी ऐसा नही कहा जिसे प्रणय निवेदन कहा जा सकता है मोशाय बाबू ?

'जेल की उस जिन्दगी का सारा रिकार्ड इस बात का मुकम्मल सबूत है'—कहते हुए वह उल्लसित वक्ष गौरव की अनुभूति से भर गया। 'नहीं नहीं दत्ता ! सत्य कुछ और ही है। झुठलाओ मत उसे इस तरह। यह सच है कि उसने अनेक नारकीय यातनाएँ सही हैं, मुखबिर कभी बनी ही नहीं, और इसलिए आज भी हमारा यह दल एक खौफनाक हकीकत बना हुआ है। वह तो बहुत ही सशक्त और जिन्दादिल साथी थी, जिसे इस दुखी और विपन्न मनुष्यता से अगाध प्रेम था। और—इस बात के लिए उस पर हम सभी को गर्व है उल्लास ! लेकिन यह भी उतना ही सच है कि सुचित्रा ने यह सब तो जैसे जेल भोग रहे प्रेमी के लिये ही सहा था। चाहे तुम अभी इस सत्य से भले ही इन्कार कर दो, पर इस निर्भ्रान्ति सत्य को तुम्हारी आत्मा कभी भी अस्वीकार नहीं कर सकती।'—और मोशाय ने विजय गर्व से भरी दृष्टि समीप बैठे साथियों पर डाली।

क्षण भर फिर सन्नाटा छा गया, लेकिन सभी दृष्टियों में जैसे मोशाय के कथन के प्रति सहमति जाग उठी हो। राय मोशाय ने धीरे-से कहा 'उल्लास ! लो, अब हम सबका निर्णय भी सुन लो, क्योंकि अनेक दीगर काम निबटाने हैं हमें। सुनो, यह तो तय है कि मिस सेन की इस फिसलन के अपराधी तुम्ही हो, और—सबसे खतरनाक बात तो यह है कि तुम एक पुलिस अफसर के अजीज हो—जिसने तुम्हारी इतनी मदद की है।

'इसलिए तुम तुरंत ही इसी रास्ते बाहर निकल जाओ। इस संगठन में तुम्हारे लिए अब रत्ती भर भी स्थान नही है, समझे ?

'और सावधान ! कभी भी किसी से हम लोगों का जिक्र भर किया तो जिन्दगी धूल में मिली समझो।'

'जैसी आज्ञा !' उल्लास का अपराजित मन तपाक से उठ खडा हुआ, द्वार खोलते ही मुड़कर धीरे-से कह उठा—'अच्छा, वन्दे मातरम् !'

वह वाणी क्षण भर दिलों में गूंजकर ग्रस्त हो गयी। लेकिन कोई प्रतिध्वनि नहीं हुई। शेष रहा तो केवल सन्नाटा और सन्नाटा ही।

उन्नीस

आदमकद शीशे में गाउन पहने किसी गौराङ्गना की समूची देह स्तब्ध सी झांक रही है। देख रही है एक धार – अपनी ही देह को। बायें हाथ का ड्रीम फ्लावर के पाउडर का डिब्बा न जाने कितनी देर से इस देह पर अपनी मदहोश कर देने वाली सुगंध छिड़कता रहा है तभी तो इस आत्ममुग्धा दृष्टि के तले ही बिखरे हुए पाउडर का एक वृत्ताकार नन्हा ताल-सा बन गया है।

लेकिन वह तन और मन इस सबसे बेखबर और बेसुध सा है। ड्रेसिंग टेबुल के दाहिने कोने पर, किसी परिणयोत्सव के निमंत्रण का लिफाफा अब भी यथावत् रखा हुआ है।

'आखिर ..... मुझ में ऐसी क्या कमी है!'— एक सर्द आह फुसफुसाती उस शृंगार कक्ष के कण-कण को छूकर आर्द्र कर गयी। उसने फिर घूरती दृष्टि से शीशे में अंकित उस आदमकद अपनी ही रूप छाया को देखा तो मन फिर बौरा गया।– यह तो वही देह है न, जो मेडिकोज के इस संसार की अब तक बेताज मलका रही है। न जाने कितने डॉक्टर – कितने पी. एम. ओ. और कॉलेज के प्राचार्य और विभाग के निदेशक और भी न जाने कितनों की वे स्पर्शकातर याचक दृष्टियाँ, मंत्रबिद्ध-सी, इसे देखती रही हैं।

—और आज ?—इसी देह की यह रुपहली छाया कितनी तुच्छ मिट्टी बनकर रह गयी ..... क्या यह सच नहीं है? क्या यही है वह सच— डेजी ... ... मेरे प्राण! बोलो न क्या यही सच है?—और वह उन्मत्ता-सी कुछ पीछे हटी, झूमती हुई, हाथ के उस ड्रीमफ्लावर के डिब्बे को शक्तिभर शीशे पर दे मारा तो काँच की किरच किरच फर्श पर बिखर पड़ी .... " और सारी प्रतिच्छायित सौन्दर्य छवि देखते ही देखते विलुप्त हो गयी। तभी अन्दर से आवाज ठठाकर अट्टहास कर उठी—तो फिर गूंज उठा – क्या यही सच है? और अनायास ही आँसुओं की गर्म गर्म वे कुछ बूंद, उन आहत बरौनियों से छलछला पड़ी तो आवेशित वह वक्ष भी भीग गया। पानी में तिरती वे पुतलियाँ अंधकार में दब गयी।

लेकिन रूप की उस अंधी कामना ने फिर एक जोरदार ठहाका लगाया —'बोलो न ?'—रोते हुए वे अधर यकायक फिर खिलखिलाकर हँस पड़े।

न जाने क्यों तभी दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी, लेकिन वह ध्वनि उस उन्माद के ज्वार ने सुनी ही कहाँ ? पगलाई-सी आवाज सिसकते-सिसकते फिर चिल्ला उठी 'क्या यही सच है ?'

पर, कोई उत्तर ही नहीं। द्वार पर थपथपाहट की ध्वनि अनुत्तरित-सी फिर गूँज उठी—इस उन्मत्त उफान में शीतल जल के छींटे की तरह।

'कौऽऽऽन ?'—सहमते मन ने धीरे से जाकर द्वार खोल दिया, देखा —ऋतुम्भरा और फूलजहाँ भौंचक-सी उसे ताक रही हैं।

'रितु..........! तुम ?'—वह लपक कर उससे लिपट गयी तो रुदन-सरोवर का बाँध तत्क्षण टूट गया। ऋतुम्भरा ने उस बिसूरती वेदना को अपनी स्नेहिल बाँहों में भर, बड़े प्यार से चूम लिया।

'क्यों रोती हो—पगली कहीं की ? स्नेह के अधरों से दुलार भरी झिड़की अनायास निकल गयी। समीप ही खड़ी फूलजहाँ ने अपने खद्दर के रूमाल से वे छलछलातीं आँखें धीरे से पोंछ दीं। देखा—उस शृंगार कक्ष में चारों ओर पाउडर के असंख्य कण व कांच की किरचें बिखर रही है।

'आओ, हम बैठक ही में बैठें'—ऋतु ने बाँहों के बंधन को कुछ शिथिल करते हुए कहा, और वे तीनों बैठक में घुस आईं। सोफे पर उसे बड़े स्नेह से बीच में बैठा दिया तो उसके दोनो ओर वे भी बैठ गयीं।

कुछ क्षण मौन हो वे एक दूसरे के मन को थाहते रहे। ऋतु ने चुप्पी तोड़ते हुए धीरे से कहा—'चलो, आज इस मन का सारा अमर्ष आँसू बनकर बह गया है—और उस सुन्दर कल्पना का वह आदमकद शीशा भी—जिसमें वर्षों से वह कामना की छवि कैद थी, आज किरच किरच हो बिखर ही गया। मेरी इस प्राणप्रिय सखी को अब कोई बरगला तो नहीं सकेगा—यह सब एक तरह से अच्छा ही हुआ'—कहते कहते उसने फिर अपनी सुकोमल बाँहों मे उसे भर लिया तो दो एक मीठे चुम्बनों ने उसे चूम लिया। समीप ही बैठी फूलजहाँ ने भी महसूस किया कि अब डेजी फिर उस बीमार संवेदन से उबर रही है। उसके अधरों पर फिर हल्की सी मीठी मुस्कराहट थिरक रही है—तो दोनो ने संतोष की साँस ली।

लेकिन क्षण भर का मौन फिर बैठक के अंतराल में छा गया। 'बहुत देर से आईं तुम लोग?' नीची निगाह ने फर्श टटोलते हुए फुसफुसाया दिया। रितु ने उसका मुँह दोनों हथेलियों में लेते हुए तुरंत कह दिया—'देर से न आते तो जनाब का ऐसा शृंगार कब पूरा हो पाता—जिसने झूम झूमकर तुम्हें इतना मतवाला बना दिया था?'

सुनते ही एक साथ वे तीनों ही खिलखिला पड़ीं। 'अधिक प्रतीक्षा तो नहीं करनी पड़ी तुम्हें?'—कपोल चूमते हुए ऋतु ने फिर चुटकी ली।

'यदि तुम लोग जल्दी ही आ जातीं तो'..........फुसफुसाती वह वाणी फिर चुप हो गयी।

'तो शायद'..........संभ्रम का यह दर्पण फिर नहीं टूट पाता, क्यों, डेज़ी डीयर? मेरी प्यारी सहेली के मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह अच्छा ही हुआ कि हमें कुछ विलम्ब हो गया। और वह सच तो मेरी डेज़ी ही नहीं, बल्कि अब कौन नहीं जानता है कि अरुण भैया की जिन्दगी के उस मनोरम स्वप्नलोक की मलिका कौन है।

'यही तो सच है—वह सच जिसे तुम्हारी अन्तर्ध्वनि बार-बार पूछ रही थी, डेज़ी डीयर!'

'है न यही सच?'—और उसने फिर उन सुन्दर कपोलों को हथेलियों में थामे चूम लिया। मन का स्वास्थ्य अब पूरी तरह लौट आया तो डेज़ी के होंठ भी मुस्करा उठे। बड़े ही आश्वस्त भाव से बोली—'अब?'

'अब क्या? हमें तो तैयार होकर चलना ही है। हमारी प्रतीक्षा और किसी को हो न हो, भैया की निगाह बड़ी बेताबी से इन्तजार कर रही होगी न?'—तुम तो जानती ही हो न कि वरघोड़ी का निकास बिना अपने वहाँ पहुँचे हो ही नहीं सकता। वह खुद ही अपने मन की इस मलिका को मनाने आ रहे थे, पर हमारी प्रार्थना पर ही वहीं रुके रहे।.......प्रेम भी कोई मर्यादा कभी मानता है? लेकिन, डेज़ी डीयर! उनके जीवन-संचालन की डोर पूरी तरह तुम्हारे ही हाथ में है। 'कर्त्तव्य' और 'प्रेम' का यह मधुर परिणय केवल स्वप्न ही नहीं, अपितु ज्वलंत सत्य भी है, और मेरी इस प्यारी डेज़ी को घोर स्वार्थी इस संसार को अब यही बता देना है।

'क्या तुम भी मेरी इस अन्तर्व्यथा की कथा से सुपरिचित नहीं हो, बोलो न ?'—उसके दाहिने कपोल को प्यार से थपथपाते ऋतु के वे स्नेह सने शब्द थिरक उठे। डेजी की दृष्टि तुरंत उसके चेहरे को चूम उठी, बाँहों में भरते हुए धीरे से कह उठी—'मेरी रितु ! तुम्हारी अन्तर्वेदना का संसार तो लगता है जैसे मेरा ही अन्तर्लोक हो वह। कैसा संयोग है यह कि मैं अपनी ही आत्मरूपा सहेली को इसी क्रूर और स्वार्थी संसार ही में पा सकी हूँ ! ······ तुम्हें देखकर ही मेरी आशाओं के ये डूबते मस्तूल, जीवन के इस जहाज को, दु:ख के ऐसे भीषण झंझावात में भी सतरित करते रहे हैं।

'लेकिन, मैं तुम्हारी समता कैसे कर सकती हूँ, रितुरानी ?—तुमने जो अब तक जिया है, उस जिन्दगी का स्वप्न भी मेरे लिए बहुत डरावना है। जीवन के इस नर्क की जलती हुई आग से गुजरी हो न तुम—इसीलिए कुंदन बन पाई हो, बहिन !

'पर आज, मेरी भी एक छोटी-सी प्रार्थना है तुमसे, बड़ी हो न मुझसे —इसीलिए कि जब भी मेरे पैर, जिन्दगी की इस कठोर डगर पर लड़खड़ायें तो इन्हें भी थाम अवश्य लेना। थामोगी न ?—और अपने वक्ष से उसे चिपकाते हुए कह उठी—'अब मैं पूरी तरह से—तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ, बहिन ! उठो, हमें देर न हो जायेगी ?'

- और वे तीनों तुरंत उठ खड़ी हो गयीं।

बीस

'हमारा बीत रहा दिनमान !' - किसी कवि श्री की पंक्ति गुनगुनाते, थकेहारे कदमों ने मुँह झांपती अंधेरी गलियों को पार कर लिया तो वे फिर सदर रास्ते पर चल निकले। देवता होना गौरव की वस्तु हो सकता है, पर मनुष्य हो पाना भी आज कितना दुष्कर हो गया है कि उसकी छाया छू पाना भी मुश्किल है। स्वार्थ से अंधी आँख, अपने ही लाभ के सपनों को आँजे आज कितना इतरा रही हैं—जैसे इस युग की सबसे बड़ी विशेषता ही यही हो।

और उल्लास इसीलिए अपने ही हमराहियों द्वारा दल से दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया गया। पता नहीं क्या राज है इस मन का ?– और वह मन ही मन अकुला उठा—मैंने किया था सुमित्रा को पथभ्रष्ट ? बेचारी, हतभागी वह लड़की कितनी जहीन और धुन की धनी थी। अवसर मिलता तो आज अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में वह भी एक महत्वपूर्ण हस्ती होती न !

उस जज के जीवन की इकलौती सम्पदा, इस तरह मातृभूमि की धूल में बिखर कर सदा के लिए खो गयी।—एक सर्द आह के साथ वे आँखें सजला गयी। उसने फिर सिर ऊपर उठाया, देखा कि चन्द्रमा आसमान पर चढ़ते हुए, उस ऊँचे पर्वत की चोटी को भी लांघ गया है। उस विशाल चन्द्रसरोवर झील के स्वच्छ जल में अब झाँककर इठला रहा है, और लहर-लहर उसकी रुपहली छवि को प्रतिबिम्बित कर रही है। उसका मन—उस सुदूर जल विस्तार पर भावरियाँ लेती उन असंख्य रूपहली किरणों की क्रीड़ा को देखने में इतना तल्लीन हो गया कि कुछ क्षण वह कचोटता अतीत विस्मृत हो गया। मन फिर सहज हो आया। तन और मन दोनों से थकाहारा है वह। गयी रात कितनी दौड़भाग करनी पड़ी थी उसे। आयगर का वह गहरा स्नेह और डॉ. मित्रा की उस अयाचित चिकित्सा-सेवा का कायल जो रहा है वह। सच्चे साथी है वे।

फिर भी कैसा मजमा लगा था कल। कितना वैभव है लोगों के पास रूप और शृंगारित हाव-भावों की तो जैसे हाट ही लग गयी थी। और उस पर आर्मी के बैण्ड की वह सुमधुर धुन लोगों के दिल और दिमाग को कल्पना के पंख देकर परवाज़ बना रही थी – हर निगाह रोशनी से रोशन थी। और ऐसे राग-रस रंग में डूबा वह क्षण लगता था कि फिर कभी होश में नहीं आ पायेगा · पानी की तरह बहा है पैसा · ·· सिर्फ चंद लम्हों के इस जश्न के लिए। गा-बजाकर काठ में पाँव देने में कितना सुख है, यह कल रात ही देखा था।

लेकिन वह रंग-विरंगी फुलझड़ियों वाली चमकीली आतिशबाजी उस क्षण के आसमान को चमका अब पूरी तरह बुझ चुकी है। बेचारे मित्रा का मन तो उस क्षण भी बेचैन और बुझा बुझा-सा था। प्रदेश के वे भूतपूर्व मनोज्ञ मुख्य मंत्री तो उसे देखते ही भाँप गये थे।—और यही सोचते वे थके हारे कदम, झील के किनारे लगी सीमेंट की बैंच के समीप आ

पहुँचे तो स्वतः रुक पड़े। दृष्टि फिर झील के लहराते पानी से अठखेलियाँ करते चाँद को कुछ पल अपलक निहारती रही। अब लगा कि अंदर की उद्वेलित भावना लहराते पानी और आकाश से झरती चारुचंद्र की चाँदनी से शीतल हो रही है।

'अब ?'—उसे तभी ऋतुम्भरा का खयाल हो आया। जेल की वे काल कोठरियाँ और लोहिया हॉस्पिटल के उन उदास उदास कमरों से निकले हुए कितना अर्सा हो गया है। यह सब आयंगर और डॉ. मित्रा की ही कृपा थी कि उससे भी फिर इस तरह मिलना हो गया।

लेकिन वह नर्स ?—ऊपर से कितनी चुहलभरी लग रही थी कल। कितनी सेवा की थी हम लोगों की कि काल के गाल से फिर निकल ही आये हैं। कल तो ऐसा लगा जैसे वह रितु की सगी सहेली ही हो—उसी की छाया की तरह इधर उधर जो नाच रही थी। अच्छा ही रहा, उस अकेले प्राणी को भी ऐसा निष्ठावान और सेवाभावी प्राणी मिल गया। आपत्तियों के अखरोट के फूटने पर ही तो मीठी गिरी मिलती है हमें।

और तभी सड़क किनारे दूर-दूर खड़े ऊंघते-से खम्भों की उजली आँखों-सी ट्यूब लाइटें फक् से जल उठी तो लगा जैसे उसका अंतरतम भी अब उजला गया है। सोचने लगा—अपने इस प्रदेश के विकास के लिए जो पूरे अठारह वर्षों से इस तरह जूझता रहा है, यही नहीं—इसे आधुनिक और प्रगतिशील बनाने मे इतनी सूझ-बूझ से जिसने काम किया है, प्रदेश के ऐसे निर्माता को भी इस अंधी गांधारी राजनीति ने किस तरह अपने परिवेश से ही काट कर रख दिया है। मैं तो इतने नजदीक से कल ही देख पाया था उन्हें। दल गत ओछी राजनीति की बात और ही है, लेकिन वह आदमी अब भी अपने उसूलों को शान से जी रहा है। आखिर राज्यसत्ता ही तो सब कुछ नहीं है कि अपने-अपने राजकुमारों को इसे हथियाने में ही लगा दिया जाये।

जब आज यह राजनीति एक खानदानी व्यवसाय ही बन चुकी है तो फिर कोई शेख साहब ही इसमें पीछे क्यों रहने लगे। पुत्र न सही, सगे सम्बन्धी ही सही, वे भी न हों तो मित्र मंडली के सदस्यों की कमी कहाँ है—इस राजनीति की चक्की के पाट इसी तरह एक दूसरे को बड़े प्रेम से चाटते हुए, जनसाधारण को पके बाजरे की तरह आज पीस रहे हैं। किसी सिरफिरे शहज़ादे के कहने मात्र से अपनी ही पार्टी के ऐसे सुयोग्य साथी को भी इस

परिवेश से काटकर अलहदा कर दिया। जो लोग अपना कंधा देकर ऐसे शहजादों को सत्ता की पालकी में नहीं चढ़ायेंगे, उन्हे अब कौन बर्दाश्त कर सकता है ?— शहजादे सत्ता के जन्मजात अधिकारी जो हैं।

..........और सत्ता सदैव स्वार्थ से अंधी ही होती है, नहीं तो ये सल्तनतें बदलती ही क्यों ? किसी की भी प्रभुता को कोई सदैव के लिए कैसे सहन कर सकता है ? जनतापार्टी का शासन भी इसी चपेट में धराशायी हो गया—बड़े-बड़े राजनेताओं के बावजूद भी। गांधी और सुभाष का युग और ही था। जिनके त्याग और बलिदानों को मेरा यह भूखा-नंगा देश भी अपनी कृतज्ञता के कारण कभी भूल ही नहीं सकता—दत्ता !—चाहे हमारे ये उग्रवादी साथी आज इनकी स्थापित मूर्तियों के कितने ही सिर क्यों न उड़ाते फिरें।

उनकी प्राण-प्रतिष्ठा तो हमारे दिलों में जो हुई है तो वह मिट ही नहीं सकती। अमिट है वह।—और इस विचार वेग से वह तुरंत फिर खड़ा हुआ। दूरदूर तक चपल किरण-जाल बिछाये चंद्रमा न जाने किस आशा में आसमान पर अब भी मुस्करा रहा है। उसके रुपहले जाल में फँसी लहराती मछलियों-सी ढीठ लहरें अब भी उछल-कूद कर रही हैं। दो डग आगे बढ़ा ही था कि सामने की दूरियों पर दौड़ती दृष्टि ने देखा कि साइकिल पर चढ़े कोई उधर ही आ रहा है - शायद आ रहे है। मन क्षण भर ठिठक गया तो कदम भी रुक पड़े। साइकिल जैसे अपनी ही मस्ती मे झूमती धीरे धीरे दौड़ती चली आ रही है। कुछेक पलों की वह प्रतीक्षा, जिज्ञासा की कन्दील थामे, अगवानी के लिए खड़ी-खड़ी अब भी एकधार देख रही है।

साइकिल पास से गुजरी तो चाँदनी के उजास मे वह अंतरंग परिचय मिठास घोलते चंहक उठा— 'उल्लास !'

'कौन रितू ?'—और साइकिल एक ओर तुरंत स्टेण्ड पर खड़ी हो गयी।

—यह मेरी प्रिय सहेली फूलजहाँ है—उन-क्रूर जेल यातनाओं का अमृतफल है यह दत्ता ! आओ न, कुछ देर हम भी बैठ लें।'

और वे तीनों फिर उसी बैंच पर आ जमे।

'ओ भई !'—अपने वेनिटी बेग से कुछ टॉफियाँ निकालकर देते हुए उसने बड़े भोलेपन से कहा, 'कल के उस जश्न में बाल-गोपालों में बँटती-बँटती इतनी-सी बच रही हैं।'

'हूँ ऽऽऊँ ! हम भी तुम लोगों के लिए तो बालगोपाल ही है न, रितु ! ये टॉफियाँ हमारा मन इस तरह नही बहला सकेंगी, समझी ?'—वे तीनो खिलखिलाकरहँस पडे।

'अच्छा न सही, बड़े गोपाल जी ....हाँ, लेकिन कल ही शायद आयंगरदा आपके लिए कुछ कह रहे थे ......सच है न वह ?'

'सोलह आने सच। तुम लोग यदि इसी तरह मुझे अपने साथियों की नजरों से गिराती रही तो बंदा एक न एक दिन मिट्टी मे मिलकर ही रहेगा।'—वह उदास दृष्टि ऋतु के स्वस्थ और सुन्दर चेहरे से ही जैसे पूछ बैठी।

'हाय राम ! किसने कह दिया यह आपको ? हम लोगों ने कभी गिराया है आपको ? यह सब सफेद झूठ है, दत्ता ! ....और ऐसा कहना हमारे प्रति सरासर अत्याचार है'—वह दप्तवाणी आवेश में आगयी। दत्ता ने सुना तो अंदर ही अंदर कांप उठा। धीरे से बोला—'सुचित्रा की मौत का अर्थ लोगों ने यही तो निकाला है। अब तुम्ही बताओ न, रितु कि मैं इसमें कहाँ तक गुनहगार हूँ ?'—प्रश्नाकुल दृष्टि फिर उसकी ओर ताकते लगी। क्षण भर का मौन उनके बीच तैर गया, पर चाँदनी में लहराती वे लहरें क्षण भर भी रुकी नही। चारों तरफ सफेद-सफेद चमकीला उजास उल्लसित हो, दूर-दूर तक फैल रहा है।

'मेरी आशंका सच ही निकली'—ऋता ने पलकें झुकाये ही कह दिया। 'उसका इतना अधिक झुकाव ही पार्टी के साथियों के मन मे भ्रम पैदा करने के लिए पर्याप्त है।'

'..........लेकिन, मैं जानती हूँ कि इसमें तुम्हारा तो कोई दोष ही नहीं। तुम जैसे हरदिल अजीज़ इन्सान के लिए कभी कभी ऐसे हालात बन ही जाते है। अब तो बीती बातों को भूल जाने मे ही लाभ है। उस अतीत का मलवा हम कहाँ तक ढोयेंगे उल्लास ? जिन्दगी दूभर न हो जायेगी ? अब हमें नये सिरे से अपने काम में जुट जाना है, समय और स्थितियाँ आज तेज़ी से बदल रही हैं। सिद्धान्तों की बातें तो बड़ी-बड़ी होती है, पर पक्ष

और विपक्ष— सभी की निगाहें सत्ता के तख्तेताऊस पर ही गड़ी हुई हैं, मौका मिलते ही उचक कर बैठ जायेंगे। राजनीति के क्षेत्र में न कोई धर्मराज है, न कोई धृतराष्ट्र ही। 'नरो वा कुंजरो वा' का अंधापन कहाँ नहीं है। मनुष्य बूढा होता है, पर मन बूढ़ा कभी होता ही नहीं। इसीलिए सी. आई. ए. के एजेन्ट होने के इल्जाम उस पर कितने ही लगते रहें, पर सत्ता के भोग की इस भूख को वह कैसे अनबुझा छोड़ देना चाहेगा, दत्ता ?

और ·······यह तो नजर अपनी-अपनी ही है कि पाकिस्तान की तरह, एक बड़ी कील खालिस्तान बनकर, अपनी ही मातृ-भूमि की दुखती छाती पर और ठुक जावे। उसके तो राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तक नामजद हो चुके हैं तो बी. बी. सी. का टेलिविजन बड़े शान से उनके चित्र प्रदर्शित करता है। यही नहीं उनके ऐसे भाषण भी करवाते हैं कि ब्ल्यू स्टार ऑपरेशन करवाने वाले प्रधानमंत्री के समूचे परिवार की हत्या करने की प्रेरणा किन्ही हत्यारों को मिल सके।

. और यह सब उस तथाकथित वाणी और व्यक्ति स्वातन्त्र्य के नाम पर किया जा रहा है, दत्ता ? यह अंधी राजनीति की गांधारी कमाल की सूझ-बूझ वाली है यही नही वह सुदूर भविष्य तक की व्यवस्था का रूप अपनी अंधी आँखों से देख लेना चाहती है।

'लेकिन, वास्तव में यह अंधी नही है। केवल इस गांधारी ने भी अपनी आँखो पर पट्टी भर बाँध रखी है—न्याय की देवी के बुत की तरह। पति जो ठहरा अंधा — विलासवती सत्ता को अंधा है वह। जैसे जनक-जननी, वैसी ही न है ये उसकी सत्तालोलुप संतानें ?

'मैं कहती हूँ दत्ता ! कि सत्तान्ध स्वार्थ का वह मोहाविष्ट धृतराष्ट्र और उसकी सुन्दर भार्या-राजसत्ता की यह गांधारी जहाँ होंगे वहाँ महाभारत कैसे नहीं होगा, उल्लास ?—किसी भी विश्वयुद्ध की अनिवार्य शर्त यही तो है, है न ?'—और उस सुरम्य, शीतल वातावरण मे भी विचारोत्तेजन की गर्माहट आ गई। उल्लास मन ही मन सब कुछ गुनता रहा। ऋतु की तेज-तर्रार मानसिकता का परिचय तो वह कई बार पहले ही पा चुका था। आज फिर लगा कि अपने उस क्रूर अतीत को जीने-झेलने के बाद भी वह अब भी वैसी की वैसी ही है, तो मन संतोष से भर उठा।

'रितु ! जहीन तो तुम हो ही, पर उतनी ही जीवट वाली भी हो। यदि तुम्हारी प्रिय सखी सुचित्रा भी आज जिन्दा होती तो सोने में सुहागा मिल जाता। उसे खोकर जो पीड़ा हो रही है, उसे केवल बर्दाश्त करने के सिवाय कोई चारा ही नहीं।'

'लेकिन, अब यह तो बताओ न कि आप लोगों का आगे का कार्यक्रम क्या है। वही आतंक और अनिश्चय से भरी-भरी गतिविधियाँ या और कुछ नया भी ?'

'यह तुम हमें पूछ रहे हो ? तुम अपने से ही पूछ कर देखो न ? अब तो आयंगर दा भी इस दिशा में कुछ अधिक ही सक्रिय हो रहे हैं। भैया मित्रा तो इसीलिए सरकारी नौकरी छोड़ खुद का नर्सिंग होम खोल रहे हैं। पत्नी गाइनिकोलॉजिस्ट है, खुद अच्छे फिजिशियन और सर्जन हैं ही- हृदय रोग के विख्यात विशेषज्ञ भी।'

'हूं, तो अच्छा खासा पैसा कमाने की चिन्ता लग गयी है अरुण को ?' —हल्का सा व्यंग्य उस वाणी में ध्वनित हो उठा।

'छिः कैसी बातें करते हो, उल्लास ! अरुण भैया इतने गिरे हुए कदापि नहीं हैं कि अपने ही बीबी-बच्चों के लिए इस तरह मुद्राराक्षस बन जायें। वह सरकारी नौकरी उस स्वाधीन-चेता जनसेवी चिकित्सक को किस तरह जीने दे सकती है, यह तो वे ही अच्छी तरह जान सकते हैं जिनकी पगतलियों में ऐसी बिवाइयाँ फट रही हैं। देखा नहीं—पत्नी द्वारा गला घोट कर मारे गये उस आनंद की शव परीक्षा पर डॉक्टरों की रिपोर्ट कितनी भिन्न-भिन्न है ? राजनेताओं का प्रभाव और चाँदी के जूतों का चलना आज तो आम बात है। चंद दिनों में ही दोनों बहिनों का विवाह भी हो ही रहा है। फिर तो अरुण भैया सदैव हमारे ही साथ रहेंगे न ?—सगर्व दृष्टि मुस्करा उठी।

'ठीक ! तब बड़ी अच्छी शुरुआत है यह। और अपने आयंगर दा उसी महकमे से चिपटे रहेंगे क्या ?'—उस मन की जिज्ञासा हिचकिचाती-सी जाग उठी।

'नहीं उल्लास, अब दा को उससे कोई मोह नहीं रहा। आई. जी. बत्रा की उस शेखी भरी लताड़ ने पूरी तरह मोह भंग कर दिया है उनका। रही सही इच्छा उस रासायनिक और शुद्ध वनस्पति प्राइवेट लिमिटेड के चर्बी

काण्ड की उनकी खोज पूर्ण रिपोर्ट पर सरकार की उस अनमनी प्रतिक्रिया ने समाप्त कर दी है।

"...." निष्ठापूर्वक किये गये कर्त्तव्य-पालन का फल भी यदि उपेक्षा भाव ही हो तो मन किसका नहीं बुझ जायेगा ? वे भी अब कभी भी ऐसे दलदल से अलग हो सकते हैं। माना कि ऐसे दलदल को चदन समझ, आकठ उसी में लिप्त रहने वालो की संख्या भी लाखों में है, पर हमारे आयगर दा उन लाखो मे भी एक ही है, जो इतने सत्यनिष्ठ और साहसी है।'

'सच है, रितु ! यह सब सच ही है। यदि ऐसा न होता तो हम लोग अब तक उस जेल की काल-कोठरियो में ही दम न तोड़ देते ? सर्वोच्च न्यायालय में याचिका उन्ही के प्रवल प्रयत्नो का प्रतिफल रहा है, और इस देश के हजारो 'अण्डर ट्रायल्स' इस तरह आज जेल के उन सींखचों से बाहर आ सके है।

'सच मानो—नहीं तो एक अदने पत्रकार की बिसात ही क्या है ? सत्य पर से प्रयत्नपूर्वक पर्दा उठाने मे जोखिम है, वह उस पर्दा उठाने वाले को भी पसीना-पसीना कर ही देती है।

'लेकिन रितु, सुचित्रा तो · इसके पहले ही हाथ से निकल चुकी थी। आयंगर दा कितना चाहते थे कि वह बहुमूल्य प्राण बच जाते। कितना मलाल है उनके मन मे कि वे भरसक प्रयत्न करके भी उसे नही बचा पाये !' और वह उदास-उदास दृष्टि, अपनी ही पलको की छाँह तले मौन हो गयी। ऋता के वक्ष ने उभरते हुए एक सर्द साँस छोड़ी। उसे सहसा फिर लगा कि उल्लास के मन में सुचित्रा सेन के प्रति कितना गहरा अनुराग अब भी सिंचित है। उभरती हुई निश्वास को अदर ही अंदर पीते हुए धीरे से बोल उठी, 'उस साथी की ऐसी दर्दनाक मौत के लिए किसको गम नही होगा, उल्लास ? ऐसी भीषण नारकीय यंत्राणाओ से तो अच्छा होता कि उस रोज मुठभेड मे गोलियों बौछार ही में मारी जाती। हमारे देश की ये जेले कितनी वीभत्स और अमानवीय है आज भी—उस दिलेर साथी की यह मौत इस बात की जिन्दा मिसाल है। काश कि दा को कुछ दिन पहले ही उसके विषय मे यह सब मालूम हो जाता !'—कहते-कहते फिर एक ठंडी आह मुँह से अनायास निकल गयी। समीप ही सटकर बैठे उल्लास की आँखें भी सजल हो गयीं तो चाँदनी के शुभ्रप्रकाश मे चमक उठी।

कुछ पल वे तीनों ही मूर्तियों की तरह मौन बैठे रहे। तभी उल्लास ने मौन तोड़ते हुए कहा—'ऋतु ! हम जो बच रहे हैं, वे भी यदि अब मनोयोग-पूर्वक जनसेवा और जागरण में लग जायें तो अब भी बहुत कुछ किया जा सकता है' और साभिप्राय उसकी ओर देख लिया।—'मैंने भी तय कर लिया है कि उनसे अवश्य मिल लिया जाय। वैसे वे हम लोगों को जानते भली-भाँति हैं—एकाध घंटे की बातचीत से ही पता लग गया था सब। हमारे साथी अब तक क्या-क्या करते रहे हैं प्रत्येक हलचल से पूरा वाकिफ हैं वे !'—साश्चर्य दृष्टि ने ऋता को घूरते हुए कहा।

'क्यों नही होंगे परिचित। पूरे अठारह वर्षों से प्रदेश की प्रत्येक गति-विधि के नियंत्रक जो रहे हैं वे। सारा खुफिया विभाग ही उनसे ही सम्बन्धित जो रहा है।

'क्यों, वे क्या इमदाद कर सकते हैं, हमारी ?'—फिर सीधा-सा प्रश्न वे होठ पूछ ही बैठे।

'यह सच है कि हम अभ्यस्त आतंकवादी रहे हैं, उनकी निगाह में अप-राधी भी। लेकिन अब हमारा पक्का विश्वास है कि हम जिस तरह जनमन में क्रान्ति लाना चाहते हैं वही एक रास्ता नही है। और यह आतंक और हत्याएँ—हमारे इन निरीह देशवासियों की—कितने दिन तक चल सकेंगी ? क्रिया की प्रतिक्रिया होगी अवश्य ही—यह बात ये उग्रवादी अकाली भी थोड़े ही दिनो में स्वयं समझ जायेंगे। नही जानती कि साथी चारू मजूमदार का प्रभाव अब स्वतः ही धीरे धीरे खत्म-सा हो रहा है। और ये आनंद-मार्गी ?—अखबारी सुर्खियों से गायब हो न रहे हैं ?

'मेरे इन विचारों से उनके चेहरे पर संतोष और प्रसन्नता के भाव तैर आये थे उस वक्त। मिलते रहने को बार-बार मुझसे कहते रहे हैं वे।

'लेकिन रितु ! अब हमें इन आदिवासियों के अंचलों में ही अधिक काम करना होगा। तैयार हो न ?' वह मनुहार भरी दृष्टि पूछ बैठी।

'हम सब तुम्हारी दृष्टि से पूरी तरह सहमत हैं, उल्लास ! डॉ. मित्रा ने तो चल-चिकित्सालय के लिए एक मोबाइल वॉन तक खरीद ली है—भैया का सवेदनशील भावुक जो हैं, लेकिन भाभी साधना भी उनसे किसी कदर कम भावुक नहीं हैं। बालरोग निदान की भी श्रेष्ठ चिकित्सक रही हैं।

'साधना प्रसूतिगृह' और 'शिशु चिकित्सालय' का आरंभ दो एक दिन में ही होने वाला है। फूलजहाँ अब उन्ही के साथ करेगी काम। थोड़े दिनों में ट्रेण्ड हो ही जायेगी। पर ....'

'पर क्या ?'

'दो एक नर्सों की तब भी जरूरत है न।'—सुनते ही उल्लास के दृष्टि-पथ के समूचे कैनवास पर डेज़ी की वह शालीन छवि उभर उठी। अधर अनायास ही हिल पड़े—डेज़ी ! पूअर डेज़ी !'—एक शीतल निश्वास निकलकर वायुमण्डल में विलीन हो गयी।

'उल्लास !'—खुली धुली वे आँखें उदासी से भर गयीं—'क्या होगा उस गरीब का अब ? प्रशांत ज्वालामुखी अपने वक्ष में समेट कर जो आह तक न भरे, उसका व्यक्तित्व कैसा हो सकता है !' क्षणभर फिर वे सब मौन के अन्तराल में डूब गये। कुछ खोजती हुई दृष्टियाँ झील की चाँदनी पर दूर-दूर तक तैरती रहीं। पर, समस्या का समाधान कहीं भी नही सूझ पड़ा। तभी दत्ता फिर बोल पड़ा—'डेज़ी को नौकरी से त्यागपत्र दे देने के लिए मैं राजी कर लूँगा, ऋतु ! ....लेकिन साधनाजी और डेज़ी एक साथ रह लेंगी क्या ? डेज़ी का वह उन्मत्त मन मनाएगा भी तो कौन ?

'..........फिर साधनाजी को भी तो मालूम है सब कुछ। मित्रा ने विवाह के पहले ही सब कुछ कह सुन लिया था, तब भी उन्होंने न जाने क्या सोचकर यह सब स्वीकार कर लिया, रितु ! कि मुझे तो अब भी आश्चर्य होता है। तुम्हें नही होता ?—उसने साश्चर्य ऋतुम्भरा गुप्ता की ओर देखा।

'इस नारी हृदय की थाह लेना मुश्किल है, उल्लास ! डेज़ी को त्याग-पत्र देने के लिए भी वे ही मनायेंगी, तुम नही। हो सकता है, तभी वह मान भी जायेगी। भैया का मन तो उसके प्रति अगाध प्रेम और करुणा से कितना लबालब भरा हुआ है ? वे उससे अलग रह नहीं सकेंगे, यह बात भी पक्की है, उल्लास !—भेदभरी दृष्टि ने गंभीरता से कह दिया।

'सच ?'

'बिल्कुल सच है, यह। भैया के जीवन की गाड़ी इन दोनों पहियों के बिना अब आगे नही बढ़ सकेगी ....और तो और, डेज़ी बहिन को भी

क्या हम लोग ही कभी छोड़ सकते हैं अब ? यह नितांत असंभव है। स्नेह और सेवा की अलभ्य प्रतिमूर्ति है वह। प्रकृति ने रूप भी खूब ही दिया है तो कमी किस बात की है, उसमें ?'

'और प्रतिभा की भी कमी नही है, उनमें' -फूलजहाँ अब अधिक चुप नही रह सकी। जिस नारी ने इस मड़ी गली बूदार देह की इतनी सेवा की कि आज वह भी भली चंगी यहाँ बैठी है। यह अहसानमंद ज़बान यह सब कैसे भूल सकती है ? उल्लास का मन यह सब सुनकर और भी उल्लसित हो उठा।

'तो तय रहा कि प्रार्थना साधनाजी ही करेंगी। चलो अब उठें।' - और वे तुरंत उठे, धीरे धीरे रैनबसेरे की ओर चल पड़े। 'और हाँ तो निकालो न टॉफिया !'— मुस्कराते हुए उल्लास ने ऋता की ओर देखा।

'हूँ ऽऽऊँ, टॉफियाँ उन मासूम बच्चो के लिए ही खरीदी गई थी, आप जैसे टेररिस्टो के लिए नहीं'—वेनिटी टटोलते हुए कहा, कल ही हेज़ी से मिलना है हमे, और उल्लास ! आयंगरदा से तुम सुबह ही मिल लेना। सारी बातें निपट रूप से रख देना उनके सामने ! त्यागपत्र तो दे ही रहे हैं, वे।'

'नही, वे त्यागपत्र नही देंगे। जहाँ अभी वे है, वह पद अब हमारे लिए बहुत ही मददगार साबित होगा।'—टॉफी का रैपर मसल कर फेंकते हुए उसने कहा।

'पर, वे तो पक्का निश्चय कर चुके हैं, उल्लास। बहुत अडिग हैं, किसी हालात मे डिगने वाले नही है, वे।' —वाणी दृढ़ता से कह उठी।

'हैं ?'

'नितांत सत्य है यह।'

'तो एक काम करना ही होगा फिर। मेरी बात मानोगी न रितु !'—उस स्नेहसनी वाणी ने मनुहार करते हुए कहा। ऋता ने साश्चर्य उसकी ओर देखा बोली–'क्यो, मैंने अब तक कौनसी बात तुम्हारी नहीं मानी, उल्लास ?'

और उल्लास निरुत्तर ही उसका मुँह कुछ देर ताकता रहा। फिर धीरे से बोला, 'रितु ! मुझे तुममे यही आशा है कि मेरी बात ठुकराओगी नही। हम सब एक ही राह के राहगीर है, एक दूसरे की इमदाद के बिना हमारी इतनी लम्बी राह तय नही हो सकती—और वे कदम चलते चलते थम से गये।

'कहो न, भई।'—धीमे से वे उधर फुसफुसाये और वह दृष्टि उल्लास की आँखों की गहराई में उतर गयी।

'तुम्हे आयंगरदा के साथ ....'कहते कहते लड़खड़ातीं वह वाणी एक बार काँप उठी।

'आयंगरदा के साथ ;'—जिज्ञासा ने सहजभाव से दुहरा दिया। 'विवाह कर लेना चाहिये। और सुनो, बीच ही में टोको मत। कह लेने दो मुझे। उन्हें त्यागपत्र न देने के लिए इस तरह तुम्हें राजी करना ही होगा। मैं जानता हूँ रितु ! कि उनका हृदय कितना अकेला अकेला और उदास रहता है...... रात-रात जगते-जगते ही कटती रही है यह उनकी अकेली जिन्दगी'। हम सभी चाहते है कि वे इस पद पर बने रहेंगे तो बड़ी मदद मिलती रहेगी। आखिर इस सत्ता में हमारा भी तो कोई न कोई हो ?'

'हम सभी यानी और कौन-कौन चाहते है ऐसा ?

तुम्हारे भैया अरुण मित्रा, तुम्हारी डॉक्टरी भाभी साधना मित्रा और मैं खुद। शायद तुम नही जानती रितु ! कि उनके मन में तुम्हारे प्रति निसर्गत: कितना गहरा प्रेम है !—एक रहस्यभरी मुस्कराहट उन अधरों पर फैल गयी।

'तो तुम भी यही चाहते हो, क्यों ?'

'क्यो कोई ऐतराज़ है इसपर, तुम्हें ?'—कंधे पर स्नेहभरी थपकी देते हुए उल्लास ने पूछ लिया।

'बहुत ही निदर्य और निष्ठर हो तुम, उल्लास ! कम से कम मुझे ऐसी आशा स्वप्न मे भी न थी कि तुम भी ऐसा चाह सकते हो !'—वह वाणी स्नेह से भीग विह्वल हो उठी।

वे फिर चुपचाप शास्त्री सर्किल पर धीरे धीरे आ पहुँचे। देश के तप:पूत उस स्वर्गीय प्रधानमंत्री की आदमकद मूर्ति की वह छाया-रेखा पार करते ही ऋता ने तपाक से पूछा-'तो तुम लोगो का यही निश्चय है, उल्लास ?........ तुम्हारा कलेजा सचमुच पत्थर का ही है........ मरते वक्त उस वेचारी ने भी ठीक ही कहा था ....तुम उसके सामने तक न गये सो न ही गये ....कैसा कलेजा पाया है तुमने, उल्लास ?'—वे तमकते स्वर उस चुप्पी भर चाँदनी में भी जैसे चीख पडे।

'मेरी रितु !'—स्नेहभरी थपकी ने फिर उसका कंधा सहला दिया। 'अच्छा ही हुआ कि उस वक्त मैं वहाँ नहीं गया, नहीं तो किसी प्रेम के नाटक का अंतिम दृश्य ही खेला जाता न वहाँ ? फिर वह न मेरे ही हित मे होता, न किसी जनहित ही में। उन्मादित वह आत्मा न जाने क्या कर बैठती; कौन कह सकता है यह।.......... और मरना तो हम दोनों को ही था, पर, रितु ! सच मानो जैसे यह उल्लास नहीं, उसकी जिन्दा लाश ही बतिया रही है, अब।........और ...... और यह सब बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के ही लिए है, मेरी रितु ! .... फिर हम सभी एक ही तो हैं—अलग-अलग देह होते हुए भी एक ही हैं। मैं तुम्हें कोई आदेश थोड़े ही दे सकता हूँ—मैं तो खुद मुझ ही से यह प्रार्थना भर कर रहा हूँ ....'

—'कि मैं आयंगरदा से विवाह कर लूँ ?'

'सचमुच ही, मेरी रितु !'—वह स्नेहभीगी वाणी आगे कुछ भी न बोल सकी। ऋता की आँखें भी सजला गयी। वेनिटीबेग से खद्दर का रूमाल निकाल, उन छलछलाती बूंदों को बरबस पोंछ लिया।

'रितु ! यह मेरी अंतिम प्रार्थना भर है' ....उस तरबतर दृष्टि ने कातरभाव से उसकी ओर देखा, फिर विनत हो गयी।

'तब, सोचूंगी उल्लास !—अच्छा, तो कल तक के लिए विदा ! और ऋता और फूलजहाँ सड़क के दाहिने मोड़ पर बढ़ गयी। उल्लास खड़ा ही रहा, धीरे धीरे जाते हुए उन्हें कुछ देर देखता रहा। जब आँखो से ओझल होने लगी वे - तो मन पर भारी पत्थर-सा लादे, वह भी अपने मुकाम की ओर, भारी कदमों से चल पड़ा।

इक्कीस

प्रदेश की विधान सभा का मध्यावधि चुनाव हो गया तो उसकी सारी गर्मजोशी फिर शांत हो गयी। परिणाम तो असंतोषकारी और उत्तेजक था ही, पर पक्ष और विपक्ष—सभी दलों और पार्टियों ने जनता की उस राय को धीरे-धीरे शिरोधार्य कर ही लिया। 'नारी नवचेतना समाज' की अनेका-

ऐक महिलाओं ने भी, इस प्रदेश की राजधानी में घर घर घूमकर अलख जगाई थी। हजारों मतदाता बहिनों और भाइयों को अपने अधिकारों के लिए सजग किया था कि वे सुदेश बत्रा जैसी क्रूरमना और बदजात नारी को वोट न दें। उसके उस वीभत्स अतीत की घिनौनी तस्वीर के कारण सचमुच ही इस महानगरी से तो उसे मुट्ठी भर वोट ही प्राप्त हुए थे। लेकिन ग्रामीण अंचलों और सैनिक और पुलिस क्षेत्रों से भरपूर मत उसी की मतपेटी में पड़ गये। और जीत का सेहरा इस तरह सुदेश के सिर पर ही बँधा। मुख्यमंत्री और सत्तारूढ़ पार्टी के विधायकों ने जमकर श्रीमती सुदेश बत्रा को जिताने के लिए जैसे जान की बाजी ही लगा दी। भोले भाले ग्रामीणों और अभावग्रस्त आदिवासियों की पंचायतों और पंचों की सुरा और सम्पति से उस दिन भर पेट सेवा की, और थोक के भाव वोट बटोर लिये। इन क्षेत्रों का कोई मंदिर, कोई मस्जिद या गिरजाघर इस भेंट पूजा से उस दिन वंचित नहीं रहा। पूजा-प्रसाद और चद्दरों के चढ़ावे की धूम मची रही। सभी अपनी अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए प्रसन्न थे। जो विकास कार्य महीने भर पहले से बड़े जोर शोर से चल रहे थे, चुनाव परिणाम की घोषणा के बाद फिर ठंडे पड़ गये। उनके अधूरे अवशेष आज भी उन अंचलों में अपनी अधूरी कहानी चूने-पत्थरों में छिपाये हुए है।

आखिर यह, चुनाव मुख्यमंत्री और उसकी पार्टी के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। पार्टी द्वारा यदि कोई कुत्ता भी खड़ा किया जाता तो उसे भी चुनाव जितना पार्टी कार्यकर्ताओं का फर्ज ही होता न?

और इस तरह सत्ता पार्टी को दो सीटें मिल गईं। फिर भी किसी आहत गोरैया की तरह एक सीट विपक्ष की गोद में आ ही गिरी। जिसकी उसे खुद को भी आशा न थी, पर, सत्ता पार्टी की आंतरिक फूट और कलह, इस तरह विपक्ष के लिए वरदान साबित हो ही गये।

'नारी नवचेतना समाज' की अध्यक्षा ऋतुम्भरा गुप्ता ने सदस्याओं की अंतरंग बैठक बुलाई. और आगामी वक्त के लिए कार्यक्रम स्थिर किया गया'। एक विधि प्रकोष्ठ की भी विधिवत् रचना की गई कि दहेज आदि की दहकती आग से, पराश्रिताओं, और पददलिताओं को मुक्ति दिलाने में समाज सक्षम हो सके। स्वास्थ्य और महिला कल्याण प्रकोष्ठ की संचालिका के पद पर डॉ. श्रीमती साधना मित्रा को प्रतिष्ठित किया गया। फिर विधि वेत्ता

समिति में सर्वश्री उल्लासदत्ता, डॉ. मस्ल्एमित्रा और एस. राजन आयंगर की सेवाओं को भी सहवरित किया गया। उसके लिए विधिवत् प्रस्ताव-पारित किये गये।

और अंत में 'समाज' की अध्यक्षा ने शहरी क्षेत्र में किये गये जन-जागृति के सफल प्रयत्नों के लिए, अपने सदस्यों को धन्यवाद देते हुए, इस दिशा में और अधिक सजग और सक्रिय होने की अपील की। उन्होंने यह भी याद दिलाया कि किस प्रकार सभी वामपंथी पार्टियों ने उनके 'समाज' की इन प्रगतिशील गतिविधियों की प्रशंसा मे प्रस्ताव भी पास किये हैं—क्योंकि हम सभी एकमत हैं कि जाग्रत नारी ही राष्ट्र की जीवन ज्योति है।

धन्यवाद ज्ञापन के बाद मीटिंग खत्म हुई तो सब 'विवेकानंद हॉल' से से बाहर निकल आये। आयंगर ने भी अपनी जीप का स्टीयरिंग सम्हाल लिया। जीप भीड़ भरे राजपथ पर फिर दौड़ पड़ी। सोच में डूबा वह मन निरतर गहराई में उतरता जा रहा है। प्रायः सभी दलों और पार्टियों ने इस मध्यावधि चुनाव की समीक्षा करने के लिए बैठकें बुलाई हैं। सत्ता पार्टी पर साम्प्रदायिक होने, असामाजिक और डकैत-तत्वो को बढ़ावा देने, तथा हर स्तर पर भ्रष्टाचार फैलाने के गभीर आरोप लगाये गये। पर, यहाँ सुनता कौन है ? और सुने भी तो किसकी ? अपनी अपनी ढपली और अपना राग अलापने के सिवा और है ही क्या। विपक्षी दलों के गुट बेमेल सिद्धान्तो के अखाड़े नहीं बने हुए हैं ? फिर लाख दलीलें दें पर, सत्य तो सत्य ही रहेगा न।—केवल सत्ता हथियाने का स्वार्थ ही किस तरह इन राजनैतिक पार्टियों को आज एकता मंत्र रटा रहा है, यह बात हर प्रबुद्ध देशवासी जानता है।

.... और, कार्यक्रम किस पार्टी का अच्छा नही है ? पर, उसके क्रियान्वयन के प्रति नीयत साफ कहाँ है ? स्वार्थ की दीमकों ने उन्हें खोखला जो बना दिया है तो थोथे चनों की भड़भड़ाहट ही अधिक आवाज़ कर रही है। और इसीलिए अल्पसख्यक और अनुसूचित जनता हर दल की आज आराध्या बनी हुई है—कि उसके वोटों का वरदान उसी को मिले।

आरक्षण की आवाज इसीलिए संसद भवन और विधान सभाओं की दीवारें आये दिन गुंजाया करती है। .... लेकिन जो विपक्षी दल दूसरे प्रदेशो की राजगद्दियां सम्भाले हुए हैं, वे अपनी सत्ता के लिए अधिकाधिक 'स्वायत्तता' की आवाज बुलंद कर रहे हैं, ताकि वे इस विशाल राष्ट्र में छोटे छोटे 'गणतंत्रों' के रूप में उभर सकें ?

और ''''''और तभी तो पाकिस्तान की तरह खालिस्तान का स्वप्न भी साकार होने की पुरजोर कोशिश कर रहा है। जाहिरा तौर पर तो इसका विरोध करते हैं, पर, वे ये देशी-विदेशी पार्टियां दबी जबान से कभी कभार समर्थन भी करती रही हैं। पवित्र सुनहरे मंदिर भी इसीलिए जघन्य अपराधों और अपराधियों की इबादतगाह बन रहे हैं। दिन ब दिन आतंक और अराजकता इस देश की सरज़मीं पर फैल जाना चाहती हैं—न जाने कितने निरपराध मासूम बच्चों, महिलाओं और पुरुषों को बसों से उतार कर मौत के घाट उतारना अब भी बाकी है ? रेलों की फिशप्लेटें उखाडना, सिनेमा घरों में बमों के विस्फोट, करोड़ों की बैंक डकैतियां अपना जौहर खालिस धर्म के नाम पर दिखा रही है। न जाने शहीदे आजम भगतसिंह और लाला लाजपतराय की कुर्बानियों के लहू का क्या हुआ ? स्वार्थ और घोर स्वार्थ का अंधेरा जैसे हमें अब लील लेना चाहता है। कहाँ है वह प्रकाश की किरण आयंगर जो कि इस देश की दसों दिशाएं एक साथ प्रकाशमान कर दे ?

वह जीप 'नेहरू विज्ञान भवन' के समीप वाली सड़क की ओर मुड़ी ही थी कि दाहिनी ओर से दो कारें उसे ओवरटेक करते हुए सन्न से आगे निकल गयीं। उस अनमनी दृष्टि ने भी भांप लिया कि उस पर सवार कौन लोग थे। गाड़ी की रफ्तार धीमी हो गयी। शायद वे भी तारा नर्सरी ही पहुँच रहे हैं। अब ? मन क्षण भर फिर सोच में डूब गया। पर, गाड़ी अब भी उसी दिशा में धीरे-धीरे दौड़ रही है। वक्त के ठंडेपन का अहसास, सड़क के दोनों ओर के बंगलों के उद्यानों से आती हवा करवा रही है।

सात बजा चाहते है। मुँह झाँपता अंधकार दूर-दूर तक फैल गया है। मार्ग के खम्भों पर ट्यूबों का प्रकाश बड़ी शालीनता से मुस्करा रहा है।

'चलना तो है ही वहाँ। समय दिया है तो वचन भी निभेगा ही। मन की तरग जैसे फिर स्थिर हो गयी। एक्सीलेटर कुछ दबा तो गाड़ी और तेज हो गयी। चंद मिनिट बीते कि उसने नर्सरी के दरवाजे में प्रवेश किया। फार्म हाउस के दालान की सीढ़ियों के समीप जीप आ पहुँची, उसे करीने से एक ओर खड़ाकर, वे कदम सीढ़ियाँ चढ़ ऊपर आ पहुँचे। देखा-पाँच छह आराम कुर्सियाँ मौन साधे एक दूसरे को देख रही हैं। क्षणभर की प्रतीक्षा के साथ ही सामनेवाले वातानुकूलित कक्ष के कपाट होले से खुल पड़े। किसी प्रौढ़ा ने पुकार लिया—आइये न ?

आयंगर तपाक से उस ओर बढ़ गया। मुस्कराते हुए अधर अपने-आप 'वन्दे!' कह उठे। प्रौढ़ा का वह शालीन व्यक्तित्व उस गुलाबी आंगन की रेशमी साड़ी में और भी प्रभावशाली लग रहा है—'आइये'—मुस्कराते अधर 'वन्दे' के प्रत्युत्तर में जैसे खुल पड़े। दोनों ही आमने-सामने केन की आरामकुर्सियों पर बैठ गये। क्षणभर के मौन के बाद प्रश्न दृष्टि में उभर आया 'इस वक्त कैसे की है कृपा?'—सुनते ही आयंगर का मन हठात उस अतीत में लौट गया जब पांच लाख के उस चैक को लेकर वह उद्योगपति सी. एम. के चैम्बर में उस रोज आया था, और उसके पीछे ही, आयंगर ने भी उसी द्वार का वह शानदार पर्दा उठाकर प्रवेश किया था।

लेकिन, आज तो यह मुख्यमंत्री का वह चैम्बर नहीं है। और न ही वह सी. बी. आई. का अधीक्षक ही। सी. एम. किस मुस्तैदी से वह चैक भुगतान के लिए तुरंत ही पार्टी के महासचिव के नाम एण्डोर्स कर चपरासी को दे दिया था। और वह मुँह ताकता ही रह गया।' खिसियानी मुस्कराहट के साथ कैसे बाअदब सैल्यूट कर खड़ा रह गया। तब भी यही प्रश्न तो था, इस वक्त कैसे कृपा की?

और ये ही विद्युवतीजी उस सारे नाटकीय दृश्य की साक्षी थी। तभी तो आज फिर वही प्रश्न—'इस वक्त कैसे कृपा की?—जैसे कोई कटाक्ष हो।

होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट थी, पर अंदर मन सिहर उठा।

'भाईसाब ने समय दिया है।' होठ प्रत्युत्तर में फुसफुसा उठे। 'ठीक है, मैं उन्हें अभी सूचित किये देती हूँ। अभी वे बैठक में हैं कुछ लोग मिलने आये हैं'—और वे तुरंत खड़ी हो गयी। बैठक का जो दरवाजा इसी कक्ष से जुड़ा है, उसे खोल वे अंदर चली गयी। कपाट के खुलते ही अन्दर की एक झलक आयंगर के दृष्टिपथ पर उभर आयी—'ये तो वे ही लोग हैं। मुँह से अनायास ही निकल गया।—पार्टी के अधिकारी गण हैं, तो जब चाहें तब मिल ही सकते हैं। यहां तो सरकारी नौकर हैं न हम। मिलने के लिए हर वक्त इन्तजार करना ही पड़ता है।—और उसने अपने कंधों पर लगे उन चमकते सितारों को हिकारत भरी दृष्टि से देख लिया। मन न जाने किसी लाचारी से उदास हो गया है—सांप छछुंदर की सी गति, करें तो क्या करे?—इसी सोच में डूबने-उतराने लगा।

'नौकरी मत छोड़ियेगा' — रितु कितने स्नेह से आग्रह करती रही है। न जाने उसके मन में मेरे प्रति क्या है! — और ये उल्लास और मित्रा — कमबख्त सभी उसी का समर्थन करते रहते हैं। अरे भई, मुझे ही इस जन-सामान्य के वेश से क्यूं अलग रखते हो? साले, कभी तो खुद धोती कुर्ता और कभी खादी की पेंट-बुशशर्ट में लकदक घूमते फिरते है, गर्मागर्म स्पीच झाड़ते रहते हैं, बड़े-बड़े सभागारो में सेमीनारों का उद्घाटन करते रहते हैं, गांव-गांव में घूम फिरकर पीने के पानी रोटी-रोजी और आपसी समस्याओं के हल ढूंढते और लोगो मे सक्रिय होने की चेतना भरते रहते है, पर, मुझे कहते हैं कि नौकरी ही करते रहो। गुलामी के इन सितारों को कधे पर टांगे, हर काम के लिए सरकारी आदेशो की प्रतीक्षा करते रहो।

.... देखा न, केन्द्रीय मंत्रिमण्डल बदलते ही हमारी निष्ठा भी तपाक से बदल ही जाती है, जिसका अनुभव जनता राज में अच्छी तरह हो चुका है। तभी उसने देखा कि बैठक वाला वह कपाट फिर खुल पड़ा तो वह विचारवेग तुरंत रुक गया। विधुवतीजी अदर से बाहर निकल आई। आयंगर तुरंत कुर्सी से उठ खड़ा होगया।

'बैठिये न, आयंगर साहब! वे कुछ ही देर बाद आप से ही मिलने वाले हैं।' आप तो अब काफी बदले बदले नजर आ रहे हैं। हैं न?'

'मैं ऽऽ?'— वाणी सकोच से सकपका गयी। 'मेरा मतलब है—आपका पद अब और भी ऊँचा हो गया है, और क्यों न हो, आप जैसे निष्ठावान अधिकारी को इज्जत यह राष्ट्र ही न करेगा, तो और कौन करने आयेगा?'

'यह सब आपकी बंदानवाजी है, विधुजी! अन्यथा मैं किस काबिल हूँ?'—कहते हुए दृष्टि अपने आप विनत हो गयी।

'नही जी, आप यदि लायक नही हैं तो फिर लायक किसे कहा जाये?' हम तो जब आप अधीक्षक थे, तभी से जानते है। जो भी काम आपको सौंपे गये, आपने बड़ी लगन और निष्ठा से पूरा किया था उन्हें'—कहते हुए वह निर्विकार दृष्टि खिल उठी। 'विधुजी! यह सब आपकी उदारता और बड़प्पन है, जो मैं आज यह सुन रहा हूं, नही तो किसी सरकारी अधिकारी को बिना काम के कौन पूछता है, आज? आज सत्ता के उस सिंहासन से नीचे उतर आने पर भी मनुष्यता की वह दृष्टि मैली नही हो पाती— यह बात मुझे प्रत्यक्ष रूप से आज ही दिखाई दे रही है।

'और ऐसी ही किसी प्रेरणा से मैंने भी इस नर्सरी के प्रांगन में कदम रक्खा है। भाईसाब से इस दिशा में कुछ मार्गदर्शन मिलेगा ही, ऐसी आशा है मुझे।'— कि उसी वक्त अंदर के द्वार का कपाट खुल पड़ा, और भूतपूर्व मुख्यमंत्री जो अपनी ही पार्टी के साथियों से बतियाते हुए बाहर आये। देखते ही श्रायंगर अपनी पी कैप उतारते हुए तुरंत खड़ा हो गया।

'बैठो आयगर!'—कहते ही स्मितहास्य अधरों पर खिल पड़ा। बड़े स्नेह से उसके कंधे थपथपा दिया। तब उसी उत्फुल्लता के साथ अंडाकार टेबुल के सामने कुर्सी पर बैठते ही, फोन का चोंगा उठा लिया और वे डायल घुमाने लगे।

'हलो, कौन मिश्राजी हैं?—हाँ, यह मैं ही बोल रहा हूं। वर्किंग कमिटी की बैठक कल ही है न? ···· हाँ, आऊँगा ही। जी हाँ—जी हाँ ······ यह तो तय करना ही है········· ये यहीं बैठी हैं······ विधान सभा के उपसभापति पद के लिए उनका नाम ही ···· हाँ हाँ ······ क्यों नहीं? ······ महिला को ही इस बार आसन पर ······ हाँ, हाँ, ठीक है ······ सुदेशजी से बात करना चाहेंगे न? ······ हाँ तो होल्ड ऑन ···· लीजिए बत्राजी!'—और उन्होंने बत्रा के हाथ में चोंगा थमाते हुए मुस्करा भर दिया।

'······· जी, यह मैं सुदेश ······ वन्दे! ······ सब आपकी इनायत है। जी, जी, मेहरबानी है मुझ पर ······ हमें तो काम करना है ······ वैसे सब आपकी कृपा है ही ·· पद की ····· हाँ, ख्वाहिश नहीं है ··· जी, जी, आपके आदेश को तो ······ शिरोधार्य करना ही ······ जी ···· जी 'जी जी हाँ, जी हाँ ······ और खिलखिलाकर हँस पड़ती है। क्षणभर ठहरकर ···· एक अर्ज मेरी भी है ' मैंने ··· हाँ, वही तो ····· अर्ज किया था भाईसाहब के लिए जी जी ······ जैनसाहब के लिए ··· क्या पी. एम. को फोन ·· ···· धन्यवाद! धन्यवाद! ······ राष्ट्रपति की स्वीकृति? ···· वह तो होगी ही ····· हें हें हें हँसती है।

········ ठीक ही तो है ······ जो अपने अच्छे साथी भी हो ····· विधिवेत्ता भी ······ फिर वर्षों तक महाधिवक्ता भी तो रहे हैं न? फिर कोई अड़चन ही कहाँ? ···· उच्च न्यायालय के जज की कुर्सी के लिए ऐसा सुयोग्य व्यक्ति और कौन है हमारे पास? ······ दूसरी ओर से सुनते हुए ·· ···· जी हाँ, हम सभी तो सहमत हैं ······ इसमें दो राय है ही कहाँ? ······ भाई-

साहब नत्थूसिहजी इस पद के लिए बहुत ही मौजू शख्स हैं ''''' हैं ? क्या सचमुच ? '' बहुत बहुत धन्यवाद !' ''''और इठलाती हुई वाणी ने मुँह से चोंगा हटा लिया तो उसे यथावत् रख दिया।

'भाईसाहब ! अब हो न जाये एक दावत ?' अपनी कुर्सी नत्थूसिंह जैन के पास खिसकाते हुए बन्ना चहक उठी। जैन के नेत्र मोटे-मोटे काँचों की ओट मे पुलकित हो उठे, वाणी गद्‌गद् हो गई। दो क्षण आनद के अतिरेक से बोल तक न फूट पाये। तभी आयंगर ने उठकर हाथ मिलाते हुए कहा—'जैन साहब मेरी हार्दिक बधाई भी स्वीकारियेगा।'

'थैंक यू फ्रेण्ड ! ''' मैं तो आप सभी का आभारी—हूँ—दावत की क्या बात की। मैं खुद आप लोगों की सेवा मे सदैव हाजिर हूँ—आदेश दीजिए न ?'—वे पुलकित स्वर हल्के-से कंपन के साथ डूब-से गये।

'वह समय भी आ ही रहा है, जैन साहब ! आपकी सेवाओं की जरूरत किसे नही होगी ?'—और 'वे' फिर मुस्कराते हुए उठ खड़े हुए तो, सभी खड़े हो गये। उन्होंने सुदेश की ओर मुखातिब होकर कहा—'अच्छा, तो हम लोग कल वर्किंग कमेटी की बैठक में मिलेंगे ही, है न ?'

'जी हाँ, जी हाँ,'—दोनों के हाथ बड़े शालीन भाव से जुड़ गये। सारे वक्त मौन साधे प्रिया ने भी विदाई के इस क्षण मधुभीनी दृष्टि से उनकी ओर देखा, लेकिन तभी उन्होंने आयंगर के कंधे पर मुस्कराते हुए हाथ रखते हुए कहा 'आओ आयंगर !' और वे आयंगर को लिये बैठक में फिर प्रविष्ट हो गये। सुदेश और उनके साथी विधुवतीजी के साथ धीरे-धीरे बाहर निकल आये, सीढियाँ उतरते हुए कह पड़े— 'अच्छा, जीजी वन्दे !'

'वन्दे !'—वे विदाई भरे कदम चलकर अपनी कार तक आ पहुँचे, बैठकर उल्लसित मन चल पड़े।'

'वे' और आयंगर आमने-सामने सोफा चैयर पर आकर बैठे ही थे कि विधुवतीजी ने पान की डिबिया के साथ अन्दर प्रवेश किया। सामने ही रक्खे टी टेबुल पर उसे रख दिया तो पति के दृष्टि-संकेत के साथ ही वे फिर प्रतीक्षा कक्ष से होकर अपने चैम्बर मे लौट आयी। तभी डिबिया की ओर संकेत करते हुए 'वे' बोले —'आयगर, लो पान की गिलौरियाँ।' और तपाक से डिबिया खोलकर उसके सामने कर दी।

सलज्जभाव से आयंगर ने एक धीरे से उठा ली तो उन्होंने भी दो गिलौ-रियाँ लेकर मुँह में दबा लीं, डिबिया बंद कर टेबुल पर रख दी। दो एक क्षण दोनों ही अपने मे डूबे रहे ! तभी उन्होंने मौन तोड़ते हुए पूछा–'कहिये, कैसी गुजर रही है, आजकल ?'

'आप से क्या छिपा है, भाई साहब ? जबसे आपने मेरी पीठ पर अपना वरदहस्त रखा है, मेरे मन मे भी एक वेगवती उमग बसंत की दूब-सी जनम आई है।

'और अब– वह प्रबल प्रेरणा मेरे धीरज के बाँध को तोड़ने पर तत्पर है, भाईसाहब ? इतना अधिक लगाव अब इस पद पर अधिक दिन कार्य नहीं करने देगा, और मैं अब कभी भी इसे छोड़ सकता हूँ।'–वितृष्ण दृष्टि ने उनकी ओर देखकर कह दिया। 'ऊ ऽ ऽ ़ूँ, थिंक ट्वाइस बिफोर यू लीप, फ्रेण्ड !'—पान की पीक गले मे उतारते हुए उन्होंने कहना शुरू किया · 'अभी मेरे खयाल से ऐसे हालात ही नही पैदा हुए है कि तुम्हे यह पद छोड़ने को बाधित करें।

'फिर, तुम्हारा काम तो बहुत ही ठोस और सार्थक ही रहा है। वे हजारों दुखी और निरपराध विचाराधीन कैदी तुम्हारे कितने शुक्रगुजार हैं, यह तो उनके दिल ही से पूछो। और अब तो एक पूरी टीम तुम्हारे साथ है न ऐसी टीम जिसे राजसत्ता का लोभ किंचित मात्र भी नहीं है। जो जी जान से इस कदर प्रदेश पर छायी अकाल की इस भीषण और जीवनान्तक छाया से, जन-जीवन की रक्षा के लिए जूझ रही है।

'क्या इनको तुम्हारी इमदाद की कोई जरूरत ही नहीं !–मेरा मतलब तुम्हारे इस पद से है इस पद पर हो तो कुछ सुविधाएँ भी हैं, नही हैं क्या-बोलो न ?'–वह दृष्टि आयंगर को ऊपर से नीचे तक भाँप गयी। सहमे हुए मन ने स्वीकारते हुए धीरे से वह दिया –जी !'

'तब ? आयंगर, मुझे भी कुछ तो मालूम है हो, कुछ उल्लास से तो कुछ क्रूरता से मालूम होता रहा है। अपने इस महानगर में शोषकों की कमी कहाँ है। यहाँ तो हजारों लाचार शोषित किसी कदर जिन्दा हैं, अब तक। आर्थिक दासत्व और सामाजिक उत्पीड़न इस देश में क्या कम है ? इस-लिए अगर ऐसे शोषण और आमनवीय उत्पीड़न के जिम्मेदारो से, अपने इस

पद के प्रभाव से कुछ वसूलते हो तो वह बुरा कहाँ है ?—आखिर, यह सब अपने तईं तो नहीं कर रहे हो न ?—खाद्यान्न, कपड़े-लत्ते, कम्बलें और जो कुछ माली इमदाद मिल सकती है, लेते रहो।

'इन अकालग्रस्त अंचल में वे बेचारे निष्ठामय हाथ, कितने विश्वास और लगन से आज भी काम कर ही रहे हैं। धू-धू कर जलती दोपहरी की गर्म गर्म लू-सी साँसों से सिसकते हुए भी, कभी झिझक भी पाये हैं वे ? उन्हें तुम जैसों का सहारा है, इसलिए। बोलो न, चुप क्यों हो, आयंगर ?'

'और यदि यह भी पाप ही है तो उस पाप से तो बहुत ही बेहतरीन है यह जो महज अपने लिए, सत्ता हथियाने के लिए या किसी पार्टी के हितों की सिद्धी के लिए किया जाता है। मैं तो स्वयं एक ऐसी ही पार्टी के प्रमुख पद पर रहा हूँ, जिसने वर्षों तक सत्ता भोगी थी। आज मैं भले ही उससे दूर झटक दिया गया होऊँ, पर मेरी पार्टी आज भी इस देश की बाग-डोर संभाले हुए है। है या नहीं ?'—कहते हुए वे अधर किंचित मुस्करा उठे।

'लेकिन, आज भी आपकी प्रतिष्ठा कम कहाँ है, भाईसाहब ! विधान-सभा के उपसभापति के पद और उच्च न्ययालय की जजी की भीख आज लोग आप ही से तो माँगते हैं न ? अपनी आँखों से, अभी-अभी मैंने खुद देखा है। इस प्रदेश के आधुनिक निर्माता जो रहे हैं, आप। इस सत्य से आज इन्कार ही कौन कर सकता है ?'—उन आँखों के दर्पण में गर्व झलक उठा।

'मेरे आयंगर ! आज तो वे सारी स्थितियाँ ही बदल चुकी हैं, और इसके लिए हमें कतई दु:ख नहीं है। पर, पार्टी जब आदेश देती है तो कभी इस प्रदेश की गवर्नरी करना पड़ता है, तो कभी उस प्रदेश की। अवकाश पर जाना होता है तो तुम्हारी तरह ही, हमें भी गृहमंत्रालय से आज्ञा लेनी ही पड़ती है। हर कार्य—गवर्नरी का—उसी के संकेत पर ही होता है न ? हम लोग तो कठपुतलियों की तरह हैं, डोरी जिधर खिंची, उधर ही नाचने लगे। आखिर सूत्रधार तो दूसरी ही अंगुलियाँ होती है न—चाहे फिर किसी भी पार्टी की ही सरकार क्यों न हो।

इसीलिए जब केन्द्र में हमारी पार्टी न रही तो तुरंत ही मैंने गवर्नरी की उस नौकरी से मुक्ति पा ली। हालांकि सरकार की इच्छा थी कि मैं उसी पद पर बना रहूँ।

'आयंगर, मैं तो सदैव अपनी पार्टी का वफादार सिपहसालार रहा हूँ, यह बात दीगर है कि आज ऐसी उपेक्षा को जी रहा हूँ मैं। ...... आखिर वफा की एवज में इन्सान चाहता ही क्या है—यही न कि उसे कुछ स्नेह और सम्मान मिले। लेकिन मेरे इन साथियों को चैन ही कहाँ है? जब इन्होंने चाहा कि मैं यह सत्ता छोड़ दूँ तो मैं स्वतः उससे अलग हो गया, लेकिन ये सोचते है कि जब तक मैं प्रदेश मे बैठा हूँ, तब तक वे सत्ता में प्रभावशाली नही हो सकते। कितना गलत है ऐसा सोचना उनका कि मैं प्रदेश की राजनीति से ही सन्यास ले लूँ। यहाँ से फिर राज्यपाल बनाकर कही दूर फेंक दिया जाऊँ। लेकिन आयंगर. इस बार मैंने ऐसी सरकारी नौकरी के लिए साफ़ इन्कार कर दिया है। स्वास्थ्य ठीक नही चल रहा। दो बार दिल के दौरे पड़ चुके हैं, और मैं अब और किसी प्रकार का मानसिक तनाव नही पाल सकता।

'फिर बीमार माँ का दायित्व उसके इकलौते बेटे पर ही तो है।' —और वह दृष्टि ऊपर उठकर, दूर तक देखने के प्रयत्न में जैसे खो गयी। आयंगर दो एक क्षण चुपचाप उस सवेदनशील चेहरे को ताकता रहा। फिर बोल उठा—'आज का समय बहुत ही गम्भीर है, भाई साहब! उस दिन गृहमंत्रालय की रिपोर्ट पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए विपक्ष के उस प्रभावशाली नेता ने आपकी ओर सकेत करते हुए कहा था कि ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों के होते हुए भी सत्ताधारी पार्टी ने इतने बौदे व्यक्ति को यह मंत्रालय सौंपा है। तब कानून और व्यवस्था मे सुधार की आशा कैसे की जा सकती है?

'और अब तो वही व्यक्ति राष्ट्राध्यक्ष भी हैं। पर, सुनता है कौन? बेचारे राम के लाल तो निमित्त मात्र ही हैं। पर, यह अंधी राजनीति किसी के बढते हुए वर्चस्व को कैसे बर्दाश्त कर सकती है? ...... लेकिन आंध्र में तो यह ढेर ही हो गयी न? ... करो, फिर छवि सुधारने के प्रयत्न तेज। लेकिन यही हाल कमोवेश सभी पार्टियों का है। मार्जारी दृष्टि से सत्ता का छीका टूटने की भविष्यवाणियाँ तो करते फिरते है, पर वे एकमत और एकजुट नही हो पाती। आज तो हर बड़ा नेता राष्ट्राध्यक्ष और प्रधानमंत्री का पद हथियाना चाहता है। देश की असफल आर्थिक नीतियों और अराजकता की बातें करते-करते अघाता नही है। कभी अमृतसर का

बल्यूस्टार ऑपरेशन, तो कभी कश्मीर तो कभी आंध्र—इनकी प्रतिक्रियाओं के प्रीतिभोज बने हैं। चटखारे ले लेकर चोट पर चोट की जा रही है, पर, सत्ता की यह मूर्ति तो खंडित होने का नाम तक नहीं लेती ?

तभी अन्दर के दरवाजे का कपाट खुल पड़ा। दोनों ही दृष्टियाँ तत्क्षण उसी ओर उठ गयीं, देखा - विधुवतीजी अपने प्रिय पौत्र को बाँहों पर झुलाये चली आ रही हैं। समीप आकर धीरे से बोली—'जिलाधीश आये है। क्या कहूँ, उन्हे ?'

'उन्हे अभी कुछ देर बिठाये रक्खो। मैं स्वयं वहीं आ रहा हूँ।'- कहते हुए वह दृष्टि मुस्करा उठी तो वे शिशु को बाहों पर झुलाती बाहर निकल गयी।

'आयंगर, तुम तो इतने अंतरंग ही बन गये हो कि मैंने अनायास ही मन की परतें उधेड़कर रख दी। भई, पीडा तो होती ही है। यह देखकर कि अवसरवादियों की यह घुसपैठ किसी दिन इस पार्टी को ही न ले बैठे।'—कहते हुए वाणी तिक्त भाव से बोझिल हो गई।

'तभी तो आज वह बन्ना भी उपसभापति बन रही है, न! एक बात पूछूँ, भाईसाहब ?.........इस कुलच्छिनी ने मिश्राजी को कैसे पटा लिया है ? क्या राज़ है, इसका ?

'जानते हुए भी मुझ ही से पूछ रहे हो न, आयंगर!'—मुस्कराते हुए अधर थिरक उठे। तुम्हारी वह प्रिया आज बहुत ही मंजी हुई खिलाड़ी बन गयी है। उसके मधुभीने पाशविक आलिंगन पाश से ऐसा आज यहाँ कौन है जो बच सका है ?'—प्रश्नाकुल दृष्टि व्यथित-सी बोल पडी।

'रूप की यह सौदामिनी सचमुच ही कुशल अभिनेत्री है, भाईसाहब! सुना है, आजकल मिश्राजी के उस लौंडे से लाड़ लड़ाये जा रहे हैं।'

'लेकिन आयंगर, सीढ़ी तो सीढ़ी ही रहती है, वह विकास के गतिमय चरण कब बन पायी है ? प्रभाव की इतनी ऊँची मन्जिल की यह सीढ़ी भी किसी दिन इसी धरती पर गिर जाने को है—गिरेगी भी ऐसी कि कील-कील बिखर जानी है। तुम तो प्रिया की उस दयनीय स्थिति से खूब ही परिचित हो, फिर मुझसे क्यों कहलवाते हो ?

'प्रिया के साथ किसी भी अनहोनी के हो जाने पर हमें आश्चर्य नहीं होगा। उसकी नशीली नीली आँखें दिन-रात किसी न किसी नशे में डूबी ही रहती हैं।'

'आपका खयाल बिल्कुल बिल्कुल सही है, भाईसाहब!'—और तभी दीवार घड़ी ने नौ के टंकोरे बजा दिये तो आयगर बड़े संकोच भाव से तुरंत उठ खड़ा हुआ, 'बहुत समय लिया है, मैंने। अब इजाजत चाहता हूं।'

वे भी उठ खड़े हुए बोले - 'तुम लोगों के लिए ये तीन चार खत मैंने लिखे हैं। कल ही हैदराबाद और वहाँ से फिर बंगलोर के लिए रवाना होना है, तुम्हें। अच्छा हो, बाई एअर चले जाओ। राव्रसाहब आदि तुम्हारी सहायता करेंगे ही। मौत के मुंह में जाते हुए इस प्रदेश के लोगों के लिए हम कब तक सरकार का ही मुंह ताका करेंगे?' और उन्होंने बड़े ही स्नेह से अपना हाथ उसके कंधे पर रखा तो आयगर को लगा जैसे विश्वास का वह आकाश उसके कंधों पर आ टिका है।

उसने चुपचाप चारों पत्र ले लिये और उन्हें पतलून की जेब के हवाले किया। बोला—'इस महती कृपा के लिए हम लोग उपकृत हैं, भाईसाहब। मैं निश्चय ही कल प्रातः आठ बजे की सर्विस से हैदराबाद के लिए रवाना हो जाऊँगा।' विदा के लिए विनत भाव से हाथ मिलाया, और बैठक से बाहर आ गया।

'कितना दरियादिल है यह शख्स कि इन दो चार मुलाकातों ही में मुझे अपने हृदय के इतना समीप खींच लिया है'— सोचते ही एक अजाने आनंद से हृदय पुलकित हो उठा।

बाईस

आषाढ़ी अमावस का अंधकार मौत-सा खौफनाक हो, इस रूखी-सूखी छितराई धरती से आसमान तक फैला हुआ है। ऊपर टिमटिमाते करोड़ों सितारे बड़ी बेशर्मी से नीचे—दूर-दूर बिखरे गाँवों के उन अवशेष प्राणियों को दम तोड़ते हुए देख-देखकर अब भी पुलकित हो रहे हैं।

फिर भी भूख-प्यास से व्यथित यह धरती अपनी धुरी पर दिन रात घूम रही है। रात के शायद अभी ग्यारह बज रहे हैं, लेकिन हवा की तपती साँसें अब भी स्पर्श-सुखद नही हो पाई हैं। फिर भी इस महानगर मे इस समय भी कुबेर की संतानो की देहों को शीतल स्पर्श से निंदिया रहे हैं। इसी वक्त नीले रंग की कार सिविल लाइन्स के बंगला नं. 9 के गेट तक दौड़ती हुई आ पहुँची तो उसकी हैडलाइट से दाहिनी ओर लगी संगमरमर की पट्टी पर अंकित नाथूसिंह जैन, न्यायमूर्ति, उच्च न्यायलय के काले अक्षर भी चमक उठे।

कार तुरंत गेट के अंदर घुस आयी। पोर्टिको के नीचे आकर रुक गयी। दो महिलाएँ तत्परता से बाहर निकल आईं। केन्द्रीय कक्ष की कॉलबैल का बटन दबते ही घंटी सरगमी स्वरो मे बज उठी। कपाट खुला तो दोनों ही अंदर आ गईं।

'आइये बआजी'—ध्वनि के साथ ही स्प्रिंगदार कपाट अपने आप बंद हो गये। तीनों आराम कुर्सी पर आ बिराजे। मुस्कराती उन मधुभीनी निगाहों ने जजसाहब को ऊपर से नीचे तक छू लिया तो उनकी सारी देह, किसी अजाने आलिंगन-स्पर्श से रोमांचित हो उठी। प्रिया का वह उद्दीपक सौन्दर्य आज शरद पूनो के चाँद की तरह उजला-उजला और स्पर्श-सुखद लग रहा है। उस कामिनी की इन्द्रधनुषी भौंह की कमानी बड़े सहज भाव से खिंच उठी और कामना के तीखे तीर की मारक दृष्टि ने, अपने ही सामने बैठे मन को बेध लिया, तो उस दर्द का मिठास रक्त के अणु-अणु को कँपा गया।

'अभी आप हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे थे, न ?' उस चकोर दृष्टि ने जजसाहब को फिर छू लिया।

'तुम्हारी प्रतीक्षा—मैं नही जानता—किसे न रहती होगी, प्रिया ! जी तो यह चाहता है कि रही सही जिन्दगी तुम्हें ही देखते-देखते गुजार दूँ। पर, करूँ क्या, लाचार जो हूँ। इस बेदर्द दुनिया के ये हजारों फसाद इस छोटी-सी जिन्दगी को भी नही जीने देते हैं न ? और बड़े इत्मीनान से उन्होंने अपनी कुर्सी उसके समीप खिसकाई तो उसका दाहिना कोमल-कोमल हाथ अपनी अंजली मे भर लिया।

उनके नेत्र प्रिया की पलकों की छाया में अठखेलियाँ करती कामना के मद मे बिद्ध हो गये। पर, तभी अपना हाथ धीरे से खींचते हुए प्रिया ने

कहा - 'भाईसाहब !, हम आपसे बहुत नाराज हैं। आपने अपना वादा कब पूरा किया है ? आप तो कहते थे कि ......' और आगे उस तीखी निगाह ने तकते हुए सब कुछ कह दिया।

जज साहब तुरंत सजग हो गये।—बोले—'प्रिया मेरी, तुम इन रांडों से इतना घबराती क्यों हो ? जिन्दगी जीने के अपने अपने तरीके हैं। इन बेचारियों के पल्ले आवाम की खिदमत करना ही पड़ा है, सो वे कर ही रही हैं। यह बात दीगर है कि उनकी शोहरत की सुगंध इस तरह इतराती हुई फैल रही है।' 'लेकिन देखा नहीं इस चुनाव के वक्त ?' बन्ना तपाक से बीच ही में बोल उठी—'हम लोगों के खिलाफ इस 'नारी नवचेतना समाज' ने जहर कितना उगला था ? हमारी छवियों को उघाड़-उघाड़कर चौराहे पर टांक न दिया था, इतनी जल्दी भूल गये आप उन्हें ? ...... और फिर देखिये न, हमने तो अपना वादा बड़ी मुस्तैदी से निभा दिया है, है कि नहीं ?'— किंचित रोष से भौहें बल खा गयीं।

'यह आपकी बंदानवाजी है, बन्नाजी—कि मैं आज इस कुर्सी पर आ बैठा हूं। मैं तो बहुत ही शुक्रगुजार हूं, आपका। लेकिन मैं चाहता हूं कि यदि गुड़ देने से ही काम बन जाये तो जहर नहीं दिया जाना चाहिए। वैसे आप भी जानती हैं कि इनका धरातल भी कितना पुख्ता है, एक्स सी. एम. भी इनके साथ हैं ......'

'तो क्या हुआ, जैनसाहब ! हमारे साथ इनसे बढ़ कर लोग हैं, सी.एम. मिश्राजी है, तो सारी सत्ता साथ है न हमारे !'— तमतमाती बन्ना फिर बीच ही में कह पड़ी—'हम भी किसी से कम नहीं है। ...... ये लोग तो दिनों-दिन सर पर चढ़े जा रहे है, और हम हैं जो अब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं.... इसे सच मानिये कि इसका अंजाम अच्छा होने वाला नहीं है। यही तो वक्त है कि खड्गहस्त हो जायें हम ?'—आवेश से वह समुन्नत वक्ष हिल उठा।

'मिश्राजी तो पूरी तरह अपनी ही मुट्ठी में हैं, भाईसाहब।'— कहते हुए प्रिया की दृष्टि इतरा उठी। वे भी नहीं चाहते कि एक्स सी. एम. इस 'नारी नवचेतना समाज' को ढाल बना कर अपनी राजनीति के विष बुझे तीर सत्ता और शासन पर इस तरह चलाते रहें। ऐसे तो इन लोगों का प्रभाव बढ़ता ही चला न जायेगा ?

'उस दिन देखा न आपने, अपने ही खेमे के कार्यकर्ताओं को उस गाव से

कितना बेआबरू होकर भागना ही पड़ा था। मीटिंग तक न होने दी गांव वालो ने ?—साले वैसे भी तो मर ही रहे हैं, दो बात हमारी भी सुन लेते तो क्या होता ? पर नहीं, इन्हे तो जो डबल रोटियों के पैकेट बांटें, उतरे-फुतर पुराने कपड़े ही सही, पहनने को जो भी दे जायें तो उन्ही की बात सुनेगे वे।

'लेकिन हमारे शासन ने सड़क निर्माण के लिए मिट्टी खोदने, गिट्टी फोड़ने, पाठशाला और पचायत घरो को बनाने, अनेक बांधों पर काम करने जैसे राहत कार्य खोल रक्खे है—वहाँ जाकर काम करना नही चाहते हैं ये लोग। कहते हैं—मजदूरी के लिए जो धान मिलता है, वह हाथ पैर चलाने के लिए बहुत कम है और वह भी नियमित और वक्त पर नहीं। सालो को कहते हुए शर्म ही नही लगती कि उनकी बहन-बेटियो की इज्जत पर अधिकारी और टेकेदार डाका डालते रहते हैं। कोई पूछे उनसे कि क्या ऐसे कर्महीनों की भी कोई इज्जत होती है ?...... और जब तुम नियत समय पर ठीक काम नहीं करोगे, तो तुम्हें अनाज देगा ही कौन ? ......और उस पर भी तुर्रा यह कि मस्टर रोल में फर्जी नाम लिख लिखकर अधिकारी लोग लाखो रुपया हड़पते रहते हैं, पर ...' और अधरों पर फैली वह मुस्कराहट बुझ गयी।

'भई बन्नाजी, करें भी क्या हम ? इस जनता के तेवर ही कुछ ऐसे ही हैं। देखा न उस दिन राहत कार्यों का जायज़ा लेने पी.एम. स्वय पधारी थीं तो फटेहाल महिलाओं के उस झुण्ड के झुण्ड ने उन्हे घेर कर अपनी फरियाद की। सुनकर उनका चेहरा आक्रोश से तमतमा गया था। पास ही खड़े सी एम. के लताड़ से ओठ ही सूख गये थे उस दिन।'—जज साहब के होठों से लाचार शब्द निकल ही पड़े।

'यही तो, और वह एक्स सी. एम. का बच्चा पी. एम. के दूसरी ओर खड़ा-खड़ा मंद-मंद मुस्करा रहा था। उसकी वह भोली-भाली शक्ल, मैं कहती हूं, जैनसाहब—बहुत ही जालिम है। नही है क्या ?'

और जैन निरुत्तर से सुनते रहे। लेकिन प्रिया ने तपाक से कह दिया 'भाई साहब इन लोगों को जितना जल्दी हो सके, हमें सबक सिखा देना चाहिये।'

'अवश्य, अवश्य प्रिया—वह भी हो जायेगा। इतनी आतुर क्यों हो तुम लोग?'—और वह उसका मुकोमल हाथ अपनी अंजली में ले सहलाने लगा, आँखों में आँखें डाले तब बोले :'तुम लोग निश्चिंत रहो। मैंने जो प्लान बनाया है, उसकी परिणति कल रात ही हो जायेगी। बस!'

'है, सच भाईसाहब?'

'बिल्कुल सच, सोलह आने सच मेरी प्रिया रानी! तुम लोग यह सोचती होगी कि मैं अपने वादे से मुकर गया हूँ? ऐसा मुझसे कभी हो सकता है, भला? अपने केन्द्रीय कारागार के चीफ वार्डर को सभी कुछ समझा दिया गया है, और चार शातिर इसके लिए तैयार कर लिये गये हैं'—रहस्य की गाठ खोलते हुए वे ओठ धीरे में मुस्करा दिये।

'कैसे होगा यह सब जैनसाहब?'—बन्नो फिर भी कुछ चिंतित भाव से बोली ही थी कि इतने में कॉलबेल झनझना उठी। अर्दली लपाक से अंदर आ पहुँचा, झुककर प्रणाम करते हुए बोला—'वे लोग आ गये हैं।'

'अच्छा, आ गये?—आने दो न यहीं, सभी घर ही घर के तो हैं।'

अर्दली बाहर निकलते ही दो जनों को साथ ले फिर चैम्बर मे घुम आया। दोनों ही कुछ झुक कर नमस्ते की मुद्रा में खड़े हो गये।

'तैयार हो न कल रात के लिए?'—उस क्रूर कुटिलता के होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट फैल गयी।

'जी,

'जानते हो, करना क्या है?'

'हुजूर, भरोसा रखे हम पर। यह और मैं वही नाटक खेलेंगे। गिड़गिड़ाते हुए अपनी औरत की डिलीवरी के लिए इस तरह से मिन्नतें करेंगे कि दिल पसीज ही जाये। और······फिर उसी जोंगा जीप में बिठाकर वहीं ले ही जायेंगे ·····और ·····और खूब ऐश करेंगे, हुजूर!'—और उन रतनारी आँखों ने नाचते हुए आगे फिर सब कुछ कह दिया।

'हाँ, तमाशा पूरी तरह खत्म हो ही जाना चाहिये समझे? आगे—कोर्ट आदि में सब निबट लेंगे।'—बैठे बैठे उसकी पीठ ठोकते हुए जज साहब

कह उठे। 'अच्छा, अभी तुम लोग जाओ...... परसों सवेरे तक के लिए अलविदा !'

'जी'— वाअदव झुकते हुए अर्दली के साथ वे दोनों बाहर निकल आये। वसा और प्रिया ने तब संतोष की सांस खींची, मुस्करा भर दिया। वे भी एक दूसरे की ओर देखते हुए धीरे से खड़ी हो गई तो जैन ने लपक कर धीरे से प्रिया को अंक में भर लिया—'अब तो हुई न तसल्ली ?...... पर, आज रात तुमको तो यहीं रुकना है, प्रिया रानी ! ...... नहीं जानती तुम उस दिल की हालत जो अपनी बीवी के मरने के बाद कितना गमगीन रहा करता है ? ...... और मुद्दत के बाद तो आज आई हो, तुम लोग। फिर ऐसे और इस बेरहमी से—इस दुखी दिल को क्यों तड़पा रही हो ? ...... एक रात तो कुछ सुकून मिले'— और वह मिन्नत भरी आवाज धीरे-धीरे फुसफुसाहट में बदल गयी।

'नहीं भाईसाहब, आज नहीं, वादा तो पूरा हो जाने दीजिये न ?' फिर देखिये, यह नाजनीन पूरे एक हफ्ते तक आपकी ही खिदमत में रहेगी। ...... सिर्फ, एक दिन ही की तो बात है, देखिये, सब्र का फल हमेशा मीठा होता है'— खिलखिलाकर हँसते हुए उसने उन विलासातुर बाँहों की जकड़ से अपने को मुक्त कर लिया।

नत्थू जैन जैसे आसमान से धरती पर आ गिरा। एक फलसफाई नजर से खोया-खोया सा उन कामिनियों को देखता रहा, और वे चुलबुली ढिठाई से इठलाती—'नमस्ते !' कहकर धीरे-धीरे बाहर निकल आई।

जैन भी चुम्बक से खिंचा हुआ सा उनके साथ बाहर निकल आया, चेहरे पर फैली वह फीकी मुस्कराहट, विदा लेते हुए उन कदमों को थोड़ी देर तक चूमती रही।

और ...... वह फिर कमरे में लौट आया, अपने जीवन की निशा सहचरी ह्विस्की की बोतल अपने प्यासे अधरों से चूमने लगा। कुछेक घूंट हलक के नीचे उतरे तो फिर दरवाजे की ओर देखा— अब सब सुनसान है।

'गई न, जाओ सब, हरामी हो न ? ......हरामजादियो, मुझे अब किसी की आवश्यकता नहीं है किसी की भी आवश्यकता नहीं...... मैं मैं अब जज

हूँ, समझी ? ...... हाईकोर्ट का जज ! ... किस मुद्दा से कम हूँ, अब ?'
—और अनायास ही नेत्र मुंद गये।

.. ... मेरी अहमियत को चैलेंज ही कौन कर सकता है, अब ?" मेरी हाँ हाँ मेरी ही ...... *यह न्यायपालिका इन बौने राजनेताओं से तो कितनी* ऊपर है...... कि देश का हर अखबार इसकी इबादत में हर रोज चंद सतरें तो लिखता ही है ...... मैं उसका जज हूँ ...... तुम्हारा वह मुख्यमंत्री " देखा नही, सब मेरे दरवाजे पर दस्तक देते है अब ! ...... हें हें हें हें ... " बैठक ठहाके से गूंज उठती है।

...... मेरे इशारों पर ... इन इशारों पर ' " इस वक्त के य सभी बादशाह...... नाराज हैं ये ..... कैसे नाचते रहते हैं, प्रिया देखती हो न ?

मैं हूँ जज ..... जज नत्थूसिंह " सिंह हूँ न ? प्रिया मेरी प्रिया ...... लौट आओ, लौट आओ न..... " आ ऽ ऽ ओ आ ऽ ऽ ऽ कहते कहते अपने दीवान पर, उनका बदन गठरी की तरह लुढ़क गया।

तेईस

नेहरू बाल उद्यान के सामने वाली सड़क के मोड़ पर थ्रीव्हीलर आकर रुका। एक महिला तुरंत नीचे उतर आयी और दूसरी ओर जाकर अपनी सहेली को भी उसने सावधानी से उतार लिया। टेक्सी को पैसे देकर वे दोनों धीरे-धीरे साधना नर्सिंग होम के द्वार पर आ पहुँची। काँच के स्प्रिंगदार कपाट को हल्का-सा धक्का दे दोनों ही अंदर आ पहुँची।

महिला रोगियों से घिरी डॉक्टर ने उन्हें अन्दर आते देखा तो तुरंत कुर्सी छोड़ अगवानी के लिए उठ आई। बोली—'ऋता बहिन, तुमने फोन क्यों नहीं किया, मुझे ? एम्बुलेंस आ जाती। आजकल बड़ी बेमुरव्वत हो रही हो, क्यों ?'—मुस्कराहट उन सुकोमल अधरों पर फैल गयी तो वह चेहरा और भी कांतिमय हो उठा।

'तुमसे, और फिर बेमुरव्वत ! बहुत खूब !'—आराम कुर्सी पर रेजी को बिठाते हुए उसने धीरे से फुसफुसा दिया। वह भी उसके पास एक कुर्सी

खीचकर बैठ गयी। डॉक्टर की चुहलभरी निगाह ने एक बार डेज़ी को ऊपर से नीचे तक देखा, और वह तुरंत उठ खड़ी हुई। गले मे झूलते स्टेथेस्कॉप को कान में लगाकर चंद मिनिटों तक डेज़ी के वक्ष का परीक्षण करती रही। तब रक्तचाप की जाँच की, फिर उसने ऋता को ऑपरेशन थियेटर की ओर चलने का संकेत किया। वह फिर से अपने मरीजों को निपटाने में लग गयी। डेजी को पहियेदार आर्मचैयर पर बैठाकर नर्स जब उसे अंतरंग परीक्षण कक्ष की ओर ले चली तो ऋता ने पूछा—'मैं भी जाऊँ ?

'चलो न, मैं तो आ ही रही हू'—उत्तर मे मुस्कराहट अधरों पर थिरक उठी। ऋता तुरंत डेजी के पीछे हो ली। महिला रोगियों की भीड़ से किसी कदर निपट कर डॉक्टर अपनी सीट से उठ खड़ी हुई। अपने डॉक्टर पति की ओर किसी भेदभरी मुस्कराहट से झाँका तो वह भी मुस्करा उठा। डॉ. साधना मित्रा फिर तेज़ कदमों से डेज़ी को देखने तुरंत चल पड़ी, पहुँची तो ऋता की स्वागत भरी निगाह मुस्करा उठी।

'कैसा महसूस हो रहा है, डेज़ी बहिन ?' - अस्फुट अधर मुस्कराये।

'ठीक हूं, रितु बोली, तो चली आयी हूँ।'

'अच्छा ही किया तुमने। आओ, यहाँ लेट जाओ अब।'—संकेत पाते ही उस कक्ष की एकल शायिका पर ऋतु ने डेज़ी को लेजाकर लिटा दिया। डॉक्टर ने उसकी कोख दा एक जगह से दबाकर गर्भ की अच्छी तरह पड़ताल की। बोली—'आज की रात या कल सुबह तक ही ...... नया मेहमान ...... !' और वह मुस्करा दी।

'कल तो दो अक्टूबर है न !'—सहसा ऋता चहक उठी। 'तभी इस युग का एक और गांधी जन्म ले रहा है—डॉ. मित्रा कहते कहते उल्लसित हो उठी।

'सच ?'

'लगता तो यही है।'

'तब तो आने वाले कल की सुबह का इन्तजार करें न हम ?'—ऋता ने डेज़ी के प्रशस्त ललाट को उठकर धीरे से चूम लिया। डॉ. मित्रा हसरत भरी निगाह से डेज़ी को क्षण भर ताकती रही, बोली—'बड़ी सौभाग्यशाली हो, बहिन !'—और कहते ही न जाने क्यों वह मुखमण्डल फिर मुस्करा न

सका। दृष्टि फिर स्थिर होकर ऊपर की ओर ताकती रही। ऋता ने देखा तो न जाने क्या कुछ भाँप गयी। बाँहों में भरते हुए बोली 'मित्रा बहिन, चलो, आउटडोर लौट चलें। जिन्हें छोड़ आई हैं, वे इन्तजार कर रहे होंगे न?'

डॉ. मित्रा तुरंत सजग होकर फिर मुस्करा उठी—'शैतान!' 'हूँ ऽऽ ऊँ, अब शैतान हूँ, मैं। एक तो सेवा के लिए सचेत किया और उल्टे उस पर यह डाँट? भई, अपना अपना भाग्य है, यह।'

'सच! ऋता सच। अपना अपना भाग्य है ''' भाग्य. ''' तुम सब सही कह रही हो। अच्छा, तुम लोग यही आराम करो। एकाध घंटे बाद मैं फिर लौट आऊँगी।'

'घंटे बाद?'

'चिन्ता न करो, दाई अम्मा बीच-बीच में आती ही रहेंगी। आज इस प्रतीक्षा कक्ष में बैठी हो तो प्रतीक्षा करना ही है, अब।'— उसके कन्धे पर हल्की-सी थपकी दे वह तुरंत बाहर निकल आई।

सीट पर आकर बैठी ही थी कि डॉ. मित्रा ने कुर्सी उसके पास खिसकाते हुए धीरे से पूछा—'ऑलराइट?'

'कल तक की प्रतीक्षा है'—सायास मुस्कराते अधर थिरक उठे। वह कुछ क्षणों के लिए मौन हो, अन्तरंग रोगियों के फार्मों को देखने मे जैसे व्यस्त हो गयी। पर लग रहा था— जैसे जी कुछ उचट-सा गया है—डॉ. अरुण मित्रा ने कनखियों से यह सब भाँप लिया। वे अपने पुरुष रोगियों की उस भीड़ को धीरे-धीरे निपटाते रहे, और दोपहर हो गयी। एक का टकोरा कब बजा, किसी को ध्यान ही नही रहा। इस व्यस्त जिन्दगी को विश्राम ही कहाँ? ... फिर इस आणविक युग मे रोगियो की भीड़ की कमी कहाँ है?

तभी टनननन करती लम्बी घंटी अस्पताल के अहाते में झनझना उठी। डॉ. मित्रा जो एक बूढ़े बाबा से कुछ पूछ रहे थे, बॉलपेन बंद करते हुए बोले—'जाओ बाबा, अब ले लो जल्दी ही दवाइयाँ, नहीं तो कम्पाउन्डर चले जायेंगे।' और तभी वह निगाहें अपने चश्मे के सुन्दर काँचों के पीछे से मिसेज मित्रा की ओर दौड़ पड़ी, जो टेबुल पर फैले कागजात समेटते हुए नर्स को एक फाइल थमा रही थी। मन तभी किसी अज्ञात करुणा से भर

गया ... जीवनसंगिनी - जो है वह ... रात दिन कितने व्यस्तता से गुजर रहे है कि कुछ पता ही नही रहता। सह ... योगिनी है यह सचमुच मेरी - और करुण हिलोरों से मन झकझोर गया। सोचा—हमारे विवाह की ये चार वर्ष गांठें इस तरह बिना किसी उत्साव-उल्लास के चुपचाप खिसक गयी है, मिश्रा!' फिर मन ने जैसे अपने ही से पूछ लिया—'लेकिन, साधना की जिन्दगी में फिर भी कमी किसी बात की है—'रहने के लिए खुशनुमा यह मकान, सेवा के लिए यह भरा पूरा अस्पताल, और सबसे बढ़कर इस मलिका का मुक्त जैसा सहचर। दो देह लेकिन एक ही प्राण हैं, हम। फिर भी एक रिक्तता न जाने क्यों पसर कर इस वातावरण को सूना-सूना बना रही है ... लेकिन ... लेकिन यह सब हमारे हाथ जो नही है—हम दो तो हैं, पर, हमारे वे दो अब तक कहाँ हैं?

और वह मन ही मन विद्रूप हँसी हँस उठा। सोचा—एक भी तो नही है। देखते हैं कल का सवेरा हमारे लिए कौन-सी सुखद सौगात लाता है? ...... आखिर जो भी आयेगा, होगा तो हमारा ही प्रतिरूप न?

यह सोचते-सोचते वक्ष तुरंत संतोष की साँस से फूल उठा। पलकें अनायास ही आनन्द से पुलक उठीं। तभी मिसेज मिश्रा ने कहा—'चलना नहीं है, क्या?'

'जरूर, क्यों नही?'—और तपाक से सीट छोड़कर वह उठ खड़ा हुआ —'प्रतीक्षा कक्ष ही न?'

'तो तुम कहाँ की सोच रहे थे, अब तक?'—मुस्कराती उस दृष्टि ने दुलार लिया।

'वहीं तो ...... मैं वही के लिए कह रहा था। आओ, हमें काफी देर भी हो गई है। ऋता क्या सोचेगी कि हम कितने गैर-जिम्मेदार है?

'हम नही ; केवल तुम ही।'

'अच्छा भई, मैं ही सही'—और बतियाते हुए वे रोगी के समीप आ पहुँचे।

'कैसे हो डेज़ी बहिन?'—डॉ. साधना ने उसका दाहिना कपोल धीरे से थपथपा दिया।

'ठीक तो हूँ' और स्वयं ही खिलखिलाकर हँस दी। तभी नर्स और दाई अम्मा भी आ गईं। अलमारी खोल, सफेद साड़ी और पेटीकोट निकाल लिया, और पर्दे के पीछे टेबुल पर छोड़ आई।

'माली नहीं आया अब तक, सुनीता ?'

'गुलदस्ता बनाने गया है, मैडम !'

और वे दोनो भी वहीं केन चेयर पर बैठ गये। ऋता ने युगल मूर्ति को इस तरह बैठे देखा तो मन ही मन मुस्करा उठी।

'क्यों ?··· आज कुछ विशेष ही खुश नज़र आ रही है, ऋता बहिन ?' —डॉ. अरुण भाँपते ही बोल उठे। तभी डेज़ी को नर्स ने उठाते हुए धीरे से कहा—'अन्दर चल कर कपड़े तो बदल लो न।' सुनते ही डेज़ी का केतकी के गर्भ-सा वह पीला मुँह, अपनी अलसाई आँखों में मुस्करा उठा। अपने जीवन में न जाने कितनी महिलाओं को इसी दिन के लिए, वह इसी तरह तैयार करती रही है। आज का सूरज वह खुशनसीबी उसके लिए भी लाया है। उसने अपने पीन पयोधरो से गदराये वक्ष को उड़ती हुई निगाह से देख भर लिया—मातृत्वभार से बोझिल यह आँचल उसके सौभाग्य की ही अमरता है।

सोचते ही मन आनंद से खिल उठा। धीमे कदम वह नर्स के साथ पर्दे के पीछे हो ली। सभी लोग बैठे-बैठे मुहूर्त भर उसे देखते ही रहे। मौन के उस माहौल को भी खिलखिलाती उस हँसी ने मुखरित कर दिया—ऋता बोल उठी—'कल तो दावत का दिन होगा न ?'

लेकिन साधना तो डेज़ी की उस गर्भधारिणी छवि पर मुग्ध, अपने ही में डूबी हुई थी—कि सजग होते हुए पूछा —'क्या ?'

'ओहो, कि बहिनजी कल का दिन दावत का है न ?'

'हाँ हाँ, क्यों नहीं, क्यों नहीं—यह तो अपना ही सर्वस्व है न रितु। दावत की सी छोटी बात क्यों करती हो, तुम ? बुआजी जो बनने वाली हो तो कुछ और भी तो माँगो ?'—सुनते ही ऋता का मन गद्गद् हो गया तो उठकर साधना को अपनी बाँहों में भर लिया। भाव विह्वल हो गयी, बोली—'कितना उदार हृदय पाया है, भाभी तुमने कि देवों को भी दुर्लभ है, वह।' —और मुहूर्त भर उसे बाँहों में भरे-भरे, आनंदित दृष्टि से तकती ही रही।

मन स्थिर हुआ तो बोली—'भाभी मेरी, डेजी भी तो तुमको तुम्हारा ही सर्वस्व दे रही है न।' मिसेज मित्रा के मुस्कराते नेत्रों ने जैसे पूछ लिया—'क्या ?'

'कि भाभी मेरी, यह सब कुछ तो तुम्हारा ही है न। संशय की तो कोई गुंजाइश ही नहीं है, अब। गवाह हाजिर हैं, चाहे तो पूछ देखो न'—और वह कनखियों से डॉ. अरुण मित्रा की ओर देखकर फिर मुस्करा दी। चहकती हुई बोली—'अरे भई धान धान तो अपना ही है, वह किसी कोठी मे भरने से उस कोठी का थोडे ही हो जाता है।'—और एक हल्का-सा अट्टहास उस प्रतीक्षा कक्ष के सीमित वातावरण को आन्दोलित कर गया। आलिंगन पाश मे बंधी-बंधी वह देह भी आनंद से सिहर उठी। वह थिरकती दृष्टि उस प्रीति भरी चकोर निगाह से विचुम्बित जब टकराई तो हृदय की उत्फुल्ल भावना ने उसकी अगवानी की। लगा कि वह सारा रहस्य अब आकार ग्रहण कर चुका है—एक मीठे यथार्थ का।

'वैसे तो आज डेज़ी रानी ही जीत रही है, रितु ! लेकिन क्या यह जीत मेरी नहीं है ?'—उमगभरी वाणी धीरे से बोल उठी।

तभी अन्दर के प्रकोष्ठ से नर्स के साथ श्वेत परिधान में सुशोभित डेज़ी ने मुस्कराते हुए प्रवेश किया।

'पुण्य फल तो यह आप ही का है, बहिन !'—स्नेहावेग से साधना के पैर पर झुकते हुए डेजी ने कहा तो उसने उठकर तपाक से हृदय से लगा लिया। दृष्टि फिर दृष्टि से मिली, आनंद और उछाह से सजलाई, भरी-भरी-सी निर्निमेष एक दूसरे को दो एक क्षण देखती रहीं।

ऋता ने जब देखा तो वक्ष भावना से गहगहा उठा। उच्छ्वसित-सी फुसफुसा उठी—'न जाने क्यों, आज ईर्ष्या हो रही है तुम लोगों से। और ये आँखें किसी दूरागत वेदना की छाया से भर आईं। डॉक्टर अरुण ने जैसे यह भाँप लिया या देखा या सुना ही नहीं। आने वाले कल की मधुर कल्पना मे खोये खोये, संगमरमर के बुत की तरह बैठे, स्थिर दृष्टि से यह सब तकते रहे। फिर सिगरेट निकाली, सुलगाकर कश खींचा तो धुएँ की लहरें लहरा उठीं।

तभी माली ताजे गुलाब के फूलों का महकता गुलदस्ता लिये प्रतीक्षा कक्ष में घुस आया, कोने में रक्खी तिपाई पर रखे चमचमाते पीतल के फूलदान में उसे सजा दिया। सभी जैसे फिर सजग हो गये। साधना ने तब तक डेजी को उसकी शायिका पर लेजाकर बैठा दिया। मसनद से पीठ टिकाये जब वह बैठ गयी तो हसरत भरी उस निगाह ने उसे एक बार देख भर लिया। वह फिर अपनी आराम कुर्सी पर आकर बैठ गयी। बोली, कल ही दो अक्टूबर है – जन्म का दिन अच्छा ही रहेगा—राष्ट्र के गौरव और प्रकाश का दिन!'

'लेकिन भाभी, यह न समझियेगा कि कल आने वाला हर मेहमान कोई मोहनदास करमचंद गांधी ही होगा'—ऋता बीच ही में बोल उठी।

'गांधी न सही, कस्तूरबा ही सही—अपने लिए कोई फर्क पड़ने वाला नही है, रितु!'—डॉक्टर अरुण जो अब तक किसी भाव-समाधि में लीन थे, सुघड़ ग्रीवा उठाकर बोल उठे। 'लेकिन भैया, वा तो दो अक्टूबर को कभी पैदा ही नही हुई थी। क्या यह बात भी भूल गये आप? फिर चिकित्सा विज्ञान के लोग तो पुनर्जन्म को मानते ही कब हैं—क्या आप मानते हैं, कि पुनर्जन्म भी हो सकता है?'

'ठीक कहती हो बहिन। किसी देह का न सही, लेकिन मनुष्य की उस अमर कामना का पुनर्जन्म भी नहीं होता है क्या—सेवा, स्नेह, त्याग और उसके लिए संघर्षमय बलिदान की संकल्पवती कामना तो 'युगे युगे संभवामि' होती है न?—उसका पुनर्जन्म तो होता ही है, तभी तो क्रान्तदर्शी महा-पुरुष जन्म लेता है। यह बात दूसरी है कि कोई किसी भले घर में जन्म लेकर भी 'बा' की तरह कारागार ही मे मरता है.......और, अपना यह चिकित्सा विज्ञान तो बहिन, अभी भी कितना अधूरा है कि कैंसर और हृदय रोग लाइलाज से हैं। विज्ञान की इस परखनली में मृत्यु का अंधेरा कभी बंद हो पायेगा—यह सब कितना अनिश्चित है अभी।'—कहते कहते वाणी किसी अनिश्चय से भर उठी।

'जन्म के इन क्षणों मे भी मृत्यु का भय? कैसा चिन्तन चलने लगा हम लोगो के बीच? फिजूल है यह सब। 'संभवामि' की ही बात सोचिये न? आओ न, हम सब अब ऊपर ही चले, खाने का वक्त बीत रहा है'—कहते ही डॉ. साधना मित्रा तुरंत खड़ी हो गयी। सभी उद्यत हो ही गये थे कि ऋता

ने कहा—हमारी 'संभवामि की माँ' के लिए क्या होगा ?—और तीनों क्षण भर ठिठक गये।

'डेज़ी रानी तो आज दूध और दलिया हीं ले सकेंगी। कुछ फल-वल भी। ऐसा क्यों न करें हम - सारा खाना यहीं मंगवा लेते है'—सोत्साह कहते ही उसने कॉलवेल का बटन दबा दिया। वे फिर अपनी अपनी सीट पर जम गये थे कि मेहरी ने प्रवेश किया।

'सब का खाना यही होगा। आप लोग टेबुल पर तुरंत तश्तरियों आदि सामग्री सजा दें। डेज़ी रानी का खाना भी तैयार है न?'

'जी हाँ, हम अभी लाय रहे'—कहती हुई मेहरी लौट गयी। दस-बारह मिनिटों ही में सारी व्यवस्था हो गयी तो सभी इत्मीनान से खाने पर आ जमे और दौर चलता रहा। डेजी भी कॉर्नफ्लेक, दूध आदि लेती रही। फ्रूट ब्रेड के पीसेज के कौर मीठे दूध के साथ गले से उतरते रहे। सारा वातावरण शान्त। केवल यदाकदा चम्मच तश्तरियों को खनखनाते रहे। सभी अपने-अपने कल्पनालोक में खोये से खा-पी रहे हैं। दौर खत्म हुआ तो तृप्त-भाव से वॉश बेसिन पर आ सफाई कर फिर अपनी ही जगह लौट आये।

मेहरी और उसके दो अन्य सहयोगियों ने बड़ी चतुराई से बचा सामान रसोईघर में पहुँचा दिया। सफाई हुई तो डेज़ी ने ऋता को संकेत से बुलाया। वह तुरत आरामकुर्सी छोड़ उसके पास पहुँची। आँखों ने आँखों से पूछा—'क्या?'

'हल्की हल्की टीस उठती है.........कभी कभी।'

साधना की सजग चेतना ने वह फुसफुसाहट ताड़ ली तो वह भी उठ दौड़ी।

'लेट जाओ न अब।'—फिर कलाई में बँधी टाइमास्टर देखती हुए बोली —'अभी तो अपराह्न के चार ही बजे हैं। रात भर भी नहीं निकालने दोगी क्या?'—और वह मुस्कराहट अधरों से फैलकर समूचे चेहरे पर दीप्त हो उठी। उसने फिर उसे लिटाकर पेट अंगुलियों से सहलाते हुए कुछ टटोलते हुए कहा—'नहीं, नहीं, चिन्ता की कोई भी बात नहीं है। ऐसा तो होता ही रहता है न? मेरी रानी की सेवा में आज रात भर जागूँगी, यहीं बैठी

रहूँगी'—सुनहरी फ्रेम के चश्मे में लगे स्वच्छ काँचों के पीछे वह उत्फुल्ल दृष्टि चहकती हुई मुस्करा उठी।

और तब डॉ. अरुण के समीप जाकर उसने कुछ फुसफुसाया तो वे उठकर अपने काम पर चल दिये। ऋता और साधना अपनी आरामकुर्सियाँ उस शायिका के समीप ही खींच कर बैठ गयीं। डेज़ी को विनोद भरी बातों से बड़ी देर तक बहलाती रहीं। प्रसव के वक्त महिलाएँ किस तरह की हरकतें करती रहती हैं—उनके विषय में अनेक वाकयात डॉ. साधना ने बहुत ही मनोरंजक लहजे मे सुनाये। डेज़ी का अनुभव भी इस दिशा मे कुछ कम नही था। ऋता इन दोनों की बातें सुन-सुन कर कभी आश्चर्य से ठठाकर हँस पड़ती। वे विस्फारित पुतलियाँ पूछतीं—'क्या ऐसा भी होता है?'

'सच, वह शीरीं उस रोज दर्द से बेजार चीखती-चिल्लाती अपने शौहर को भद्दी से भद्दी गालियाँ देती रही थी—जब तक कि शिशु को हम उस कोख से बाहर नही ला पाये। शिशु तो पर्याप्त पुष्ट और फूला हुआ था सो ऑपरेशन से ही बाहर आ सका। यह इश्क...... विवाह और यह जानलेवा दर्द....सभी कुछ सहती है हमारी बहनें। आदमी पल्ला झटककर किस तरह किनारे खड़ा हो जाता है....कभी कभी संगदिल होकर तो कभी पीड़ा से विसूरता भी है। माँ जन्म तो मनुष्य को देती है, पर जब वही शैतान बन जाय तो वह भी क्या करे?'—डॉ. साधना का वक्ष हल्के से निश्वास से फूल उठा। ऋता ने देखा तो मुस्करा उठी। बोली—'तुमको भी ऐसा अनुभव अपने जीवन मे हुआ है क्या भाभी?'

'नही, नही ऐसी बात नही है—मुझे ऐसा अनुभव न कभी हुआ है और न होगा ही। मैंने तो जो देखा भर है, वही कह रही हूँ। डॉक्टर साहब ने उसके शौहर को फार्म थमाते हुए कहा था कि दस्तखत जल्दी कीजिए न, ऑपरेशन होगा, नही तो किसी न किसी की मौत हो जायेगी।

'लेकिन वह कमबख्त टस से मस नही हुआ; न दस्तखत ही किये। उधर इस फरहाद की शीरीं दर्द से मरी जा रही थी। ऑपरेशन तो आवश्यक था, और करना ही पड़ा, नही तो दर्द के साथ ही साथ जिन्दगी से छुटकारा मिल जाता।

शफाखाने से रुखसती के फार्म पर शीरीं ने दस्तखत किये तभी पाँच मिनिट तक अपनी बीती हुई वह इश्क की दास्तान सर्द लहजे मे सुनाती

रही। बोली—'डॉक्टरसाब, अब तो यही मेरी जिन्दगी का जगमगाता चिराग कभी बनेगा तो बनेगा'—और अपने ललकते अधरों से शिशु को उठाकर चूम लिया। कैसे ख्वाब देखती है हम, रितु ?'

ऋता अपनी फलसफाई नजर से उन दोनों को देखती हुई मुस्करा उठी। डेज़ी ने जब साधना की ओर देखकर मुस्कराया तो वह भी बिना मुस्कराये नही रह सकी।

'फिर हम लोग प्रेम करते है, प्रेम के बिना जैसे हम जीवित हा नहीं रह सकते। नही जानते हम कि यह वरदान बनेगा या अभिशाप। यदि वह वरदान ही बना रहे जीवन भर तो हम सभी अभिशाप सीता की तरह झेलने के लिए तैयार रहते है न ? बस, पतंगे की तरह, प्रेम के प्रकाश की इस जगमगाहट पर मोहित हो, मर मिटने की मुराद लिये, जिन्दगी की इस रपटीली राह पर चलते रहते है। और 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'—कहता यह जमाना क्या वाकई हमें आज श्रद्धा की दृष्टि से कभी देखता भी है, रितु ?

'आज स्थितियाँ बदल रही है तो उनके संदर्भ भी बदल ही रहे है, लेकिन······ लेकिन करोड़ों भारतीय नारियाँ अब भी उस विश्वास की जिन्दगी नही जी रही क्या ?'—कहते कहते डॉ. साधना मिश्रा अपने किसी दूर अतीत मे डूब गई। वह पथराई-सी दृष्टि कक्ष की छत की ओर उठकर कुछ क्षण के लिए जैसे वही चिपक गयी। उभरे हुए वक्ष का निश्वास धीमे से निकलकर वायुमण्डल को जैसे सर्द बना गया। ऋता और डेजी ने यह सब देखा तो स्तब्ध रह गयी— कितनी वेदना सचित है इस मन मे।

सचमुच नारी के अन्तरतम के पीयूष-स्रोत से घूंट दो घूंट पीकर ही यह जमाना अब तक जीता रहा है। क्या यह झूठ है ? ······ सोचते हुए ऋता धीरे से बोल उठी, 'पर मेरी साधना रानी तो इस दिशा मे बहुत भाग्य-शाली हैं, मेरे अरुण भैया-सा प्रियतम जो मिला है, इन्हे ! ··· ··· इतना निष्कपट व्यक्तित्व जो अपने लघुत्व मे भी इतना महनीय है। फिर भी सीमा तो हर एक की होती ही है, असीम तो एक ही है न ?'—और उसने उठकर, बड़े स्नेह से साधना के मुँह को अपनी अंजली मे ले फिर पूछा—'मुझे आज सच सच बतलाना, तुम्हें मेरी शपथ है, भाभी !' कि मेरे भैया के प्यार मे तुम्हे क्या कभी कमी महसूस हुई ? मैं जानती हूं—इस मन की किसी गह-

राई मे वेदना अब भी टीस रही है""""तुम्हें सौह है, भाभी ! आज ही अपने मन की बात बतला दोगी तो मेरे मन का अंधेरा भी छंट जाएगा। मैं सचमुच तुम्हारी बहुत ऋणी होऊँगी।'—और उसने झुक कर उसके मुँह को चूम लिया। साधना तो पहले ही से भाव-विह्वल थी, इस स्नेहिल चुम्बन ने उसे और उद्दीप्त कर दिया—'रितु ! कैसी बात पूछ रही हो तुम? """"अरुण तो मेरे कलेजे का टुकड़ा है, टुकड़ा। तंत्री, नाद, कवित्त रस, सरस राग, रतिरंग'—सभी में हम एक प्राण, एक मन हो डूबते रहे हैं, आज तक। अरुण से इतर मेरे लिए इस जीवन मे कुछ भी नहीं है—मुझे उसके उत्कट प्रेम का गहरा अहसास जो है, रितु !

'और मैं यह भी सब जानती हूँ—जानती हूँ कि मेरी डेज़ी बहन को भी वह उसी गहराई से प्यार करता है, और करता ही रहेगा। लेकिन एक बात अवश्य है कि यह' " और वह वाणी एक क्षण स्तब्ध आँखों से ऋता को तकती रही।

'वह क्या, मेरी रानी बहिन ?'—ऋता के स्नेह की थपकी धीरे से उस कपोल पर फिर लगी जो उसकी अंजली मे अब भी विद्यमान थी।

'यही कि ऐसा निश्छल और रागदीप्त प्रेम मेरी चेतना पर अपने आप निछावर हो गया है। मै तो सचमुच ही इसके लिए अपने को सौभाग्यशाली मानती हूँ।'—और वे पुतलियाँ फिर स्नेह के जल में चमकीली मछलियों-सी तिरने लगी। ऋता ने झुककर उन्हें तुरंत चूम-चूम लिया। डेज़ी तो सुनते ही उठ बैठी। पलंग से उतर कर साधना को धीरे से बाँहो में भर लिया, आँखे उसकी भी सजला गयी, वाणी मौन और मुग्ध—साधना के चेहरे को भीगी-भीगी दृष्टि से तकती रही। लेकिन साधना तुरंत सजग हो गयी। डेज़ी के भावोद्वेलित मुख-मण्डल को चूमते हुए कहा—'इस तरह पलग से उतरो नहो, जननी हो तुम। मेरे ही शिशु की माँ हो, डेज़ी बहन !'—और उसने उसे बाँहो मे भरकर धीरे से शायिका पर फिर लिटा दिया। ऋता ने आज पहली बार देखा कि कितनी गरिमामय छवि हो सकती है नारी की कि निहारो तो धन्य हो उठो। उसे सुचित्रा की याद बरबस हो आई। एक गहरा उच्छ्वसित निश्वास अपने आप उस वक्ष को उभारकर शात हो गया। मुँह झाँपता अंधकार कक्ष पर अपना रंग जमा रहा है। साधना उठी और सभी स्विच ऑन कर दिये। ट्यूब लाइट के

दूधिया प्रकाश से कक्ष भर गया। कॉलबेल के बटन पर अगुली रखी ही थी कि साधना ने देखा कि मेहरी अंदर आ रही है।

'कॉफी ले आऊँ ?'

'हाँ, पर डॉक्टर साहब कहाँ है ?'

'वे तो तारा नर्सरी गये है।'

'अकेले ही ?—कुछ कह गये थे ?'

'नही—आयंगर साहब और दत्ता साहब भी गयेल। कहि रहेव कि रात का खाना भी वही होगा।'

'और हम ?'—ऋता ने बीच ही में पूछ लिया।

'आप के लिए तो खाना बन ही रहा है न मालकिन। मैं अभी कॉफी भिजवा रहिव।'—कहती हुई वह फिर लौट गयी।

'बड़ी मुँह लगी है यह, भाभी ? कौन है, यह ?'

'जमादारिन थी, नर्सिंग होम मे सफाई वगैरह देखती रहती थी। नरगिसी कोफ्ते और मटर-पनीर की सब्जी वगैरह अच्छा बना लेती है तो मैंने ही मैस का इन्चार्ज बना दिया है इसे।

'हूँ, तभी।'

'तभी क्या, रितु रानी ! आज तो रात ही काली करवायेगी यह डेजी की बच्ची। कॉफी पीते रहो और······ रात को उजागर करो। कल तक सुबह होगी ही, होगी न सुबह तो ?'—डॉक्टर साधना ने अपने मरीज का ललाट फिर उठकर चूम लिया। बोली—'दर्द तो नहीं हो रहा है, अब ?'

और तीनों धीरे से ठहाका लगाकर हँस पड़ी।

'सुबह तो कल होगी ही, चाहे मैं मरूँ या जिऊँ, बहन !' डेज़ी ने खिलखिलाते हुए कहा।

'हूँ, बड़ी हवस है मरने की " हूँ ऽ ऽ। कलमुँही कहीं की। फिर हम लोग किस मर्ज की दवा है, रानीजी ?······ दस-दस वर्ष बिताये हैं यही काम करते-करते। हमारे लिए तो सबेरा तुम ही लाओगी—अब तो सवेरा ही तब

होगा, जब मेरी डेजी लाएगी।'—और डॉक्टर ने उसके गोरे कपोल पर धीरे से चुटकी काट ली तो मरीज का मुँह लज्जा से लाल-लाल हो गया।

तभी कॉफी भी आ गई। मेहरी और उसकी सहयोगिनी ने प्यालों में गर्म गर्म कॉफी घना कर ऋता और फिर साधना के हाथ में थमा दिये।

'आप भी लेंगी?'—डेजी की ओर देखते हुए मेहरी ने पूछा। 'नहीं जी, इसे नहीं। इससे हमारी कुट्टी है, आज। जब तक यह सुनहरा सवेरा नहीं लाकर देगी हमें, तब तक कोई कॉफी-वाफी नहीं मिलेगी इसे'—चुहल भरी दृष्टि उसके चेहरे की ओर देखती मुस्करा उठी।

'रानीजी से पूछ कर देखो न, इच्छा हो तो वहीं कॉर्नफ्लेक और दूध ले सकती है, और वह भी एक प्याली ही—समझीं?'

'जी'—मेहरी ने डेज़ी की ओर मुस्कराते हुए देखा भर, फिर चल दी। वे दोनों तो कॉफी के कपों में जैसे लीन हो गयीं। कटे हुए सेब और जैम की तश्तरियाँ आईं तो ताजा महक से वातावरण महक उठा। देर तक गप्प लगती रही। सेब की कुछ फाँकें डेज़ी ने भी खाईं, और इस खाने-पीने और हँसी मजाक में समय ऐसे गुजर गया कि कुछ पता ही न चला। लेकिन गप्पों का यह दौर भी सुस्ताने लग गया। कोई सोफे पर, तो कोई आरामकुर्सी पर ही पैर पसारे पसारे सो गयी। और डेज़ी के फलों की तश्तरियाँ वैसे ही धरी की धरी रह गयीं। निंदियाती पलकें भारी हो उठीं तो स्वतः झिप गईं। और समय की घड़ी की सुइयाँ अपनी जय यात्रा पर निरंतर अब भी चल ही रही थीं कि दो के टकोरे टनटनाये। आराम कुर्सी पर ऊँघती डॉक्टर की आँखें उघड़ पड़ीं, हड़बड़ाती उठ खड़ी हुई। देखा—सोफे पर पसरी ऋता नींद में खर्राटे भर रही है। वह चलकर डेज़ी के पास आ गई। दाहिनी करवट पर वह अनिन्द्य सौन्दर्य कैसी गहरी नींद सो रहा है। *कितनी निश्चितता है इस नारी के मन में?*—विश्वास का धरातल पुख्ता जो है। वह टकटकी लगाये देर तक उसे देखती ही रही।

...... वैसे सौत का घर है न यह तो—सौत! ओह, कितना भयंकर शब्द है, यह!—जिसने कभी राम के घर को भी उजाड़ कर रख दिया था—सौत क्या हुई, साँप ही हुई जैसे। माँ तो कहती थी कि सौत तो मिट्टी

की भी बुरी होती है, लेकिन—मैं ''मैं तो जीवित सौत हूँ न ''''''क्या ''''
मैं सचमुच सौत हूँ ''''''' और वह खुद पर ही खिलखिलाकर हँस पड़ी।

लेकिन फटी हुई काई फिर मन के सीमांत पर फैल गयी '''' ओ माँ! क्या मैं भी सौत हूं, तब? ''''''''तुम निरीह थी माँ! ''''''''तुम पहले यह सब कहाँ जानती थी? ''''''''किसी ने नहीं बताया, तुम्हें ''''''''मैंने भी, जिसे इस तरह सौत ही बनना था। कैसी लाचारी थी उस समय की? '''''''' नहीं, नहीं'''''''' मैं सौत नहीं हूँ, निश्चय ही नहीं। इतिहास और सामाजिक सम्बन्धों के इन शब्दकोशों में भले ही यह कुछ अर्थ रखता हो, माँ! '''''''' तुम आज जीवित होतीं तो यह भी देख लेती '''''''' कि तुम्हारी प्राण प्यारी बिटिया रानी उसी अर्थ में सौत है ''''''''सौत!—जिस अर्थ में कैकयी और कौशल्या थी। लेकिन हूँ मैं सौत ही—खुद की ही सौत, खुद ही तो हूँ। सच मानो माँ! ''''''''जो सो रही है यह''''वह भी वही है, जो जग रही है, वह भी तो वही है' ''''''

मैं मेरी ही सौत हूँ, माँ! - और उसने धीरे से डेज़ी के नींद भरे मुस्कराते मुँह को धीरे से चूम लिया तो उस सोती हुई देह में सिहरन जग पड़ी, निंदियाते अधर थिरके—'सोने दो न प्राण! '''''''' कितने बेहया हो कि अब भी नहीं छोड़ रहे हो?'

उसने दूसरी ओर करवट बदल ली।

साधना ने सुना तो विस्मय में डूब गयी।—'ओह कितना मीठा है यह स्वप्न?' ''''और आनंद की पुलक सारी देह रोमांचित कर गयी। तभी बाहर पैरों की आहट हुई। डॉ. अरुण अन्दर आ गये।

'कैसे चल रहा है?'

'सब कुछ ठीक ही है।'

'आओ रानी!'

बैठो न!'—मीठी मनुहार अधरों पर थिरकी।

'न '' न, फिर चलो न ऊपर। हम भी तो सो जाएँ' —कलाई थामते हुए प्रीति की डोर ने साधना को संकेत किया।

'नहीं,''''''''आज रात तो बिल्कुल नहीं।' कामना भरे वे नेत्र अलसाये से कह उठे।

'तो, हम अकेले ही"""" आंख लग ही नहीं रही है, बिना तुम्हारे सब सूना ही सूना है रानी।'—और बड़े सहज भाव से उन मधुभीनी आँखों ने एक-दूसरे को चूम लिया। वाणी से मधुर संकेतों के हरसिंगार टप-टप झर उठे। 'यहाँ रहना जरूरी है न, रतजगा है आज तो—कल के आनंद के लिये।'

'अच्छा भई, तो हम चलें!'—और डॉ. अरुण धीमे कदमों बाहर निकल गये तो वह फिर अपनी आरामकुर्सी पर आकर बैठ गयी, उस सोते हुए आसन्न मातृत्व के रूप को बड़ी हसरत से निहारती रही। तभी एक परिचारिका अंदर आ पहुँची।

'सुनो, ओ. टी. व्यवस्था ठीक हो गयी है न?'—तपाक से आदेशात्मक आवाज गूँजी।

'जी, मैडम! मैट्रन भी बैठीं प्रतीक्षा ही कर रही हैं।'

'बाहर स्ट्रेचर भी तैयार है, न? पुकारते ही अंदर ले आना। अब सोना मत। चाय-वाय की तलब हो तो अपने आप हीटर पर बना लेना। हूँ ऽऽ?

'अभी कुछ देर पहले ही पी थी। आपके लिए भी बना लाऊँ?'

'अरे नहीं, जाओ, आराम से बैठो। जरूरत पड़ते ही पुकार लूँगी।'

और उठकर उसने अपना गाउन, हैंगर से उतार कर पहन लिया। तभी टेजी करवट लेते हुए कराह उठी—'ओ ऽऽ माँ!'

साधना सुनते ही चौकन्ना हो गयी, बड़ी-बड़ी बरौनियाँ कानों तक खिंच आईं। उसने तुरत ही नेपकिन निकाल कर देह पर लगा लिया, फिर लपकती-सी उसके पास आ पहुँची, देखा टेजी आँखें मूँदे अब भी आराम से सो रही है।

लौट कर फिर आरामकुर्सी में धँस गयी। स्टेथेस्कोप गले में अब भी साँप की तरह लिपटा हुआ है। थकी थकी-सी देह धीरे-धीरे अब ऊँघने लगी तो कुछ ही देर में खर्राटे भरने लगी। फिर तो उसे पता ही न रहा कि कब तीन और चार के टंकोरे तक बज चुके हैं। अब तो सबेरे के पाँच ही बजा चाहते हैं। बिस्तर पर पसरी देह टीस से अकुला कर कराह रही है, दो-चार

उबकाइयाँ भी आ चुकी हैं, पर कोई जैसे उठने का नाम तक नहीं ले रहा है।

तभी धमाके की आवाज़ के साथ ऋता सोफे से फिसलकर फर्श पर आ गिरी। तुरत आँखें मलते हुए उठ बैठी। कराह सुनी तो लपक कर डेज़ी के पास पहुँची, बोली—'दर्द उठ रहा है ?'

'बहुत जोर से बहिन, सहा नहीं जा रहा है" सा"'ध"'ना बहिन"' आओ न"'" ओफ ! हाय मैं तो मरी बहिन !—तड़पती हुई देह के उस ललाट पर अनेक बूंदें पसीने की उग आईं। ऋता ने लपक कर साधना को झिंझोड़ दिया, वह हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। कॉलबेल झनझना उठी। दो परिचारिकाएँ पहियेदार स्ट्रेचर लिये तुरंत अंदर आ गईं।

'ओ. टी. ले चलो।' सुनते ही उन्होंने धीरे से डेज़ी को उठाकर स्ट्रेचर गाड़ी पर लिटा दिया और तेज कदमों से साधना के साथ प्रसव कक्ष के द्वार तक आ पहुँचीं।

'तुम यहीं प्रतीक्षा करो तब तक"'"'हैं ऽ ?'—ऋता को बाहर लगी कुर्सियों की ओर संकेत करते ही डॉक्टर साधना स्ट्रेचर के साथ ही अंदर घुस गयी।

एकाध घण्टे का इन्तजार भी एक लम्बी प्रतीक्षित घड़ी जैसा लग रहा है, समय के साथ ही उत्सुकता जो बढ़ रही है। इतने में अंदर से खट्-खट् करती पदचाप सुनाई दी। दरवाज़े पर हल्का-सा धक्का लगा, मुँह पर सफेद रुमाल बाँधे डॉक्टर साधना ने बड़ी उमंग के साथ बाहर झांका।

'क्या ?'—ऋता तपाक से उठ खड़ी हुई।

'ब"'धा" ई !"'"ऋता बुआजी को !'—उत्फुल्ल नेत्र दीप्ति से चमक उठे।

'है,"'"'बा ऽ ऽ या बापू' ऽ ऽ ऽ ?—ऋता चहक उठी।

'बापू हैं, ऋता। भूल गयी क्या, दो अक्टूबर है न आज।'

सुनते ही वह लपककर उसे अंक में भरना चाहती थी कि पीछे सरकते हुए, उसे दूर रहने का संकेत किया—'ठहरो, भई ! अभी मैं डॉक्टर हूँ "'"'"तुम्हारे नवजात राजकुमार की सेवा में हूँ, कुछ और देर तक प्रतीक्षा' "'"'"कहते ही वे चुलबुले कदम फिर अंदर लौट गये।

बीसेक मिनिट और बीत गये। तभी एक परिचारिका बाहर आई और दूसरी ओर बढ़ गयी। लौटी तो पहियेदार पालने को धीरे-धीरे धकियाते हुए। रोएँदार तौलियों और फोम के गद्दे से वेष्टित है यह पालना। लेकिन वह रुकी नहीं, तुरंत पालना लेकर अंदर चली गयी। तभी ऋता ने देखा —सामने की दीर्घा से डॉक्टर अरुण तेज कदमों से उसी तरफ आ रहे हैं। ऋता खड़ी हो गयी। मन आनंद-से उमग रहा है। उनके समीप आते ही चहक उठी—

'भैया को हार्दिक बधाई।'

'बधाई तो तुम्हें है, मेरी ऋता बहिन! यह सब तो तेरे ही कारण संभव हुआ है न?'.........और कहते कहते हृदय कृतज्ञता से गहगहा उठा।

'मैं नहीं, भई! बधाई की पात्र तो साधना भाभी ही हैं। सचमुच वे उस दिन अपनी स्वीकृति नहीं देती तो?—तो क्या यह सब संभव होता भैया? भाभी खुदगर्ज नहीं है, फिर भी पूरे तीन वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद मिली थी वह स्वीकृति।

'इस शिशु को तो इसी कोख से जन्म लेना था न?'—और नयन की पुतलियाँ रहस्य भरे संकेतों से नाच उठीं।

'अपना अपना भाग्य है, ऋता बहिन!'—संतोष और आनंद से भरे-भरे डॉक्टर ने दरवाजे के स्प्रिंगदार कपाट को धीरे से धक्का दे, प्रसवकक्ष में प्रवेश किया।

'अपना अपना भाग्य है!'—ऋता के हृदय का अन्तराल बड़ी देर तक इसी की प्रतिध्वनि से गूंजता रहा।

चौबीस

आज फिर दो अक्टूबर है, वही दिन जब किसी शिशु मोहनदास गांधी ने पोरबंदर के किसी करमचंद गांधी के घर जन्म लिया था। यह भारत भूमि उस जन्म के कारण ही धन्य हो गयी थी। इसी दो अक्टूबर को तीन वर्ष पहले शिशु मनीष ने लखनऊ के साधना नर्सिंग होम मे जन्म लेकर डेज़ी की कोख को आनंद के अमृत से उज्ज्वल बना दिया था।

आज तो यह उसका तीसरा जन्म-दिवस है। फैरेक्स के साथ दूध की प्याली तैयार कर ली तो मनीष को गोद में ले उसे पिलाने का उपक्रम करने लगी। एकाध चम्मच मुँह मे ले उसने फुर्र से दूध उगल दिया, और न ऽ ऽ ई मां ऽ ऽ आ की रट लगने लगी तो साधना स्नानघर से तुरंत बाहर निकल आई। खुली केश राशि को पीछे झटकती हुई, मनीष को गोद मे भर लिया, फिर कपोल थपथपाते हुए बोली—'ले, अब तो पीएगा न ?'—और उसने चम्मच भर भर कर बच्चे को पिलाना शुरू किया। बीच बीच में उल्लास भरी किलकारी से कमरा गूंजता रहता। डेज़ी समीप ही बैठी, बड़े सहज भाव से यह क्रीड़ा देखती रही। अचानक बच्चे ने फिर दूध की पिचकारी छोड़ी तो सामने ही बैठी डेज़ी का वक्ष भीग गया।

'शैतान, मारूँगी एक चपत ? ऐसा लिहाज यहाँ नही चलेगा। जब तेरी मम्मी ही नहीं हूँ तो क्यों बर्दाश्त करूँ मैं ?'—और कहते कहते स्वय ही खिलखिलाकर हँस पड़ी। तभी अपनी साडी के पल्लू से साधना ने मनीष का मुँह पोंछ दिया तो वह खिले हुए गुलाब के फूल-सा मुखमण्डल और भी खिल उठा।

गोदी से उतार कर मनीष को पास ही रक्खी छोटी-सी आरामकुर्सी पर बैठाते हुए बोली—'आज तो दो अक्टूबर है न, मम्मी जान ? मैं स्नानादि से फारिग हो लूँ तो इसे प्राम मे बिठा, थोड़ी देर बाजार घूम आयेंगे। स्नान हो गया तो दूध भी पी ही लिया है। तुम तब तक कपडे ही बदल लो—इसके और तुम्हारे भी, है ऽ ऽ ? मैं अभी आई।'—कहती हुई चपल चरणों से वह फिर बाथरूम में घुस गयी।

'आओ, बेटे।'—और डेज़ी ने बड़े प्यार से मनीष को गोद में उठा कर छाती से लगा लिया और तब अपने परिधान वक्ष मे ले आई। रबर के दो बड़े बडे खरगोश उसकी गोदी में रख कर, उसने मनीष के लिए हरे मखमल की सुन्दर बाबासूट निकाल ली। फिर धीरे-धीरे उसके पुराने कपड़े उतार, देह पर सुगंधित पाउडर छिड़क, मुँह पर हलका-सा क्रीम मलकर, नया सूट पहना दिया। मनीष कभी कभार, बीच बीच में खरगोशों से खेलता रहा। कपड़े पहन लिये तो उछलता हुआ बाहर निकल गया। तभी द्वार पर किसी की परछाई पड़ी तो डेज़ी की निगाह सामने ही पड़ी—'ओहो, मां ने बेटे को

सजा-सँवारकर अब खेलने को भी छोड़ दिया है।'—आगंतुक दृष्टि दूधिया चाँदनी-सी खिल पड़ी।

डेज़ी तुरंत उठी, और लपकती लालसा की तरह उससे लिपट गयी। डॉ. अरुण ने झुककर बड़े स्नेह से उसका प्रशस्त ललाट चूम लिया। दोनों ही हृदय प्रेम से गहगहा उठे। सयोग कि उसी समय साधना साड़ी लपेटे, टर्किश तौलिये से गीले रेशमी बालों को बाँधे, उधर ही आ निकली—देखा—दो प्राणी अन्तर के उल्लास से तन्मय हो, एकाकार खड़े हैं। बिना किसी आहट के उमंग से भरी-भरी वह चुपचाप सीधी चलकर अपने कमरे में आ गयी।

'यह तो आये दिन के दृश्य है, अपनत्व की यह सीमा घर के प्रत्येक प्राणी तक जो फैल चुकी है'—और पतले-पतले वे ओठ धीरे से गुनगुना उठे —'अब तो बात फैल गयी"""जाने सब कोई"""मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई'—और सम्मुख देवमन्दिर में सजी कृष्ण की प्रतिमा को पुलकित नेत्रों से निहार लिया। फिर दीपक में घी पूरा, तो जलती हुई शलाका से छूकर ज्योति जगमगा उठी। धूपाधार की अगरबत्तियों की श्यामल धूम्र-लहरियाँ उस सुन्दर कक्ष के कोने-कोने को छूने लगीं।

और तभी थाल में रक्खे, कमलपत्र में बँधे ढेर सारे गुलाबों को प्रेम प्रकम्पित उन हाथों ने आराध्य के चरणों पर चढ़ाकर, नमन के लिए सिर झुकाया ही था कि डेज़ी और मित्रा द्वार पर आकर खड़े हो गये। गोदी में मचलता हुए मनीप तुरत उतर पड़ा, और साधना के उस प्रणत शीश को अपने नन्हे नन्हे हाथों मे भरकर पुकार उठा"""'मम्मी ऽ ऽ।'

साधना प्रेम विह्वल हो उठी, बढ़कर उसे अंक में भर लिया और फिर उसके नन्हे सिर को आराध्य के सम्मुख बड़े स्नेह से झुका दिया।

बालक उस सुगन्धित वातावरण में, दीपाधार की ज्योति से जगमगाती कृष्णमूर्ति के उस मनोहर मुखमण्डल को मुग्ध हो देखता रह गया। साधना ने एक गहरे गुलाबी फूल को मनीप के बुशशर्ट की दाहिनी जेब पर टाग दिया। फिर दो गुलाबी कलियाँ चुनकर, डेज़ी के सुन्दर केशपाश मे उसने सजा दी तो डेज़ी ने धीरे से कहा—'मनीप की माँ, अब जल्दी तैयार हो लो न।'

'हाँ भई, भाईसाहब और भाभीजी 10 बजे यहाँ पहुँच रहे हैं न, आज। आयंगर भैया ने और न जाने किन किन को आमंत्रित किया है, उनका फोन

आया था।.उल्लास भाई, ऋता और फूलजहाँ भी आने ही वाले होंगे न""" बस, अब तुम चटपट तैयार हो लो, जितने मैं मनीष को लिये उधर ही चलता हूँ। सब व्यवस्था जो देखनी है। ठीक ?'—डॉ. अरुण मनीष को बड़े स्नेह से बाँहो पर झुलाते हुए से बाहर निकल कर बैठक की ओर बढ़ चले।

तभी साधना ने डेज़ी की ओर संकेतभरी मुस्कराहट से देखा 'क्यूं आज तो सबेरे-सबेरे ही बडा प्यार उमड रहा था न ? है, तुम उधर आई थी, क्या ? भई, सचमुच आहट तक न सुन पड़ी हमको।'—कहते कहते लज्जा की लालिमा कानों तक फैल गयी।

'बहुत भाग्यशाली हो न, बहिन!'- वे कोमल पलकें जैसे सजला गयीं तो डेजी ने भावावेश से उसको अपनी बाहो मे भर लिया, कपोल चूमते हुए बोली—'यह सब तुम्हारी ही कृपा नही है, बहन ? """ नहीं तो मैं किस योग्य थी !'

साधना की दृष्टि ने उसकी दृष्टि को छू लिया, देखा, कि वे नयन भी किसी अज्ञात आनद की पुलक से काँप काँप गये हैं, पलके नम हो आई हैं। स्नेह का घूंट अंदर उतारते हुए बोली—'मेरी रानी बहिन ? ऐसा भूलकर भी न कहना अब !""" माँ हो न तुम—मेरे ही इकलौते लख्ते जिगर की माँ।

'और मुझे तो """ तुम पर गर्व है, मेरी डेजी। रूप, पैसा और प्रतिभा न जाने कितनो के पास है आज। लेकिन तुम्हारे हृदय की-सी महानता कितनो के पास है ?—कि इतनी सहजता से इन सारी स्थितियो को स्वीकार लिया है ! कि इस महानता के सामने उस धर्म और जाति की बिसात ही कहाँ रही ?"' तेरे और मेरे ये—किस कदर मुझे ही रात रात भर अपनी छाती से चिपकाये से, सोते रहे है आज तक """ लेकिन प्रभु का वरदान जिसे मिलना था, उसे ही मिला। तुम जैसी सुपात्र ही उसकी हकदार हो, यह कहते हुए, सच मानो, मुझे तनिक भी न ईर्ष्या ही हो रही है, न संकोच ही।

'यह प्रभु, इस बात का साक्षी है, बहिन !'—और कहते कहते उसने उसके कपोलों को बडे प्यार से थपथपा दिया। क्षण भर के लिए वे नयन उन नयनों पर, भरे हुए मेघखण्ड की तरह झुक आये, तो अधरो ने भी अधरों को चूम ही लिया।

वह स्नेह की सिहरन गर्माहट लिये समूची देहों को आरक्तवर्ण कर गयी। जीना चढ़ते पैरों की आहट से तभी दोनों ही चौक उठीं तो बाहों के वे बंध शिथिल हो गये। साधना ने कहा—'चल हट परे, देर हो जायेगी न ? वैसे भी हम इस बात के लिए बदनाम हैं कि हमें बनने-सँवरने में बहुत देर लगा करती है।'

और वे दोनों ही पास वाले कमरे में आ पहुँचीं। साधना ने चुपचाप अपना परिधान कुछ ही क्षणों में बदल लिया। ड्रेसिंग टेबुल के आदमकद आईने में फिर झाँककर देखा तो स्वयं सम्मोहित हो गई। पीछे खड़ी डेज़ी दाँतों तले होठ दबाये मुस्करा उठी। साधना तत्क्षण पीछे मुड़ते हुए मुस्कराती हुई बोली—'अब तुम अपने बड़े बूढ़ों के चरण छूओ तो आशीर्वाद मिलेगा।'– और फिर बाँहों में कसकर भरते हुए चूम लिया। होठ हिल पड़े —'मेरी डेज़ी, सौभाग्यवती हो, बहिन।'

'चल चल, अब यह नाटक रहने दे, देर हो जायेगी तो लोग क्या कहेंगे ?'

और वे दोनों ही कमरे बंद कर, जीना उतर, नीचे बैठक के द्वार पर खटखट करती आ पहुँची।

तभी मनीष ने पुकारा—'मम्मी !'

साधना ने दौड़कर, पुकारते बच्चे को तुरंत गोद में उठा लिया। डॉ. अरुण ने कलाई मे बँधी घड़ी की ओर देखा ही था कि साधना नर्सिंग होम के लाउञ्ज मे तीन कारें और एक जीप पंक्तिबद्ध-सी आकर खड़ी हो गयी। बीसेक व्यक्ति बाहर निकल आये। डेज़ी, साधना और मनीष के साथ डॉ. मिश्रा तुरंत ही अगवानी के लिए आ पहुँचे। आज तो नर्सिंग होम का सारा स्टाफ ही लकदक होकर खड़ा है न।

'आइये न ......'आयंगर ने मुस्कराते हुए सभी आगत अतिथियों को जैसे आमत्रण की आवाज मे पुकारा। डेज़ी और साधना अपनी प्रिय सखी ऋतुम्भरा और फूलजहाँ को लिये अपनी प्रिय दीदी विधुवतीजी को घेरे खड़ी थी। वे भी धीरे-धीरे बैठक में घुस आईं।

तभी पं. रविशंकर की सुरम्य रचना 'सोनजुही' की मधुर स्वरलहरी रिकार्डप्लेयर के फीते पर गूंजने लगी, तो बैठक के वातावरण की प्रत्येक तरंग,

स्वरों के सुन्दर नाद से निनादित हो उठी। और वे मुख्य अतिथि, जिन्होंने पूरे अठारह वर्षों तक इस प्रदेश को, नये जीवन की आबोहवा देने का प्रयत्न किया था, सामने लगी हुई खादी रेशम की पिछवई पर छपी गांधीजी की उस आदमकद छवि को निहारते हुए बोले—'डॉ. मित्रा मनीष कहाँ है ?'

'यह तो मेरे पास है !'—कहते हुए विधुवतीजी ने बच्चे का ललाट प्यार से चूम लिया। धीरे से उठी और अपने पति के पास जाकर, उसे उनकी गोद में दे दिया। उन्होंने बड़े दुलार से पीठ थपथपाते हुए उससे पूछा—'मनीष बेटे ! जानते हो, आज क्या है ?'

बच्चा क्षणभर उन मुस्कराती आँखों की तरफ देखता रह गया। फिर तुरंत ही साधना की तरफ उसकी दृष्टि दौड़ गयी।

'अरे, हमारे प्यारे बेटे को यह भी नहीं मालूम कि आज क्या है ?'—उन्होंने बड़े प्यार से फिर उसके दोनों कपोल थपथपा दिये। लेकिन उस बचपन की वह उत्सुक दृष्टि चकित-सी उस सजावट भरे सुरंगीन माहौल को तकती ही रही।

अब तक समीप ही खड़ी विधुवतीजी कह पड़ीं—'मनीष बेटे, कहो न कि आज मेरा जन्मदिन है।'

बच्चे के अधर अब धीरे से हिल पड़े, जैसे दोहरा रहा हो, 'जन्म—दिन है।'

'अच्छा, जन्मदिन है। किसका है—तुम्हारा या उनका ?—सामने लगी रेशमी पिछवई पर अंकित गांधीजी की छवि की ओर संकेत करते हुए, उन्होंने फिर पूछा। बच्चा अब तक उस वातावरण से पूरी तरह आश्वस्त हो चुका था। कुछ सोचकर बोल उठा—'उनका।'

'उनका ? अच्छा जानते हो, कौन हैं, वे ?'

'हाँ, क्यूं नहीं''''''''वे तो राष्ट्रपिता हैं। क्यूं, मम्मा हैं न ?' तुतलाती वह वाणी साधना की ओर देखती हुई बोल पड़ी तो सारी बैठक हल्के से ठहाके से गूंज उठी।

तभी बाहर से 'हार्न' की ध्वनियां फिर सुनाई पड़ीं। आयंगर, उल्लास दत्ता और डॉ. अरुण धीरे से उठकर बाहर निकल आये। देखा--प्रदेश के मुख्यमंत्री महोदय, उनकी पत्नी और मंत्रिपरिषद् के सदस्य, तिरंगी झंडी

लगीं इम्पालाओं से उतर रहे हैं। उनके पीछे वाली कार से ही उच्चन्यायालय के न्यायमूर्ति श्रीनत्थूसिंह जैन, श्रीमती सुदेश बत्रा और प्रिया उतर कर, धीरे-धीरे बैठक की ओर बढ़ रहे हैं। डॉ. साधना ने देखा तो वे भी अगवानी के लिए आ पहुँचीं, और पूरे सत्कार के साथ उन्हें बैठक में लिवा लाईं।

मुख्य अतिथि जो मनीष को गोद में लिये बतिया रहे थे, धीरे से कह पड़े —'आइये शर्मासाहब।'

और शर्मा दम्पत्ति और अन्य मंत्रीगण उन्हीं के पास वाली आराम कुर्सियों पर बैठ गये। तभी विधुवतीजी ने मनीष को अपने पति की गोद से उठा लिया और साधना के समीप आकर फिर बैठ गयी।

'सोनजुही' की वह मधुर मंद मंद स्वर लहरी अब भी बैठक के वायु-मण्डल को तरंगायित किये हुए है। सुदेश बत्रा और प्रिया भी महिला समु-दाय में सम्मिलित हो गयी हैं। सुदेश और प्रिया ने साधना और डेज़ी को मनीष के इस जन्मदिवस पर मुबारकबाद दिया तो अन्य सभी ने उठ-उठकर वैसा ही किया। देखते ही देखते नन्हा मनीष उपहार में आई विविध वस्तुओं और खिलौनों के ढेर से जैसे घिर-सा गया।

साधना तभी उठकर, बच्चे की अंगुली पकड़े रुपहली पिछवई के समीप ले गयी, तो उसने वंदनीय बापू के श्रीचरणों में अपना नन्हा-सा सिर झुकाकर नमन किया। उपस्थित समुदाय ने तालियाँ बजाकर हर्षध्वनि की।

दोनो माँ-बेटे फिर अपनी जगह लौट आये। राजन एस. आयंगर ने उठ कर सभी मान्य अतिथियों से लच के लिए समीप ही 'डाइनिंग हॉल' में चलने के लिए निवेदन किया। सभी लोग तुरंत उठ खड़े हुए, आपस मे बतियाते हुए, धीरे-धीरे हॉल में आ पहुँचे।

टेबुलों पर सजे पकवानों की महक से दिलो में तरावट आ गई। अपनी-अपनी प्लेटों मे सामग्री लिये लोग जैसे अलग-अलग समूहो मे बँट गये। मुख्य समूह तो मुख्य अतिथि और मुख्यमंत्रीजी का ही था, जिसमें मंत्रिपरिषद के पाँचेक साथी, सुदेश बत्रा और नत्थूसिंह जैन, दत्ता, आयंगर और डॉ. मित्रा आदि थे।

तभी मुख्य अतिथि ने मुख्यमंत्रीजी की ओर मुस्कराते हुए पूछा—'शर्मा-साहब, अमेठी की यात्रा कहाँ तक सफल रही?'—और गुलाबजामुन का एक कौर चम्मच में भरकर मुँह में रख लिया।

'अपनी तरफ से तो कोई कसर नहीं रखी थी, भाईसाहब ! पर.......'
वे कहते कहते सहसा रुक गये ।

'मैंने 'जनशक्ति' की रिपोर्टिंग भी पढ़ी थी । ये राजकुमार तो ......!'

'कुछ तुनकमिजाज हैं ही ।'—मुख्यमंत्री ने वाक्य पूरा करते हुए कहा—'कुछ गर्दिश का भी चक्कर रहा । बेचारे जो लोग स्वागत के लिए मालाएँ लेकर घंटों खड़े थे, सो खडे के खड़े ही रह गये ।

'अब आप ही बतायें, भाईसाहब ! क्या करें हम । आमसभा हुई तो उसमें भी उनके तेवर जैसे प्रशासन के खिलाफ़ ही थे ।'—चेहरे पर परेशानी की हल्की-सी छाया घिर आई ।

'भई, शर्मा साहब' हमें ऐसे शाहजादों को इतना सिर भी न चढ़ाना चाहिये — कि वे हमारे लिये ही एक आफत बन जायें । जुम्मे के जुम्मे कुछ ही दिन हुए है उनके इस राजनेता के रूप को । और.......'

'यही कि हम भी कभी-कभी अत्युत्साही हो जाया करते हैं, तो फिर ये लोग हमारे ही सिर क्यों न चढ़ेंगे ?'—और उस सहज मुस्कान ने उनकी ओर देख लिया । मुख्यमंत्री ने सुना तो मुँह में भरा गुलाबजामुन गले में अटक गया, और खिलखिलाता मुखमण्डल तत्क्षण गंभीर होगया । धीरे से बोले, 'परिस्थितियाँ ही आज ऐसी हैं कि मेरी जगह यदि आप ही होते तो क्या ऐसा नहीं करते ?'

'नही, शर्मासाहब, कतई नहीं ।'—वाणी दृढ़ता से मुखरित हुई । 'कोई प्रमाण ?'—उस दर्पस्फीत आवाज ने पलटकर पूछा । 'दक्षिण के उस प्रदेश की गवर्नरशिप इसका जीता जागता प्रमाण नहीं है, क्या ? शाहजादा आये और अपनी राह चले गये । मैंने अपनी गाड़ी सेवा में अर्पित कर दी, बस । लेकिन गवर्नर को पिछलग्गू बनने की कोई जरूरत महसूस नही की मैंने ।'—और वे फिर उसी सहज भाव से मुस्करा उठे । दृष्टि मे संतोष दिप उठा ।

'तभी, भाईसाहब ! तभी तो ये हालत है, आज ?'—मुख्यमंत्री सव्यंग्य हँस पड़े । और उनके दो एक साथियों और नत्थूसिंह ने भी खिलखिलाकर साथ दिया ।

'मुझे अब किसी हुकूमत की कोई ख्वाहिश ही नहीं है, शर्मासाहब ! आप लोग ही सम्हाले रहें, इसे । प्रदेश भी सारा आप ही का है न । यही

क्यों, मेरी तो कामना है कि आप इस प्रादेशिक सत्ता से ऊपर उठकर, समूची केन्द्रीय सत्ता को सम्हाल लें न !'— विश्वास भरी दृष्टि ने निष्पलक भाव से देखते हुए फिर कहा—'मुझे निहायत खुशी होगी उस दिन शर्मासाहब !'— और वे फिर उसी सहज मुस्कराहट से कचौरी के कौर का स्वाद लेने लगे।

'भाई साहब ! ये तो महज स्वप्न हैं, हमारे लिए। अखिल भारतीय व्यक्तित्व वाला कोई नेता ही इस समय तो मुझे नजर नहीं आ रहा है।'— इमरती का एक कौर चम्मच से मुँह में डालते हुए मुख्यमंत्री मुस्कराते हुए कह गये।

'शर्मा साहब ! पैदा कीजिये न ऐसी परिस्थितियाँ ? तभी तो वे आपको सत्ता के सर्वोच्च सिंहासन पर बैठायेंगी। जरा-सा भी चूके नहीं कि जगजीवनराम की तरह फिसलते ही चले जाएँगे।'

'आपकी कृपा से मैं तो यही ठीक हूँ"""चौबेजी से छब्बेजी नहीं बनना चाहता, भाई साहब !'—आस-पास खड़े लोगों ने सुना तो सभी घोरे से ठहाका लगाकर हँस पड़े।

लेकिन मुख्यमंत्रीजी का मुखमण्डल न जाने क्यों, तभी गंभीर हो उठा।

पच्चीस

फिर वही दो अक्टूबर का दिन। दुर्गाष्टमी की काली कराल रात्रि और उत्सव के आनंद से थका अभी-अभी सोया 'साधना नर्सिंग होम।' उसकी उनींदी ऊंघ करवट तक नहीं बदल रही है। एक की गजर गूंज, फिर समय के अंधकूप में कूद कर डूब गयी।

तभी किसी गाड़ी की हैडलाइट के प्रकाश ने उस ऊंघते नर्सिंगहोम के दरवाजे पर दस्तक दी। हॉर्न बजा तो पाँच सात बार बजा। ऊंघते चौकीदार ने अपनी खटिया से उठकर फाटक खोल दिया। गाड़ी हहराती अंदर आ पोर्टिको के नीचे खड़ी हो गयी।

'डॉक्टर साहब कहाँ है ? कहाँ है डॉक्टर साब, अरे, जल्दी करो । हाय रे, मर गये न हम ।'—उस उफनती छाती की रुआँसी साँसें जोर जोर से चलने लगी । चौकीदार ने दौड़ कर नर्सेज कॉटेज मे निंदियाती नर्स को झिंझोड़ कर रख दिया । मामला गंभीर देख, वह दौड कर ऊपर रेजीडेन्ट अपार्टमेन्ट्स में पहुँची । डॉ. अरुण मित्रा तो इस हलचल से जागकर स्वयं बाहर आ पहुँचे तो उन दो आगंतुको में से एक बुढ़िया ने डॉ. की बलैयाँ लेते हुए आंचल पसारा और पीड़ा से तड़पती वहू की प्राण रक्षा के लिए प्रार्थना की ।

थके हारे डॉक्टर पहले तो कुछ हिचकिचाये, पर, उन बूढी आँखो के रिसते आँसुओं ने दिल को द्रवित कर ही दिया । मन की मनुष्यता जाग जो गई थी । डेज़ी और ऋतुम्भरा की नींद उचट गई थी सो वे भी उठकर वही आ गयी । डॉक्टर का मन पसीज गया, सोचा - 'आज ही तो उस विषपायी का जन्म दिन है जिसने इस समूची धरती का विष स्वयं पी लेने का जिन्दगी भर प्रयत्न किया था । पूछा—'क्या बात है ?'

'डिलीवरी का केस ।'

'अच्छा ?'—और उन्होंने डेज़ी की ओर देखा ।

'अभी ?'

'तभी तो !—साधना को जगाओ तो !'

'नही, नही—रहने दो दीदी को । मनीष जाग जाएगा तो रोयेगा ?'

'तब ?'

'चलो न हम सब चलते है ।'—और डेज़ी शयन कक्ष में लौट आई । देखा—ट्यूबलाइट की हरी रोशनी साधना के अंचल में लिपटे, मनीष के नीद भरे मुखमण्डल को कैसा दीपित कर रही है । माँ और बेटे गहरी नीद जो सो रहे हैं । क्षण भर निहारा, मातृत्व प्रेरणा से सजग हो, तुरंत बाहर निकल आई ।

'तो तैयार हो न ?'—मित्रा भी सफेद गाउन पहन बाहर आ गये । 'हम अभी आये ।'—कहती डेज़ी अपने कक्ष में आ पहुँची । मेट्रन की ड्रेस पहने फिर लकदक-सी बाहर आई तो डॉ. मित्रा ने तपाक से पूछा —'साधना कहाँ हैं ?'

'अपने बेटे के पास'—मुस्कराती दृष्टि ने उत्तर दिया।

'क्यों, साथ नहीं चलेंगी ?

'चलेंगी कैसे ? बेटा जो छाती से चिपके सो रहा है, जग न जायेगा ?'

'अरे, मैं चल रही हूँ, न !'—ऋता भी तैयार होकर तभी वहीं आ पहुँची।

वे सभी सीढ़ियाँ उतर कर नीचे आ गये, देखा जोंगा जीप तैयार खड़ी है। चौकीदार ने मेडिसन और सर्जिकल बॉक्स लाकर धीरे से सीट पर रख दिया। सभी लोग लद गये तो जीप 'नर्सिंग होम' के फाटक से निकल कर कानपुर की उस सूनी सड़क पर फिर दौड़ने लगी, और थोड़ी ही देर में चौकीदार की दृष्टि से ओझल हो, अंधेरे में विलीन हो गई।

उसने फिर चौकस हो फाटक धीरे से बंद कर ताला लगा दिया। अंदर आया तो पोर्टिको की लाइट के नीचे खड़ी नर्स ने उसे पुकार लिया।

'चाचा ! तुमने बुढ़िया के पास खड़े उस गलमुच्छे व्यक्ति का चेहरा तो अच्छी तरह देखा था न ?'

'कोई खास बात थी, सिस्टर ?'—कहते हुए वे पलकें कुछ फैल गयीं।

'मुझे तो वह खूंखार ही लग रहा था, ऐसा कि अभी-अभी ही खून करके आया हो।'—चेहरे पर अजाने भय की सिहरन दौड़ गयी।

'ऐसा ? ''''''अरे, तो डॉक्टर साब को कहा क्यों नहीं ? हम नहीं जाने देते, उन्हें। क्या कर लेता वह हमारा ?'

'वह बुढ़िया जो बुरी तरह बिसूर रही थी न, उस वक्त ? वक्त का तकाज़ा था सो चुप रहना पड़ा। हम सभी जानते हैं, कौन नहीं जानता, हमारे इस प्रदेश को ? '''''''ओह गॉड ! सेव दीज़ पूअर क्रीचर्स।'—और उसने तुरंत घुटनों के बल बैठकर, अपने वक्ष पर बाँहों से 'क्रॉस' बना लिया। आँख मूंदे कुछ क्षण गुनगुना ही रही थी कि किसी गाड़ी की हैड लाइट फिर फाटक से आ टकराई।

चौकीदार पलटकर तुरंत फाटक पर आ गया, देखा तो पुलिस की जीप। सहमते हुए उसने ताला खोला और फाटक खोल दिया। जीप अंदर घुस आई, अपनी 'पी' कैप हाथ में लिये आयंगर तुरंत उतर पड़े।

'डॉ. मिश्रा ऊपर हैं ?'

'नही तो, सर !'—कहते हुए नर्स के अधर कँपकँपा गये ।

'कहाँ है तब, बताओ न ?'—आशंका भरी वाणी भर्रा उठी ।

'अभी-अभी, खाकी रंग की जोंगा जीप में गये हैं—डिलीवरी केस था—मुजफ्फरनगर की ओर ।'

'हैं, चले गये ?' और वे खट से फिर जीप में सवार हो गये ।

'कौन-कौन हैं, उनके साथ ?'

'सर, डेजी बहिन, ऋतुजी और डॉक्टर साहब हैं । साधनाजी और मनीष ऊपर सो रहे हैं, मिल लीजिये न ।'

'अभी मरने की भी फुर्सत नही है—सभी काल के गाल में चले गये लगते हैं । फोन सचमुच ठीक था । ओऽफ ! चलो पकड़ो मुजफ्फरनगर रोड, ड्राइवर !'

'जी'—कहते ही जीप स्टार्ट हो गयी और तेजी के साथ घर्र-घर्र करती बाहर निकल गयी ।

नर्स और चौकीदार बुत की तरह खड़े-खड़े आँखें फैलाये यह सब देखते रहे । चद लमहों तक न हिले, न डुले । स्तंभित और भय-त्रस्त ।

'या अल्लाह ! क्या होगा अब ?'—एक सर्द आह खींचती दृष्टि ने सिस्टर की ओर देखा । सिस्टर की आँखें जमीन पर टिकीं अब भी जैसे कुछ टटोल रही हैं । निगाह ऊपर उठाते हुए बोली—'चचा, यह तो गजब हो गया न ? किसी की गहरी साजिश है यह । मुझे तो उस कातिल चेहरे की याद भर से कँपकँपी छूट रही है ।'—और वे फटी-फटी सी पलकें आसमान के सितारों की ओर उठकर फैल गयो ।

'कितनी भयंकर साजिश है इस समय की, चाचा ! अब हम कहीं के भी नहीं रह पायेंगे, और इन्सानियत की खिदमत का यह छोटा-सा आशियाँ भी कहीं उजड़ न जाये ? इसके तिनके बिखर गये तो सारा आशियाँ ही बिखरा समझो ।'—कहते-कहते वे होंठ फिर थरथरा गये । पलकें सजला गयीं । सिस्टर का गमगीन चेहरा देख चौकीदार आसफअली भी एक बार तो घबरा गया । धीमे से बोला—'सब्र करो, सिस्टर ! कत्ल करने वाले से

बचाने वाला बड़ा होता है। अल्लाह ताला सबसे बड़ा है। आयंगर·······
साहब गये तो हैं—देखा नहीं, तीन अर्दली और बैठे थे पीछे।

'और फिर होगा तो वही जो उसको मंजूर है, सिस्टर! उस पर किसी का कोई दख़ल नहीं।'

'पता नहीं, चाचा! आयंगर साहब उन तक पहुँच भी पायेंगे या नहीं···
····और तब तक मामला ही खत्म हो चुका हो, कौन जाने?'

'नहीं, नहीं, उन्हें सब मालूम हो होगा सिस्टर! तभी तो कह रहे थे, किसी ने उन्हें फोन किया था। फोन पर इत्तला मिली कि वे इधर दौड़े आये। नहीं तो, इतनी रात गये कौन आता है, यहाँ?·······सी. आई. डी. के तो आला अफसर हैं, वे। पाताल से भी खोज निकालने का दम रखते हैं'—सहर्ष आँखें चमक उठीं।

'सो तो ठीक है, चाचा! यही एक संतोष की बात इस वक्त है। ज़माना तो यह बहुत ही जालिम है, जहाँ इन्सान इन्सान के लहू का प्यासा है। देखते नहीं हर रोज़ बलात्कार के दो-चार केसेज तो अपने यहीं आते हैं। क्या हो गया है इस प्रदेश को? अपनी रंजिश का बदला बेचारी बहू-बेटियों के साथ काला मुँह करके लिया जा रहा है। गंगा-यमुना की बूँद-बूँद में जैसे जहर घुला जा रहा है।

'क्या यह सच नहीं है?'

और वे दोनों स्तब्ध और डरी-डरी दृष्टि से एक दूसरे को कुछ क्षण घूरते रहे। आशंकाओं के बादल घटाटोप हो मन पर घिर जो आये हैं।

और रात का वह भयावह अंधेरा अपनी पूरी भयंकरता के साथ गहरा रहा है। कानपुर की उस सड़क से पाँच किलोमीटर ही दूर वह वहशियाना खूँरेजी, तेज छुरी की धार-सी, तीन निर्दोष और निहत्थे प्राणियों पर बिजली की तरह टूट-टूट कर गिर रही है। डेज़ी की क्षत-विक्षत देह अब भी अरुण की उस रक्त-रंजित पथरायी देह को ढाँपने के प्रयत्न में और भी चीथे-चीथे हो रही है। तीन ओर से अंधाधुंध प्रहारों के बावजूद उसके प्राण न जाने अब तक कैसे अटके हुए हैं और कुछ ही दूरी पर आम के तले मजबूत रस्सी से बँधी ऋतुम्भरा उस बियाबान स्याह अंधेरे में भी 'बचाओ! बचाओ!' की दर्द भरी निस्सहाय पुकार की चीख मचा रही है।

—और क्षण ही भर में डेज़ी की वह खून से लथपथ देह, डॉ. अरुण की निढाल और निर्जीव देह पर, थरथराती दीवार की तरह, अंत में ढह ही गयी तो उन तीनों खूंखार भेड़ियों ने ऋता की ओर निगाह उठाई,और तीनों ही ठहाका लगाकर हँस पड़े। समीप आये तो कस कर चार-पाँच ठोकरें ही जमा दी, फिर पियक्कडों की तरह झूमते हुए जब उन्होंने उन लाशों पर ही नाच-कूद कर उन्हें रौंदना शुरु किया ही था कि पास खड़ी उस बुढ़िया ने मिन्नत भरी आवाज़ में उन्हें टोकना चाहा। पर, मदोन्मत्तता जब मृत्यु की तरह सिर पर नाचने लगती है, तब बहरी हो जाती है। ऋता का रक्त अन्दर ही अन्दर खौलने लगा, वह और अधिक तेजी से चीखने लगी, चीखते-चीखते बदहवास-सी अचेत हो गयी। तभी दूरी पर चार-पाँच मानवाकृतियों का चोर कदमों से उसी ओर बढ़ने का अहसास उन बूढ़ी आँखों को हो गया। वह उन्हें सचेत करने के लिये चीखी-चिल्लाई भी—कि इतने में धाँय""धाँय"" धाँय करती आवाजें, दसेक गज दूर ही से, आग की चिंगारियों के प्रकाश के साथ गूंज उठीं। और वह समूचा मदन-नृत्य तत्क्षण वहीं समाप्त हो गया। फिर तो हंटिंग टॉर्च की तेज रोशनियों से दूर-दूर तक पत्ता-पत्ता रोशन हो उठा।

'अम्मा, तुम कैसे—ये हत्यारे और तुम ?'—पूछते हुए आयंगर ने बुढ़िया का वह कँपकँपाता हाथ पास खड़े अर्दली को थमा दिया। फिर लपक कर उस आम तले जा पहुँचा जहाँ रस्सी से बंधी ऋता अचेत पड़ी हुई थी। बड़ी सावधानी से उसने एक-एक बंधन को खोल दिया। टार्च के प्रकाश में देखा कि वह अब भी जीवित है। देह पर रस्सी के बंधनों ने चमड़ी को जगह-जगह छीलकर रख दिया है।

'तुम लोग इधर आओ न !'—पुकारते ही तीन अर्दली दौड़ कर उनके समीप आ पहुँचे।

'इसे धीरे से फर्श पर लिटा दो और हरी रोशनी फेंक कर जीप को यहीं आने का संकेत दो। हेडफोन पहने अर्दली ने टार्च उठाई, सड़क से आधा फर्लाङ्ग दूर खड़ी जीप को हरी लाइट दी। जीप की हेडलाइट कूफ से जल उठी, और कुछ ही पलों में जीप समीप आ खड़ी हो गयी।

अचेत ऋता को उन्होंने उसी जोंगा जीप की एक सीट पर सुला दिया। एक अर्दली उस बुढ़िया को लेकर उसी जीप में सवार हो गया। फिर उन लाशों के समीप आयंगर लौट आये जिन पर कुछ पल पहले ही टार्च की रोशनी में भेड़ियों को उन पर नाचते हुए देखा था।

लेकिन निशाने भी कितने अचूक थे कि उन रगों की वह पगलायी मादकता वहीं ढह कर ढेर हो गयी। बड़ी मुश्किल से डॉ. मित्रा और ऱेजी की लाशो को उनमे अलग कर पाये। आयंगर जैसा व्यक्ति भी उन्हे देखकर भावुक हो उठा, क्षत-विक्षत उन चेहरों ने तो जैसे उस धीरज का भी बाँध तोड दिया और वे बिसूरती आँखें क्षणभर उन्हें अपलक देखती रहीं। दृष्टि पथ पर अंधेरा छा गया। थरथराते अधरों से किसी कदर निकल पड़ा—'अब रखो न इन्हे भी जीप पर!'

और अपने ही गर्म लहू से नहाई, एक-दूसरे से गुँथी-गुँथी सी उन लाशों को, अपनी ही जीप में बड़े यत्न से रखवा दिया तो आयंगर स्टीयरिंग पर फिर आ बैठे। पैंट की जेब से रूमाल निकालकर अश्रु-जल से छलछलाती आँखों को बरबस पोंछ लिया। मुँह से निकला—वाह रे सेवा पथ!—यही है न वह मातृ भूमि उन राम और कृष्ण की! गौतम और गांधी की?

लेकिन जिसे ये यशोधरा की तरह सोता छोड़कर आये थे, उस बहिन साधना को क्या जवाब दूँगा?

आँसू फिर पलकों के नीचे से खिसक ही पड़े। तभी दूसरे अर्दली ने सर्जिकल बॉक्स धीरे से अन्दर की सीट पर लाकर रखा, और उचक कर उसी सीट पर आ जमा।

दो जीपों का यह गमजदा मातमी कारवाँ फिर अपनी मंजिल की ओर चल पड़ा?

छब्बीस

जंगल की आग की तरह इस वहशियाना हादसे की खबर ने सारे प्रदेश को ही नहीं, अपितु समूचे देश को जैसे हिलाकर रख दिया। सभी दैनिक

बड़ी गर्मजोशी के साथ सुर्खियाँ लिये निकले तो लगा कि जैसे भूचाल आ गया है। केवल आकाशवाणी ने बिना कोई टिप्पणी किये गत रात्रि के वाकयातों की सूचना भर दी। आज प्रदेश के तमाम शफाखानों में न डॉक्टर लोग ही पहुँचे, न नर्सिंग स्टाफ ही। इन्टरनीज् और हाउस सर्जनों ने ऐलान किया कि वे सभी दिवंगत डॉक्टर अरुण मित्रा और उनकी पत्नी डेजी मित्रा की अर्थियों के साथ, बाँहों पर काली पट्टियाँ बाँधे, जलूस बनाकर चुपचाप मार्च करेंगे।

यही नहीं, प्रदेश के सभी सीनियर सर्जनों और फिजिशियनों ने ऐलान किया कि जब तक उनकी सुरक्षा की गारंटी सरकार नहीं देगी, वे अनिश्चित काल तक हड़ताल पर ही रहेंगे। आज तो मेडिकल कॉलिज के कमरों में ताले तक नहीं खुले। उन लम्बी-लम्बी दीर्घाओं में धूल जमी रही। विद्रोह की आग भड़की तो तेजी से फैलती ही चली गयी। प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों के परिसर अशांत हो खलबलाने लगे। हजारों छात्र-छात्राओं ने प्रशासन विरोधी नारे लगा-लगाकर, सभी संकाय बन्द करवा दिये। उनकी सारी इकाइयाँ ठप्प कर दी गयी तो उनके हजारों कर्मचारी भी इस अवसर का फायदा उठाने के लिए अपनी माँगों की तख्तियाँ हाथों में लिये सड़क पर आ गये। आज लगा कि जनमानस के गहरे अचेतन का सोया हुआ जल भी ऐसे वीभत्स हादसे के झंझावाती थपेड़ों से उद्वेलित हो सकता है। जनाक्रोश की चीखें, सत्ता परिवर्तन की बलवती आकांक्षाओं के आकाश की ऊँचाइयों पर उड़ती हुई आगत तूफान की सूचना दे रही हैं। तभी तो देश के सभी छोटे और बड़े राजनैतिक दलों ने मिलकर सरकार से सी. बी. आई. द्वारा सारे वाकयातों की जाँच करवाने की माँग की है। लोगों के मन में भी यह अब अच्छी तरह महसूस होने लगा है कि इस सारे नृशंस हत्याकाण्ड के पीछे किन्हीं राजनेताओं का ही हाथ है, और विश्वास का पुख्ता आधार है वह सरकारी जोंगा जीप और उस बुढ़िया के वे बयान जो उसने दण्डनायक प्रथम श्रेणी के सामने दिये हैं।

बुढिया उच्च न्यायालय के वकीलों को जल पिलाने का कार्य करती है।

तभी आने वाले विधान सभा और परिषद् के सत्र में सारा विपक्ष इसी हत्याकांड को लेकर पूरी ताकत के साथ तैयारी में जुट गया है।

सत्तापक्ष के दैनिक 'राष्ट्रनायक' ने भी इस क्रूरकाण्ड की पूरी रिपोर्टिंग छापी है, जिसमें कहा गया है कि किस कदर इस सुनियोजित काण्ड को, जेल

में बन्द तीन कुख्यात बदमाशों के द्वारा षड्यन्त्रकारी मस्तिष्क की घृणित प्रेरणा से करवाया गया।

साथ ही कई प्रश्न उक्त दैनिक के रपटकार ने सामने रखे—कि सी. बी. आई. के आला अफसर दो अक्टूबर की रात एक बजे उसी स्थान पर किस संकेत के आधार पर पहुँचे थे—क्या उन्हें किसी विशेष सूत्र से यह पहले ही पता लग चुका था? यदि हाँ, तो इस हत्याकाण्ड को फिर पहले ही क्यों नही विफल कर दिया गया—कि वह बुढिया कौन है, जिसने इस नृशंस हत्याकाण्ड में इस तरह प्रमुख भूमिका निभायी है · कि केन्द्रीय कारागार से वे कुख्यात कैदी किसकी आज्ञा से जेल मुक्त हो, बड़े इत्मीनान से हत्याएँ कर, लाशों को पैरों से रौंद-रौंदकर जश्न मनाते रहे थे?

निश्चय ही इस तमाम कांड के पीछे किसी विकृत और क्रूर मस्तिष्क की वीभत्स कल्पना अवश्य रही है।

और इस हत्याकाण्ड के लिए दो अक्टूबर का दिन ही क्यों चुना गया? डॉ. मित्रा और उनका परिवार तो निरापद रहा है, और प्रदेश के प्रायः सभी प्रमुख राजनेता, उस रोज दिन में उनके पुत्र के जन्मोत्सव पर, उनके आवास पर एकत्र हुए थे। भला इतने सेवाभावी और कर्मठ व्यक्तियों की इस कदर हत्या हो जाना किस बात का सकेत देता है?

इस महानगर की गली-गली और देश के गांव-गांव ऐसी ही विचारोत्तेजना से भड़क उठे।

लेकिन जो मार दिये गये—वे तो अब लौटकर इन सबका उत्तर देने से रहे, और फिर अपने ही स्वार्थों में डूबी आज की यह व्यवस्था जो अपने जन प्रतिनिधियों को कानून से ऊपर रखने के लिए विधेयक पास करवाने में लगी हुई है, इस छोटे से और तुच्छ हत्याकाण्ड से क्यो चिंतित होने लगी? यह राजनीति की गांधारी निजी स्वार्थों की रतौंधी से अन्धी जो है, तो फिर सत्यान्वेषण हो भी तो कैसे?

फिर डॉ. अरुण मित्रा और उनकी पत्नी डेज़ी के प्रति जो सम्मान इस शहर के दिल में ज्वार की तरह उफन पड़ा है, वह तो अभूतपूर्व ही है। इस प्रदेश के बडे से बड़े राजनेता तक को इतनी उमडती हुई जनभावनाओं ने आज तक नही सत्कारा। दोनो मृतकों के शवो को, टैगोर टाउनहाल में,

बर्फ की बड़ी-बड़ी सिल्लियों पर रखा गया, और प्रदेश के कोने-कोने से लोग आ आकर, अपनी भावभीनी पुष्पाजली अर्पित करते रहे। शोकसन्तप्त डॉ. साधना कभी मनीष को अपनी गोद में मुलाती तो कभी वह खुद बैठकर, खाली-खाली निगाह से आने जाने वाले लोगों को ताकता रहता। उसे समझ ही नहीं पड़ रहा था कि मौत क्या होती है, और उसके प्रिय पापा और छोटी मम्मी देज़ी अब तक सो क्यों रहे हैं। उसने सोते हुए लोगों पर कभी किसी को फूल चढ़ाते देखा भी नहीं था लेकिन उस गमगीन और सुबकते माहौल से आतंकित वह विस्मय से यह सब देखता रहता।

बड़ी मम्मी के साथ वे तीन दिन लगभग निराहार ही बीत गये। ऋतुम्भरा तो अब भी लोहिया चिकित्सालय मे बेड न 3 पर असंज्ञावस्था मे पड़ी हुई है। बेचारी फूलजहाँ और नारी नवचेतना समाज की अन्य महिलाएँ दिन भर मौन बैठी बिसूरती साधना को अपनी मूक सान्त्वना और सहानुभूति देती रहती।

और उल्लास दत्ता अपने कई साथियों को लिये, आज ही दिनात से पहले शवदाह की व्यवस्था में जी-जान से लगा हुआ है। तभी हॉल के बीच के द्वार पर कुछ चहल-पहल और बढ़ गयी और देखते ही देखते विधुवती जी ने अपने पति और उनके सहयोगियों के साथ प्रवेश किया। आते ही विधुजी ने भाव-विह्वल हो मनीष को गोद में उठाकर चूम लिया। आँखे तो पहले ही छलछला रही थी। तब एक-एक कर सभी ने उन दिवंगतो की देहो पर भावभीने हृदय से माल्यार्पण किया। भाई साहब तो विजडित से निर्वाक् हो खड़े-खड़े जैसे कही गहरे मे डूबते चले गये। उन्हें यह होश तक न रहा कि उन्हे भी फूलो का हार चढाना है। इतने ही मे भीड़ को कुछ परे हटाते हुए आयंगर जब उनके समीप आ खड़े हो गये तो वे कुछ सजग हुए। पूछा—'आयगर ! अब क्या देर दार है ?'

'व्यवस्था तो पूरी हो चुकी है, भाई साहब ! फूलो के गजरो से सुवेष्टित स्टेशनवेगन मैदान ही मे खड़ा है। लो, वह उल्लास भी आ गये।' और उल्लास के साथ ही सैंकड़ो लोगो का एक भारी रेला भी अन्दर आ गया। बाँहो पर काली पट्टियाँ बाँधे सैंकडों नर-नारियो ने एक क्षण मौन हो, दिवंगतो को श्रद्धाञ्जली अर्पित की और तब उल्लास और आयंगर ने अपने साथियों की सहायता से, दोनो शवो को एक ही अर्थी पर लिटा दिया। अर्थी

को कंधा दे, ज्यों ही उठाया गया कि रुदन का पारावार आँखो से फूट पड़ा। जिधर देखो उधर सुबकते होठ और बिसूरती आँखें दिखाई दे रही हैं।

और तब उल्लास नन्हें-से मनीष को गोद मे लिये आगे बढ आया। उसके नन्हे-नन्हे कधों से जब उस अर्थी को छुआया गया तो डॉक्टर साधना चीखती हुई धडाम से फर्श पर आ गिरी। विधुजी, फूलजहाँ और अन्य महिलाओ ने उन्हें बाँहो मे भर कर उठा लिया। नन्हा मनीष बड़ी मम्मी के धरती पर गिरते ही फूट पड़ा। दत्ता की गोदी से मचलता हुआ उतर कर उससे लिपट गया। फूलजहाँ ने बड़े प्यार से उस रोते-बिलखते बच्चे को फिर गोद मे उठा लिया। सीलिग फ़ेन के नीचे लेटी साधना की आँखों पर जल के शीतल छींटे दिये गये। देखते ही देखते कुछ लेडी-डॉक्टर्स उनकी चिकित्सा के लिये आ जुटी। लेकिन उन्हे होश मे आने से पूर्व ही, उनके वे दोनों दिवंगत अंतरग जीवन-साथी, उन्हें अकेली और निस्सहाय छोड़कर सदा के लिए किसी अजानी मंजिल के लिए रवाना हो चुके थे।

इस महानगर ने अपने जीवन मे ऐसी विशाल शवयात्रा अब तक नही देखी है। हरदिल-अजीज डॉक्टर अरुण मित्रा के लिए आज कौनसी ऐसी आँख थी जो नम नही हुई है और ····'शहीद तेरी मौत ही तेरे वतन की जिन्दगी' की धुन बजाती बैंड की स्वर-लहरियो के सिवा सब कुछ जैसे स्तब्ध और मौन है। हजारों नर-मुण्डों की पंक्तिबद्ध कतारें लगातार आगे बढ रही हैं, जिन्हें देख आज यह समय जैसे गमगीन हो, कही गहरे मे डूब गया है, ठहर गया है वह।

शवयात्रा है यह, तभी तो सभी पैदल हैं—सभी समान और कंधे मे कंधा छुआते से चल रहे है। अभी न कोई मन्त्री है न कोई उसका अर्दली। कौन अफसर है और कौन चपरासी – इसकी किसी को भी चिन्ता नही है आज। छोटे-बड़े का फिर सवाल ही कहाँ है? समानता का कैसा विस्मयकारी अवसर है यह!

दिनान्त भी हो ही रहा है, तो संध्या सिन्दूर लुटाती हुई दिगन्त पर छा गई है, लेकिन पथ के ये राही इस सबसे बेखबर हो, एक बड़ी सी चिता पर साथ-साथ लेटे, धू-धू करती हुई लाल-लाल लपटों की केलि-क्रीड़ा का आनन्द ले रहे हैं। मृत्यु पर्व पर आज अग्नि-गंगा मे स्नान कर रहे हैं वे—

केवल विभूतिमय बनने के लिए। जो कभी अपने सपनों के उन उज्ज्वल फूलों की सेज पर साथ-साथ सोया करते थे, वे अब भी एक ही अग्नि-रथ पर चढ़े चले जा रहे हैं - जीवन के इस कुरुक्षेत्र में विजयी होकर।

और अब ?···· हजारों हसरत भरी निगाहें, जिन्दगी का यह आखिरी तमाशा, बड़ी देर तक देखती रहीं। हजारों दिलों में—एक क्षण के लिए ही सही—जिन्दगी जीने का एक नया अहसास इस ज्वलंत दृश्य ने जगाया है। विधुजी चिता से कुछ ही दूर खड़ी-खड़ी यह सब देख रही हैं। हर लहराती लपट उनके चेहरे के भावों को और भी दीप्त कर रही है। सहसा वक्ष उफना तो एक ठण्डी आह निकल पड़ी। धीमे से होंठ फुसफुसा उठे कि—

> हर साज़ से होती नहीं ये धुन पैदा
> होता है बड़े जतन से ये गुन पैदा
> मीजाने नशा तो गम से सदियों तुलकर
> होता है हयात में तवाजुन पैदा

लेकिन उन अधरों की यह थरथराहट समीप खड़ी हुई महिलाओं तक ने नहीं सुनी। आज तो इस बात की कोई फिक्र ही नहीं है—कि इस पार प्रिये तुम हो, मधु है, उस पार न जाने क्या होगा ?

वह जीवन, वह मधु और वे प्रिय आज इस तरह खाक बनकर भी विभूतिमय जो बन गये हैं न !

सताईस

नितान्त अकेली, उदास-उदास और इस एकान्त जिन्दगी की कचोटती संवेदना की कलम ने न जाने अब तक कितने 'निशानिमन्त्रण' लिख डाले होंगे, कितना 'एकान्त संगीत' प्राणों की वेणु में भरकर गाया होगा, सपनों की कितनी इन्द्रधनुषी सतरंगिणियाँ कल्पना के नीले आसमान पर छा गई होंगी, लेकिन फिर भी उसमें किसी वासन्ती नीड़ के फिर-फिर निर्माण की हवस अब तक जगी ही नहीं····तो फिर उसके लिए किसी मिलनयामिनी का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ?

फिर भी जीवन के इस ऋतुचक्र में मौसम-मौसम के रंग चटखते तो हैं ही, और इसीलिए इस जगत के मन का यह वृन्दावन, मीठी-मीठी स्मृति-गन्धों की मंजरियों से महकता तो है ही। उस वक्त प्राणवायु की इस फगनौटी से कभी इस झुलसे यौवन का पलाश वन भी फूल उठता है, तो अंग-अंग दहक जाते हैं।

लेकिन जब किसी का सुनहरा अतीत, उसके हाथों किसी सुखद भविष्य के सपने-से सुहावने शिशु को सौंपकर बीत जाये, तो वह फिर उसी में तल्लीन हो जाता है। फिर उसे जिन्दगी के बीहड़ रास्ते के ये तीखे-तीखे शूल भी हरी घास के मुलायम बिछौने से लगते हैं, जिस पर क्षण भर ही को नहीं, जिन्दगी भर का पड़ाव पड़ जाता है।

जीवन की ऐसी कविता को जीना आज दुष्कर तो है ही। यही क्या कम है कि लोग क्षणिक उल्लास की उस हरी घास पर क्षण भर ही सही—जी लेते है।

कई-कई रातों की उजागरी के स्नेहांचल तले, घने विश्वास के साथ निंदियाता-जागता, हँसता-खेलता मनीष का वह मासूम चेहरा साधना ने अपनी खुली आँखों से देखा है। यह उसके ही प्रेम-पारिजात का नन्हा-सा अंकुर जो है न .. और इस अंकुर की वह जन्मदात्री धरती कितनी भाग्यवान रही कि मरते दम तक, अपने प्रेमिल आकाश पर, स्नेह की भरी-भरी बदली -सी छायी रही, अपने लहू की बूंद-बूंद उस पर बरसा कर स्वयं मिट गयी।

और साधना का वक्ष यह सोचते-सोचते कँपकँपा गया, एक गहरी और भीगी-भीगी निश्वास में सारा अतीत झलक उठा। आँखों में अश्रु छलछला आये तो उसने झुककर मनीष की नींद भरी पलकों को चूम लिया।

'मनीष ! ...मेरे जीवन का उज्ज्वल नक्षत्र है तू'—और इसी सुदृढ़ निश्चय के साथ, न जाने कितनी रातों तक उसके जीवन का यही क्रम चलता रहा है। उसने डेजीरानी वाला वह सुसज्जित कमरा अब ऋता और फूलजहाँ को ही सौंप दिया है। पति की बैठक अब उल्लास और आयंगर का ड्राइंग-रूम बन गयी है।

यही नहीं—धीरे-धीरे साधना नर्सिंग होम—बदलते वक्त की रफ्तार की तरह विस्तारित हो रहा है। उसके प्रागंण में जो खाली जगह अब तक उपेक्षित हो पड़ी थी, उस के एक भाग पर एक दोमंजिला इमारत खड़ी हो रही है, काम समाप्ति पर ही है। बीच में सीमेण्ट के अक्षरो में लिखा है—'मनीष शिशु कल्याण केन्द्र।'

और साधना दिन भर मधुमक्खी की तरह अपने मरीजों की सेवा मे खोयी रहती है। अब फूलजहाँ ही अधिकतर मनीष के साथ, हरे-भरे लॉन पर भाग दौड़ करती है। नहाना-धोना, नाश्ता आदि भी मनीष 'फूल बी' के साथ ही करता है। पर खाना अब भी अपनी बड़ी मम्मी की गोद ही में बैठकर खाता है। संध्या हुई नहीं कि रितु बुआ, फूल बी, बड़ी मम्मी को लेकर मनीष महात्मा गाँधी मार्ग पर दूर तक टहलने निकल जाताहै। थकावट आते ही वे सुभाष बाग के हरे-भरे लॉन मे जा बैठते हैं। उल्लास और आयंगर भी अपने कामों से निवृत्त हो वहीं पहुँचा करते हैं।

मनीष और उसकी फूलबी वहाँ भी कुत्ता-बिल्ली का खेल खेलते है। तब तक डॉक्टर साधना, ऋता, उल्लास और आयंगर आगामी कल के कार्यक्रम पर विचार विमर्श करते रहते हैं। भारी नवचेतना समाज फिर जोर-शोर से अपनी गतिविधियाँ चला रहा है, यही सबके लिए सन्तोष का विषय है। लेकिन तभी आयंगर ने अपना प्रस्ताव फिर दोहराया—कि साधनाजी और सब अब साफ-साफ सुन लें—कि मैं तो इसी सप्ताह अपनी इच्छा से उस सरकारी गुलामी से मुक्त हो रहा हूँ।'

'फिर'

'फिर क्या, फिर मनीष शिशु कल्याण केन्द्र के लिए आवश्यक उपकरण और साधन जुटाने में लग जाऊँगा।'

'हूँ ऽ ऽ ऊँ ! तो फिर और ?'—उल्लास के उत्फुल्ल नेत्रों ने पूछ ही लिया।

'यही कि अब तक जो कुछ बच पाया है, वह 'मनीष शिशु कल्याण केन्द्र को ही समर्पित है। यह मेरे उस पाप का प्रायश्चित है, भाई !' 'पाप का प्रायश्चित ?'—साधना तपाक से बीच ही में बोल उठी। 'कि उस रात मैं

मनीष के प्रिय पापा और मम्मी को मौत के मुख से नहीं बचा पाया।'—कहते कहते आयंगर भाव-विह्वल हो गये तो आँखें फिर भर आईं।

'आंयगर दा! इस सोती पीड़ा की आग को बार बार, इस तरह न छेड़ो! ....ये सोयी चिनगारियाँ ही हमारी प्रेरणा—किरण है न, दा!

'हम सब हर कार्य में आप ही के साथ हैं। आपका मार्ग दर्शन ही हमारे लिए बड़ी नियामत है, दा!'—भीगी भीगी दृष्टि ने निहारते हुए उन्हें जब यह कहा तो उन्होंने रूमाल निकाल कर तत्काल आँखें पोंछ लीं। फिर धीरे से बोले—साधना भाभी अपनी पूरी शक्ति और लगन से नर्सिंग होम का काम देख ही रही हैं। और रितु नारी नवचेतना समाज' की रीढ बन चुकी है, फिर 'मनीष शिशु कल्याण केन्द्र' का संचालन भार किस पर हो?

'वह भी साधना भाभी ही देख लेंगी। एक सहायक डॉक्टर और नर्स ही तो चाहिये न? सो मिल ही जायेंगे।'

'तब हम?'

'उन 'जन जागृति केन्द्रों' को हमारे बिना फिर कौन सम्हालेगा? प्रदेश भर की पंचायतों और जिला परिषदों तक में तो हमारे केन्द्रों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। माध्यमिक शिक्षा संस्थानों के लिए—शिक्षक संघ के साथ मिलकर, हमें अपना कार्यक्रम तैयार करना पड़ेगा।'

'क्यों रितु, क्या खयाल है, तुम्हारा?'

'ठीक है। लेकिन अब जो भी कदम उठायें, बड़ी मुस्तैदी के साथ ही उठायें...... अब तक तो हम चार सौ ग्राम-पंचायतों और इक्कीस जिला परिषदों तक ही सीमित हैं न। मेरा खयाल है, इस दिशा में अब भी बहुत कुछ करना है। आज इन सार्वजनिक निर्माण कार्यों में कितना गोलमाल हो रहा है, आपाधापी फैल रही है। कितने जिले अब भी सूखे के त्रास में सुलग रहे हैं। बड़े बड़े जमींदारों के लठैत सरकारी अधिकारियों और पुलिस के पलुवा गुंडों का आतंक अब भी बराबर बढ़ता जा रहा है। देखा नहीं—खड़ी फसलें आग की भेंट कितनी हेंकड़ी के साथ कर दी गयीं.......

'कहीं झोपड़ियाँ जल रही है, तो सामूहिक बलात्कारों का सिलसिला भी अब तक जारी है। थानों मे की जा रही हत्याएँ भी क्या बंद हो पाई हैं, अब तक ?

'और फिर दूसरी ओर हमारे ये आतंकवादी नक्सलाइट भी तो है न ?.......और तो और, सुनहरे मंदिरो की वह अलगाववादी दृष्टि भी अब तक कहाँ साफ हो पाई है ? क्या आज भी निर्दोष जनों की हत्याएँ नहीं हो रही है, वहाँ ?'—चिन्तातुर भवें बल खा गयी।

'मैं समझता हूँ, रितु ! कि आतंकवाद ही क्या—आज तो ये वाद हर दृष्टि से हेय हैं ही—चाहे फिर वह धार्मिक जुनून भरा आतंकवाद ही क्यों न हो ? ......और लगता ऐसा है कि कभी कहीं यह सारा देश ही खुला जेलखाना ही न बन जाये ? देखा नहीं उस रोज आंध्र में बीस आदमी पुलिस की गोलियों से भून दिये गये ?.......जिनका न इस 'राव' से कोई लगाव था न उस 'राव' से ही।

'फिर 'राव' तो सत्ता भोगी ही रहे हैं—कभी यह 'राव' उस सिंहासन पर रहा, तो कभी वह 'राव'। बेचारे मरने वालों को तो पुलिस की गोलियाँ ही नसीब हुई न ?

'आज तो हर राजनेता जनता के असंतोष की इस आग पर अपनी ही रोटियाँ सेक रहा है।'

'हूँ ऽ सचमुच ही यह समय बहुत ही गंभीर है, उल्लास भाई !'—साधना ने उच्छ्वसित हो कहा, तो सभी एक दूसरे की ओर सजग दृष्टि से देखने लगे।

'मनुष्य मन का यह पाशविक पागलपन निश्चय ही हिकारत भरा है। सैंकड़ों निहत्थे लोगो की हत्याएँ आज न किसी को जन्नत रसीद कर सकती हैं न किसी को स्वर्ग ही दे सकती है। यह जुनून भी एक घिनौनी उकसाहट भर है। मैं पूछती हूँ—क्या मनुष्य मात्र की समानता इन हत्याओं से इस धरती पर स्थापित की जा सकती है ?

'लेकिन, छोड़ो जी, हम तो इस रास्ते के राही नहीं हैं न अब ?'—ऋता ने उल्लास की ओर मुस्कराते हुए देखा।

लेकिन ......!'

'लेकिन क्या, ऋतु ?'

'कि अत्याचार, अन्याय और शोषण का प्रतिकार तो हम सदैव करते ही रहेंगे। मैंने विधुजी और उनकी उन हमजोली महिलाओं से भी इस विषय में खुलकर बातचीत की है, और मैंने तो निश्चय कर लिया है कि 'नारी नवचेतना समाज' की अध्यक्षा इस बार उन्हें ही बनाया जाय। बहुत ही सुलझे विचारों की नारी है, वे। कह रही थी कि ऋतु ! अभी तो हमारा यह आधा देश न्याय के लिए अब भी तरस रहा है। हमारी ये ढेर सारी अदालतें अब भी पुरुष प्रधान कानूनों की संरक्षक मात्र रही है.......और.......और आज भी जघन्य सामूहिक बलात्कारों की शिकार यह नारी जब अदालत की शरण लेती है, तो ट्रायल तो उसी की होती है, न ? उसके उन क्रूर बलात्कारियों को नहीं।

और 'ना' को 'हाँ' समझने का अभ्यासी यह पुरुष मन उस न्याय की कुर्सी पर बैठकर, उन बलात्कारियों को आज भी बरी करता रहता है। जिरह की हर दलील हमारी बहनों को आदतन 'कुलटा' और 'बदजात' ही करार देती रही है - जैसे कि नारी होना ही बदजात, नीच और छिनाल होना हो। कितना ओछा है यह विश्वास कि नारी आदतन कामासक्त होती है - कि तभी वह कामिनी कहलाती है। क्या पुरुष कामी नहीं कहला सकता ? मैं पूछती हूँ क्या यही सत्य है आज की इस न्याय-व्यवस्था का ?—बेचारी उस गरीब की इज्जत—आबरू के कफन तक को चिथड़े—चिथड़े कर आज तक बिखेर दिया जाता रहा है।

'है न सत्य ?'

'सचमुच बड़ी गहरी पीड़ा है—विधुजी के मन में, ऋतु ! 'समाज' के नेतृत्व की बागडोर अब उन्हें ही सौंप दी जानी चाहिये।....... और, वैसे हमारे लिए तो वे दुधारू कामधेनु भी हैं।।हैं न ?'

'वास्तव में कामधेनु ही हैं वे। नहीं तो न 'समाज' का काम ही इतना अच्छा चल पाता, न 'साधना नर्सिंग होम' ही। और अब तो 'मनीष शिशु कल्याण केन्द्र' भी है ?'—साधनाजी ने प्रश्न भरी दृष्टि से देखा।

तुम लोग अब इस ओर से निश्चिंत ही रहो। फिर हर मरीज की सेवाओं से भी आपको कुछ न कुछ तो मिलता ही रहेगा। स्टाफ और रख-रखाव के सारे खर्च से मुक्त इसीलिए है हम।

केवल 'चलचिकित्सालय-वान' और औषधियों का ही तो बोझ है, और हमारे भाई साहब ने इस दिशा में पूरी मदद का वादा किया है। देखा नहीं - अकाल पीड़ित अंचलों मे उस 'फ्लू' की महामारी के दिनों में वे स्वयं 'वान' की ड्राइवरी तक करते रहे। इन्जेक्शनों और औषधियों की सप्लाई निरंतर उन्हीं के 'विधु मेडिकल स्टोर्स' से ही होती रही। .... और उस दिन श्मशान भूमि पर ही इस शिशु कल्याण केन्द्र का प्लानिंग उन्हीं की सूझबूझ का काम है। मैं तो इसीलिए अभी वहीं पहुँच रहा हूँ'—उठते हुए राजन एस. आयंगर बोल उठा।

'तो हम भी घर चलें न!'— और साधना ने पुकारा—'फूल बहिन! मनीष बेटे। आओ भाई, चलते है हम!'

और वे सभी लोग तत्काल खड़े हो गये। मनीष दौड़कर अपनी मम्मी की साड़ी के छोर से लिपट गया। गीली मिट्टी से सनी नन्हीं-नन्ही हथेलियों की दो चार छापे खादी रेशम के उस हरे आँचल की भी शोभा बन गईं। साधना ने देखा तो 'शैतान!' कहती हुई तुरंत गोद में उठा कर चूम लिया।

'थ्यू, कर लिये न हाथ गंदे!'—अपने रूमाल से उन नन्हीं करतलियों को साफ करते हुए पूछा।

सारी मण्डली बतियाती हुई, धीरे-धीरे अपने गन्तव्य की ओर चल पड़ी।

अठाईस

विधान सभा का अधिवेशन कल ही तो शुरू हो रहा है। शरद की पूनो है कल तो। मुख्यमंत्रीजी के आवास पर पार्टी विधायकों की बड़ी सरगर्मी है। पर, मुख्यमंत्री शायद अब भी बाहर पधारे हुए हैं। लोगों को बैठाने

और जलपान की व्यवस्था में भी कुछ कर्मचारी अब भी व्यस्त हैं। कुछ लोग बाहर ही के विशाल 'लॉन' पर ही मण्डली जमाये हुए है।

सिर पर चाँद जो मुस्करा रहा है, तो लोगों का मूड अब तक तनाव-रहित ही है।

उधर विपक्षी दल और पार्टियाँ भी कल के अधिवेशन के लिए अपने-अपने औजार पैना रही हैं न। कल ही वे अघोषित रूप से राज्यपाल के भाषण का बहिष्कार कर, प्रदेश की व्यवस्था और कानून की दिनोंदिन बिगड़ती हुई स्थितियों के प्रति चेतावनी की पहली किस्त पेश कर रहे हैं। डॉ. मित्रा और उसके परिवार की नृशंस हत्या का राज अब कोई राज ही नहीं रहा है। और तमाम षड्यन्त्रकारियों के घिनौने चेहरे बेपर्दा हो चुके है, लेकिन वे लोग अब भी अपने ऊँचे पदो पर आसीन हैं और यह शासन व्यवस्था उसी बदगुमानी की मस्ती में डूबी हुई, उसी बेढंगी रफ्तार से अब भी चल रही है।

फिर भी अनेकानेक समस्याओं से आक्रान्त जनता का यह मन उसे कितने दिनो तक याद रख पाता? डॉ. मित्रा और डेजी की संगमरमरी प्रतिमाएँ 'साधना नर्सिंग होम' के प्रागण मे लगवाकर ही संतोष कर लिया गया, हालाँकि प्रदेश के हजारों चिकित्सा कर्मचारियों ने कल ही विरोध प्रदर्शन करने की तैयारियाँ कर ली है। उधर किसान नेता भी किसी से पीछे नहीं हैं। भारी प्रदर्शन होगा ही। गाँव-गाँव से बैलगाड़ियाँ और ट्रैक्टर की कतारें राजधानी मे जमा हो रही है—लगता तो ऐसा है कि कल सभी मिलकर सत्ता का आसन हिला देंगे।

लेकिन यह सब कतई आसान बात नही है। पुलिस के जरायमपेशा हैवानी डंडो की खुराफातों और खूंदते हुए घोड़ों की खुरतालों में इन सबको रौंद डालने की कितनी शक्ति है, इसका स्वाद बेचारी यह जनता कई बार चख चुकी है। ऐसे माहौल में दस—बीस की मौत तो मामूली बात है, क्योंकि सरकार अश्रु गैस के गोलो और थ्री नॉट थ्री की गोलियों ही से बनती है न!

फिर बिना विरोध किये और टकराये बिना भी आज सुनता कौन है? इसीलिए प्रदेश भर से आये ये हजारो किसान राज्यपाल को कल राजभवन

से निकलकर विधान सभा भवन जाने ही नहीं देंगे। राजभवन के सभी मार्ग, ट्रैक्टरों, बैलगाड़ियों और जनसमूह के पड़ावों से पट गये है। उल्लास दत्ता के इस अहिंसक नेतृत्व ने इस जन-आन्दोलन को यह कारगर रूप दे ही दिया है। कोई भी सरकार देश के इस विशाल आर्थिक मेरुदंड को भला कैसे तोड़ सकती है ?—और इसीलिए उसकी जान आज सांसत में है।

तभी मुख्यमंत्री शर्मा साहब अपने चुनिंदा साथियों के साथ तारा-नर्सरी के लॉन पर कुछ परेशान कदमों से भाई साहब के साथ धीरे धीरे बतियाते हुए चहलकदमी कर रहे है।

'आज सवाल अपनी पार्टी का है, भाई साहब !'—उन्होंने फिर एक बार दोहराया 'जो भी रीति-नीति रही हो अब तक, उस पर इस क्षण बहस की गुंजाइश मैं समझता हूँ, नहीं है।...... केन्द्र का आदेश है कि आपका विश्वास भी मुझे मिले, और उसी याचना के साथ मैं आपकी सेवा में अभी यहाँ आया हूँ'—और कहते ही उन्होंने अपने वरिष्ठतम साथी की ओर देखा, तो आँखें चार हुईं।

'शर्मा साहब, आप घर पधारे, उसके लिए मैं उपकृत हूँ। यह घर तो आपका ही है। लेकिन...... शर्मा साहब, वह हादसा यह मन अब तक नहीं भूल पाया है...... विश्वास करने को जी चाहता ही नहीं है कि साधारण औरतों के चेहरों में आप जैसे परिपक्व राजनेता के लिए भी ऐसा उद्दीपक आकर्षण अब भी है !......

'डॉ. अरुण मिश्रा वाला वह हत्याकाण्ड तो कितना वीभत्स और अमानवीय रहा है कि उसकी याद मात्र से हृदय हिल उठता है'—और उन्होंने उड़ती हुई दृष्टि से शर्माजी की ओर देख भर लिया, और मौन हो गये।

'भाई साहब !...... उस सबके लिए कुछ हद तक—मैं स्वीकारता हूँ कि मैं और मेरा मंत्रालय दोषी अवश्य हैं क्योंकि गृह मंत्रालय भी मेरे ही पास है। लेकिन विश्वास कीजिए...... विधान सभा की उपाध्यक्षा उस बत्रा ही की यह सारी कारस्तानी है। मेरे मन पर उसके या उस जैसी किसी नारी के आकर्षण का कोई प्रभाव नहीं।

'और पार्टी की प्रभावशाली सदस्या हैं वह। बीस-तीस विधायक जो साथ हैं उनके? इसलिए कुछ समर्थन देना ही पड़ता है, उनके लिए आपके सामने मैं लज्जित हूँ, भाई साहब!'—वह लाचार दृष्टि उस लॉन की घास पर बिछल गयी।

'कैसी गति है यह—साँप छछूंदर की-सी कि न निगलते ही बन पड़ता है, न उगलते ही। ""कितना गलत रहा है यह चयन, शर्माजी? - ऐसी बीभत्स और घृणास्पद रंजिश के पीछे जो भी लोग हो, उनसे जल्दी ही मुक्त हो जाइये महामहिम! अन्यथा ""......' कहते ही उन्होंने फिर मुख्य मन्त्री की ओर देखा।

'अन्यथा क्या, भाई साहब?'

'यही कि ऐसे ही लोग हमारी पार्टी के लिए खतरे की घंटी हैं। आज तो इन्हीं अवसरवादियों और निहित स्वार्थियों से घिरे हुए हैं न हम? अपने गिरहबान में जरा झाँककर तो देखिये, सच है न शर्माजी?"" फिर मुझसे समर्थन की आशा कैसे कर रहे हैं, आप!

'मैं..........मैं तो देश के स्वाधीनता संघर्ष से पैदा हुए मानवीय जीवन मूल्यों के लिए आखिरी साँस तक प्रयत्न करता रहूँगा। यह हो सकता है कि ऐसे समय मैं और मेरे जन प्रतिनिधि साथी आपका विरोध विधान सभा में न करें। लेकिन आपका समर्थन—और वह भी सक्रिय—करना मेरे लिए नामुमकिन है, क्योंकि ऐसा करना मानवोचित नहीं होगा।'—आवाज में दृढ़ता मुखरित हो उठी।

'तो......फिर आपका यही निश्चय " ?'—हताशा दृष्टि में घुल गयी। 'मुझ से इतनी ही इमदाद हो सकती है, शर्माजी!......आप जैसे चतुर तो इतने से ही गढ़ जीत लेंगे......और सुन लीजिए ......केन्द्रीय नेतृत्व को भी इस विषय में 'साउण्ड' कर सकते हैं, आप।'

'भाई साहब, क्या कह रहे हैं आप?'—विस्मय विस्फारित वह दृष्टि चौंक गयी।

'शर्मा साहब! मैं यह सब अच्छी तरह जानता हूँ कि ये बातें केन्द्रीय नेतृत्व के महासचिव तक निश्चित रूप से पहुँचेंगी ही। भई, वे तो राजकुमार

हैं ही सत्ता के ! लेकिन मेरी आस्था बहुत स्पष्ट है कि पार्टी के हर जायज हुक्म को बड़ी मुस्तैदी से बजाता रहूगा, क्योंकि हमारी पार्टी के उसूल ही इतने अच्छे है कि जिन पर तमाम दुनिया की इन्सानियत इत्मीनान कर कर सकती है।

'लेकिन शर्मा साहब ! मैं इन्सानियत का खून बर्दाश्त नही कर सकता और वह भी पार्टी के किन्हीं मौकापरस्त चहेतो की महज मर्जी के लिए।

यहां तो—

तू समुन्दर ही सही
मगर हिकारत से न देख
जंगलों में बह रहा हूँ
मगर दरिया मैं भी हूँ

'मुझे भी अपने उसूल प्यारे हैं शर्मा साहब ! और आप लोगों ने तो उस दिन हद हो कर दी न ?'—कहते कहते कंठा अवरोध हो गया तो शब्द चुप हो गये।

'हद ही कर दी, क्या मतलब है, भाई साहब ?' 'अपने गिरहबान में जरा झाँककर तो देखो न शर्मा साहब ! कि मिश्रा और उनकी उस बेगुनाह पत्नी की इसलिए हत्या करवाई गयी, क्योकि वे लोग मुझसे और मेरे परिवार से मोहब्बत रखते थे उन दिनों तो सचमुच ही मेरे आत्मीय बन चुके थे—और कि ऐसे लोगो की हत्या से तुम लोग मेरे समर्थक जन-प्रतिनिधियों को भी बतौर उसके चेतावनी ही तो दे रहे थे ! क्यों, क्या झूठ है यह शर्मा साहब'—वह प्रश्नाकुल दृष्टि तपाक से मुख्यमंत्री की दृष्टि से जा टकराई तो वह लॉन की हरीतिमा पर झुक ही गयी। —प्रश्न अनुत्तरित ही रहा तो वे फिर सावेग बोल उठे—'शर्मा साहब,—यह मौत डॉ. मिश्रा और उनकी पत्नी की ही नही है—यह तो मेरी और मेरी उस बीवी की है, जिसे तुम भाभीजी कहकर अब तक पुकारते रहे हो। विश्वास न हो तुम्हें तो अभी जाकर उसी से पूछ देखो न ? उसकी—कई रातों की नींद हराम हो गई है, भूख और प्यास बुझ-सी गयी है। —और यह तो अच्छा है कि मैं आज भी देश की संसद का एक अदद सांसद हूँ, जो अपनी शख्सियत, अपने बुलंद हौसलो और तरक्कीपसंद जज्बातों के कारण अब भी

बना हुआ हूँ, और कि इसी इन्सान परस्ती के कारण ही, मेरी जिन्दगी के इन अठारह वर्षों से, अनेक चपरासियों से लेकर आला अफसरों का स्नेह सौजन्य अब भी मुझे मिल रहा है। नही तो ....नही तो अब तक मैं और मेरा परिवार भी ठिकाने लग ही गये होते न ?

'लेकिन शर्मा साहब ! —जिस युग मे हम पैदा हुए, और जिस आस्था को हमने जीवन भर जिया, वह हमसे छूट जायेगी, यह अब नामुमकिन है। इस आखिरी वक्त क्या खाक मुसल्मां होगे हम ? —और आप तो कितना बाद में आये हैं, इस क्षेत्र में ? विगत वर्षों के मेरे शासन काल में, मुझ ही पर क्या क्या इल्जाम और लांछन नही लगाये गये थे - कि उस प्रसिद्ध देवस्थान का करोड़ों रुपया, मैं उसके महंत से वसूल कर डकार गया था —कि अमुक सेठ की हवेली से बरामद करोड़ों रुपयों की अवैध सोने की सिल्लियां भी मैंने ही हथिया लीं। और भाई ! तुम तो जानते ही हो—वे महंत और वही सेठ और उनका परिवार आज भी जिन्दा हैं। मालूम है न, देश भर में उन बातों को लेकर कितना शोरगुल हुआ था। सी. बी. आई. के आला अफसर कई दिनों तक यहाँ छान बीन के लिए पड़े रहे और उनकी जाँच रिपोर्ट आज भी सनद की तौर पर मौजूद है ही।.... और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पार दर्शी से समूचे प्रकरणों की जांच रिपोर्ट गुजर चुकी है।

'पर, जो वेदाग था, वह बेदाग ही रहा न ? और शर्मा साहब, आप तो जानते ही हैं कि राजनीति के क्षेत्र में प्रतिद्वंद्वियों की कोई कमी नही है और आज तो लगता है कि हम सब एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी ही है चाहे ऊपर से हम एक दूसरे के पिछलग्गू दीखते-दिखाते रहे हो। अतः इस ओर से वेखबर नरहियेगा।

'और यही कारण है कि मैंने पहले ही अपनी सारी सम्पत्ति का ब्यौरा अपनी पार्टी और सत्ता के समक्ष रख दिया है। ज्योंही सत्ता परिवर्तन हुआ नहीं कि मैंने वह गवर्नरी तत्काल त्याग दी। बदली हुई सरकार क्या बिगाड़ लेगी, मेरा ?'—कुछ हांपते हुए से वे बोलते रहे।

'शर्मा साहम। क्षमा कीजिएगा मैं कुछ आवेश में आ ही गया। डा. मिश्रा और उनकी पत्नी की हत्या की दोधारी करौत सी पीड़ा, मेरे अन्तर में गहरी पैठी हुई है—ओह, पीड़ा.......दर्द....ओफ्ऽ ऽ ओ....हों ऽऽ आ........

और एक चीख के साथ वे अपना दर्दाहत सीना दोनों हाथों से जोर से दबाये, धम से नीचे बैठ गये। चीख सुनते ही कमरे मे बैठे लोग दौड़ आये, और उन्हें अपने हाथों ही हाथो पर उठाये बैठक मे ले आये। फोन की घटियां झनझना उठी......डॉक्टर! डाक्टर! डॉक्टर की पुकार से सारा वातावरण त्रस्त, आशंकित और अभीभूत हो उठा। अब लमहा-लमहा बड़ी बेसब्री से गुजर रहा है। डॉ. राय को रिंग किया गया तो सुनते ही तारा नर्सरी के लिए चल पड़े। कुछ ही क्षणों बाद चप्पलों की धीमी आहट के साथ डॉ. साधना अपनी नर्स के साथ बैठक में घुस आई तो विधुवती और अम्माजी की छलछलाती उन आँखो में जैसे प्राण ही लौट आये।

डॉ. साधना को देखते ही मुख्यमंत्री अपने साथियों के साथ चुपचाप बाहर खिसक गये। लेकिन डॉ. साधना सधे डग भरती दीवान पर लेटे, धीरे-धीरे कराहते नीमहोश भाई साहब के पास आ पहुँची। स्टेथेस्कॉप को मरीज के हृदय पर लगा धड़कन की परीक्षा की, तब तक नर्स ने मेडिसिन बॉक्स खोल समीप ही टेबुल पर रख दिया। डॉक्टर साधना ने रक्त-चाप लिया ही था कि डॉ. राय भी अपने साथियो सहित आ पहुँचे। डॉ. साधना से कुछ परामर्श करते ही सुई तैयार की गई, और दो इन्जेक्शन तत्काल ही लगा दिये गये।

कुछ क्षण मौन के अन्तराल मे विलुप्त हो गये। तभी सभी ने देखा कि मरीज की वह धीमी कराह भी अब शान्त हो गई है। चेहरे का वह दर्द भरा तनाव फिर अपनी सहज सौम्यता मे बदल गया है। उसी वक्त मनीष को लिये ऋतुम्भरा, उल्लास और आयंगर भी बैठक मे आ गये। आते ही बच्चे ने सहजभाव से ताऊजी को सोता देखकर पुकार ही लिया—'ताऽऽऊजी।'

और भाई साहब की वे दोनो मुंदी पलकें हल्की-सी हलचल के साथ सचमुच ही खुल पड़ीं—देखा—यह तो मनीष खड़ा है। मन प्रसन्नता से भर गया तो उन्होने उठने का प्रयास किया, किन्तु डॉ साधना ने तुरन्त उन्हें फिर लिटाते हुए कहा—'नही, भाई साहब! अब सुबह तक विश्राम ही कीजिएगा।' लेकिन तब भी उन्होंने समीप खड़े मनोष को दाहिने हाथ से पकड़ कर हृदय के पास खीच लिया, स्नेहाकुल आँखें डबडबा आईं। बच्चे ने कान के पास अपना मुंह लगाकर फिर धीरे से पुकारा—'ताऊजी!'

'बेटे मेरे।'—एक गहरी निश्वास सहज ही निकल कर बच्चे के कपोल को आर्द्र कर गयी।

और उस नन्हें से स्नेह की उमगती वह चुलबुली आवाज फिर गूंज उठी—'ताऊजी!'

उनतीस

कातिक की सांझ का सुरमई झुटपुटा। तारा नर्सरी का सारा फार्म हाउस चंदन की मीठी-मीठी धूम्र-गंध से महक रहा है। माँ तारा की संगमरमरी प्रतिमा का देदीप्यमान मुख दीपाधारों के दीपको के आलोक से और भी अधिक दमक रहा है। कुशासन पर बैठे पति-पत्नी पंडितजी के मंत्रोच्चारण के साथ अब तक हव्य को होमते रहे थे। पूजन-हवन समाप्त हुआ तो बड़े ही प्रणति भाव से पति देव उठ खड़े हुए और ध्यान मग्न से बैठक में चले आये। फिर भी विधुजी तन्मय हो माँ की प्रतिमा के सामने ही कुछ पल पलकें मूंदे बैठी ही रहीं और उसी तंद्रिल भाव पूर्ण अवस्था में उन्हें लगा जैसे माँ के वे सुन्दर अधर हिल रहे है, कुछ कह रही हैं, वे—'क्या है, माँ?' उनके अस्फुट अधर भी हिल पड़े।

—क्या?—सचमुच, अपने साथ ले जा रही है, आप? ...... और मुझे?'...... और हठात् वे बंद पलकें हड़बड़ा कर फिर खुल पड़ीं। उन्होंने देखा—दोनो ओर के दीपाधारों की निष्कम्प वर्तिकाओं की लौ, न जाने क्यों अधिक उद्दीप्त हो उठी हैं। माँ के वक्ष पर सुशोभित गुलाबो का पुष्पहार यकायक लहरा उठा। विस्मय-विभोर वह मस्तक फिर माँ के चरणों में झुक गया। तभी 'टप से एक फूल उनके सिर पर आ गिरा। इतने ही में डॉ. साधना मित्रा, मनीष, उसकी फूल बी और ऋता के साथ वहीं दर्शनों के लिए दौड़ आईं। आते ही मनीष अपनी ताईजी की पीठ पर झूल-सा गया तो वह झुका हुआ शीश तुरंत ऊपर उठ गया।

'अरे, आप लोग—इतनी देर कहाँ थे?'—विहँसते अधर पूछ बैठे। और उन्होने मनीष को धीरे-से खींचकर हृदय से लगा लिया। वे भी तुरंत

खड़ी हो गई —'आओ न, बैठक ही में बैठें हम। अपने भाई साहब से मिली कि नहीं ?'—और सभी प्रसन्न मन बैठक मे आ धमके। देखते ही भाई साहब ने पुकार लिया —'मनीष बेटे।'

और स्वयं ही सोफा चेयर से उठ, लपकते हुए उसे गोद मे भर लिया।

'हम प्रसाद लेंगे, ताईजी से लेंगे हम'—विधुजी की ओर तकते हुए मनीष पुकार उठा।

'अच्छा, अच्छा। यह तो बताओ भई, कि आज इतनी देर से क्यों आये ? देर से आने वालों को भी कही प्रसाद मिला करता है ? तुम्हें भी नहीं मिलेगा, आज।'

कैसे नहीं मिलेगा, ताईजी देंगी मुझे।' कहते हुए बच्चे ने गोद से उतरने का प्रयास किया।

'नही, हम नहीं उतरने देंगे, अब। हम तो कल बाहर जा रहे है, न। एक बड़े सारे मेले में। तुम भी चलोगे न बेटे ?'—दुलराते हुए उन्होने पूछा।

'मेले मे ?'—उत्सुकता भरी बरौनियाँ फैल गयी।

'हाँ, हाँ, मेले में। बहुत-बहुत बड़ा मेला लगेगा वहाँ। दूर-दूर के लोग-बाग इकट्ठे होंगे।

'मेला देखने आयेंगे, सब ?'

'हाँ, बेटे हाँ,—हजारों की तादाद में आयेंगे।'

'खेल-तमाशे भी होंगे ?'—सहज विश्वास ने फिर पूछा।

हाँ, हाँ, वह अपने आप मे एक बहुत बड़ा खेल-तमाशा ही होगा। लोग-बाग नये-नये कपड़े पहन कर आयेंगे। एक विशाल पण्डाल लगेगा, जिसमें सैकड़ों ट्यूब लाइटें लगेंगी। हरी, सफेद, केशरिया अनेक फरहरियाँ लगेंगी। लाउड स्पीकर लगेंगे। बैठने के लिए काफी जगह रहेगी, फिर भी लोग-बाग अँट नही पायेंगे उसमें।'

'तो झूले भी लगेंगे न ?' खिलौने और खील-बताशे ? हम खूब खिलौने लेंगे, है न ताऊजी ?'—बड़े प्यार से गलबांहें डाले मनीष बोल उठा।

पर, बेटे ! उस विशाल तमाशे के शामियाने में खिलौने और खील-बताशे नहीं बिका करते। उसमें तो हम सब खिलौनों की तरह मौन बैठ कभी-कभी सिर हिलाते रहेंगे, कभी-कभार उस खिलाने वाले खिलाड़ी के लिए तालियाँ बजाकर जय-जयकार करेंगे।'

'तो तालियाँ भी बजेंगी ?'

'बेटे, आज तो करोड़ों लोग केवल तालियाँ बजाने के लिए ही पैदा हुए हैं न, तो बेचारे तालियाँ बजा-बजाकर ही संतोष कर लेते हैं। वहाँ तो हर खिलाड़ी यही खेल खिलायेगा। कोई जोरदार तालियाँ बजवाता है, तो किसी के खेल में तालियाँ कम ही बजती हैं, बस।'

'छी: यह भी कोई खेल हुआ। हम नहीं जायेंगे उस मेले में।'—और अपनी नन्ही-नन्ही हथेलियों के बीच उनका मुँह लेते हुए धीमे से कह दिया—'ताऊजी, आप भी मत जाइयेगा, वहाँ।'

'मैं भी नहीं जाऊँ वहाँ, क्यों बेटे ?'

'नहीं नहीं, बुरे लोग हैं वे। हमसे सिर्फ तालियाँ बजवाते हैं। मदारी हैं या जादूगर ? कहीं फिर घर लौटने भी न दें तो ?' मीठी मनुहार भरे वे सुकुमार शब्द गूंज उठे।

'ऐसा है, तो सोचेंगे, बेटे। आओ, वहाँ बैठे अब—उस गोल मेज वाली कुर्सियों पर।'—और वे सभी वहीं जा जमे। मनीष गोद से उतर कर तब अपनी ताईजी के समीप जा खड़ा हुआ तो उन्होंने उठकर उसे समीप की कुर्सी पर बड़े स्नेह से बैठा दिया।

'वे लोग तो अब तक नहीं आये, क्या बात है ?'—उनके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा।

'आते ही होंगे, भाई साहब ! 'ग्राम चल चिकित्सालय' की वान कल से वर्कशॉप गयी हुई थी, शायद उसी के चक्कर में कहीं उलझे होंगे।'—डॉ. साधना ने सहज भाव से उत्तर दिया तो उन्हें जैसे तसल्ली हो गयी।

'लेकिन, भाई साहब ! आप भी नाहक ही परेशान हो उठते हैं। ये झगड़े-टंटे तो रोजमर्रा की बात हो गयी है, इस वक्त की। आप तो सब तरह से निवृत्त हैं, अब निश्चिंत रहिये। मैं तो नहीं समझती कि.........' कहते हुए उसने उनकी ओर घूर लिया।

'कि क्या ?'

'यही कि आप इस प्रदेश के पंचायती महा सम्मेलन में शरीक ही क्यों हो रहे हैं ? आपने क्या नहीं किया है अब तक इस ग्राम स्वराज्य के लिये ? ....मुझे वह दिन अब तक याद है जब कि उस अपार जन समूह के सामने इस विराट देश की धरती पर, सबसे पहले आप ही के सद्‌प्रयत्नों से दीप जला

कर पंडित नेहरू ने पंचायती राज्य की नींव रखी थी। कितना विराट आयोजन था वह।

'...... आप तो पुरोधा रहे है न, उसके ? ...... फिर उसके इन छोटे-मोटे रिहर्सलों में आपके शरीक होने का कोई औचित्य ही नहीं दीखता है, मुझे।

'फिर ......जैसी आपकी इच्छा। लेकिन यह भागमभाग आपके मन के लिए भले ही अच्छी हो, हम लोगों के लिए कतई अच्छी नहीं है, भाई साहब! अपने आप पर न सही, हम पर तो रहम कीजिए न!'—और वह दृष्टि जैसे निराश हो फर्श पर झुक गयी। क्षण भर वे सभी खामोश दिल अपने में ही डूबे रहे। तभी ऋता ने बात को झेलते हुए कह दिया—'ठीक है, इस बार भाई साहब की बड़ी इच्छा है तो हो आयें, लेकिन अब इन्हें ऐसे किसी मानसिक तनाव की तीव्रता से आक्रान्त होने की कतई जरूरत नही। वे दोनों भैया साथ जो जा रहे है, तो वैसी चिन्ता की बात नही है।'

'हाँ, ग्राम पंचायतों के इन हालातों को तो हम देख ही रहे हैं। इनके कारण ही गाँव-गाँव के घर-घर में चुनावी राजनीति का जहर फैल गया है। —आये दिन हत्याएँ, मारपीट, जुल्म-ज्यादतियाँ होती ही रहती हैं। सत्ता के ऐसे विकेन्द्रीकरण ने तो उस सत्ता की भूख को जनता के मन मे अधिक प्रबल बना दिया है, बहिन! फिर न जाने ऐसे सम्मेलनो के इन रिहर्सलों से क्या होना जाना है ? सत्ताधारी पार्टी का यह एक साधन मात्र बन कर जो रह गये है।'—फूलजहाँ का इतना कहना था कि उल्लास दत्ता और आयंगर मुस्कराते हुए बैठक में घुस आये।

'बड़ी देर की आप लोगों ने। सोच ही रहे थे कि आप लोग आयें तो खाना लगवाया जाये।'—मुस्कराते हुए भाई साहब बोल उठे।

'फ्लाइट का क्या हुआ, सीटें कन्फर्म हो गई न ?'

'जी पाँच सीटें हैं अपने पास।'—सस्मित आयंगर ने कह दिया।

'ठीक तो है, और यहाँ से कौन-कौन चल रहे है ?'

'मुझे पता नहीं ''......मुख्य मंत्री तो दिल्ली गये हैं, बहुत संभव है, वहीं से सत्ता के उस राजकुमार के साथ ही 'बाई एयर' सीधा वहीं पहुँचें।'

'लेकिन, यहाँ से भी तो काफी लोग होने चाहिए—मंत्री मण्डल के सभी सदस्य भी तो ....।'

'जायेंगे हो'—उल्लास ने जैसे वाक्य पूरा करते हुए कह दिया। 'प्रदेश पार्टी के अध्यक्ष और कार्यकारिणी के सदस्य भी तो चलेंगे न। अच्छा खासा मजमा जमेगा'—कहते ही सभी मर्दों के चेहरों पर उमंग का उजास छा गया।

'लेकिन, भाई साहब की हर जरूरत का पूरा-पूरा ख्याल रखियेगा आप लोग। किसी भी तरह की कोई गफलत न रहने पाये। जी तो हमारा हमारा भी करता है कि हम भी चलें, पर पीछे का काम भी तो देखना है।'

'साधना वहिन, दो हो दिन का काम है, फिर लौट आते हैं न। घबराने की कोई बात ही नहीं। जहाँ मुख्यमंत्री ठहरेंगे, भाई साहब भी तो वहीं ठहराये जायेंगे। फिर हम छाया की तरह साथ हैं ही। मुख्यमंत्री वे दिन इतना जल्दी भूल थोड़े ही जायेंगे जब वे कई महीनों तक भाई साहब के पर्सनल सेक्रेटरी के रूप में, इस राजनीति का अलिफ् बे ते सीखा करते थे, और उनके मंत्री परिषद् में भी एक अदद मंत्री बने थे।'—और आयंगर धीरे से ठहाका लगाकर हँस पड़े।

'.......और उन्हें इस क्षेत्र में भाई साहब के अलावा कौन लाया था? यह ठीक है कि 'आत्मा की आवाज' नाम पर और समाजवाद के नारे के सहारे, सत्ता के इन्हीं राजकुमारों का पल्ला पकड़े, कई अन्य वरिष्ठों के वर्चस्व को अपने पैरों तले रौंद, आज वे प्रदेश के इस सर्वोच्च सिंहासन पर विराज रहे हैं।'

'लेकिन, इसी दाँव-पेच के सहारे, इसी सिंहासन पर और लोग भी तो बैठे थे, भैया मेरे? क्या हश्र हुआ था उनका?' 'हूँ ऽऽ ऊँ, ठीक कहते हो उल्लास। लेकिन जब उनके वह राजकुमार ही इस दुनिया से सिधार गये तो वे फिर किस बलबूते पर इस ठौर टिक पाते?'—विहँसती हुई वे पुतलियाँ नाच उठी।

'अरे, छोड़ो भी इन बातों को.......यह सब तो हमारे इन राजकुमारों की बातें हैं। ये राजकुमार तो हैं, पर जानते नहीं, मंथरा जैसी दासियों तक ने रघुकुल का पासा पलटवा ही दिया था। मेरी तो धारणा-सी बन गई है

:लेकिन यहाँ से भी तो काफी लोग होने चाहिए। मन्त्री मण्डल के सभी सदस्य भी तो ......!'

'जायेंगे ही'— उल्लास ने जैसे वाक्य पूरा करते हुए कह दिया। प्रदेश के सांसद भी सीधा दिल्ली से वहीं पहुँच रहे हैं। प्रदेश पार्टी के अध्यक्ष और कार्यकारिणी के सदस्य भी तो चलेंगे न। अच्छा खासा मजमा जमेगा'— कहते ही सभी मर्दों के चेहरे पर उमंग का उजास छा गया।

'लेकिन, भाईसाहब की हर जरूरत का पूरा पूरा खयाल रखियेगा आप लोग। किसी भी तरह की कोई गफलत न रहने पाये। जी तो हमारा भी करता है कि हम भी चलें, पर पीछे का काम भी तो देखना है।'

'साधना बहिन, दो ही दिन का काम है, फिर लौट आते हैं न। घबराने की कोई बात ही नहीं। जहाँ मुख्यमंत्री ठहरेंगे, भाईसाहब भी तो वहीं ठहराये जायेंगे। फिर हम छाया की तरह साथ हैं ही। क्या मुख्यमंत्री वे दिन इतना जल्दी भूल थोड़े ही जायेंगे, जब वे कई महीनों तक भाईसाहब के पर्सनल सेक्रेटरी के रूप में, इस राजनीति का अलिफ बे ते सीखा करते थे, और उनके मंत्री परिषद में भी एक अदद मंत्री थे'—और आयंगर धीरे से ही ठहाका लगाकर हँस पड़े।

'...... और उन्हें इस क्षेत्र में भाईसाहब के अलावा कौन लाया था? यह ठीक है कि 'आत्मा की आवाज' नाम पर और समाजवाद के नारे के सहारे, मरा के इन्हीं राजकुमारों का पल्ला पकड़े, कई अन्य वरिष्ठों के वर्चस्व को अपने पैरों तले रौंद, आज वे प्रदेश के इस सर्वोच्च सिंहासन पर विराज रहे हैं।'

'लेकिन, इसी दाँवपेच के सहारे इसी सिंहासन पर तो और लोग भी तो बैठे थे, भैय्या मेरे? क्या हश्र हुआ था उनका?' 'हूँ ऽ ऽ ऊं, ठीक कहते हो उल्लास। लेकिन जब उनके वह राजकुमार ही इस दुनिया से सिधार गये तो वे फिर किस बलबूते पर इस ओर टिक पाये?'— बिहँसती हुई वे पुतलियाँ नाच उठीं। 'अरे, छोड़ो भी इन बातों को ...... यह सब तो हमारे इन राजकुमारों की बातें हैं। ये राजकुमार तो हैं, पर जानते नहीं, मथरा जैसी दासियों तक ने रघुकुल का पासा पलटवा ही दिया था। मेरी तो धारणा-सी बन गई है —ऐसा सब आदिकाल से होता आया है, फिर चाहे राम का युग

हो, चाहे हमारा ही। जिस युग पर आज इतना इतरा रहे हैं ""लो, खाना-वाना कब जमेगा विधुजी ? अब क्या देर-दार है, भई !'—कहते ही घंटी झनझनाई तो मेहरिया भी दौड़कर अन्दर आ पहुँची।

'खाना !'

'जी अभी हाल लीजिये !'—वे फिर रसोई घर की ओर लौट गईं। देखते ही देखने सनमाइका लगी उस डाइनिंग टेबुल पर चमचमाती थालियाँ आदि सज गईं। सुचारु ढंग से सामग्री परोस दी गयी तो बड़े इत्मीनान से सभी भोजन करने में व्यस्त हो गये। कुछ समय तक सभी अपने में डूबे खाते रहे। लेकिन इसी बीच विधुजी ने समीप बैठी साधना के कान में फुसफुसाते हुए कहा—'मेरा तो दिल ही न जाने आज क्यों धड़क रहा है ?'

क्यों, क्या बात है ऐसी, भाभीजी ! क्या भाईसाहब कल सवेरे ही तशरीफ ले जा रहे हैं, इसलिए ? —डॉ. साधना ने गौर से उनकी ओर देख लिया। यह सुनते ही विधुजी की वह आशंकित दृष्टि अपनी थाली पर झुक गई। पर, वे बोली कुछ नहीं। तभी तिपाही पर रक्खे फोन की घंटी ट्रन ट्रन कर उठी।

विधुजी तपाक से उठ खड़ी हुई, फोन चोगा उठाते ही पूछा—हाँ, कौन ?""जैन साहब हैं ? कहियेगा""साहब अभी भोजन पर हाँ ऽऽआ "" उन्हीं से ""लीजिए उन्ही से कीजियेगा बात' " कहती हुईं, टेलीफोन वहीं उठा लाईं, और चोगा उसने पति को थमा दिया —'नत्थूसिंह बोल रहे हैं।'

'हूँ, हलो !""मैं, हाँ हाँ मैं ही बोल रहा हूँ, भई " हाँ ऽऽआ, क्या ?"" दो सीटें ? वह तो मुश्किल हैं ही, जैन साहब"" हाँ, हाँ"" पर, किसे 'ड्राप' करें हम ?""हाँऽऽआ""प्रार्थना ?""अरे, ऐसा मत कहिये " मुश्किल, है ही ""देखिये, फिर भी देखूँगा""आप और कौन ? ""बत्राजी भी ?"" और धीमी हँसी की सुरसुराहट के साथ""हाँ भई ! क्यो न हो " चोली दामन का जो साथ है "" फिर हल्का सा ठहाका""मजाक नहीं जज साहब" अच्छा अच्छा तो ठीक सवेरे सात बजे " सात बीस पर तो 'प्लाई' करेगा " न, न, वहीं""हवाई अड्डे के लाउन्ज में ठीक है, ठीक है—'कहते हुए 'खट्' से चोगा फोन पर रख दिया।

'—बड़ी आफत है इस जान को। कमबख्त अब भी हमारी ही जान को अटके हुए हैं। आदतन हम तो मना ही नहीं कर सकते। लेकिन अराजनैतिक

हत्याओं के ये सौदागर, इस देश की ही हत्या करने पर क्यों तुले हुए हैं ?' और निराशा की धुंध उस प्रशान्त दृष्टि को क्षण भर के लिए धुंधला गयी।

'भाई साहब, आपने भी नाहक ही "हाँ" भर ली। मुख्यमंत्री के ये दायें-बायें अपने आप कोई भी इन्तजाम कर ही लेते—हमें अब ऐसों से लेना-देना भी क्या है ?''' ऐसों की तो छाया भी मन को दूषित कर देती है—वकील और वेश्या जब अपनी तिकड़म से किसी ऊँचे पद पर पहुँच जाते हैं तो देश का बंटाढार फिर क्यों न होगा ?'—गंभीर चिन्ता मे डूबी उस वाणी ने आहृत स्वर मे कह दिया।

सभी लोग क्षण भर के उस मौन मे एक दूसरे की ओर देखते रहे। राजन. एस. आयंगर ने तभी समय के उस मौन को तोड़ते हुए कहा—'कोई बात नहीं घबराने की। हम वहाँ गाफिल है। नौकरी छोड़ दी है तो क्या हुआ, देश के इस खुफिया महकमे मे अपना वर्चस्व तो बरकरार ही है।'

--और लोग-बाग बिना कुछ कहे ही भाई साहब की सुरक्षा के सभी प्रबन्ध अपने आप करते रहते है।

भाई साहब !''''मनुष्यता अब भी मरी कहाँ है ? किसी तरह की आशंका बेकार ही है। मैं बताऊँ—जैन और बत्रा अब स्वयं के बिगड़ते हुए हालात से बेखबर हैं, उनकी वह प्रिया दूसरों ने हथिया जो ली है। वह लड़की अब खुद अपनी ही जान पर खेल रही है, और दो चार दिन ही की मेहमान और है। खैर, हम को क्या लेना देना है इससे—हमारी तो वह अपार क्षति अब पूरी होने से ही रही।'—कहते-कहते वह निर्भ्रान्त दृष्टि भी छलछला आई।

और सभी के हृदय करुणा के आवेग से गहगहा उठे। किसी तरह भोजन भी समाप्त हुआ। लोग फिर दीवार से लगी सोफा-चैयर पर आ जमे। लौंग-सुपारी और ताम्बूल का सेवन हो चुका तो आयंगर ने मुस्कुराते हुए कहा—'अब ?'

'हमें भी घर पहुँचा दो न !'—डॉ. साधना ने संकेत किया। 'हूँ, खान भाई किसके, खाना खाकर खिसके न ?'—और सभी धीमे से ठहाका लगाकर हँस पड़े। वातावरण फिर सहज हो आया। आयंगर ने तुरन्त उठते हुए कहा—'भाई साहब, हम ठीक पाँच बजे सबेरे यहीं पहुँच रहे हैं, अच्छा, शुभ रात्रि ?'

ऋता ने उठकर निंदियाते मनीष को गोद में उठा लिया तो सभी चलने को उद्यत हो गये। विधुजी और भाई साहब के साथ वे सभी चलकर बाहर कार के समीप आ पहुँचे।

'वन्दे मातरम्!'— और इसी मीठी ध्वनि को अन्तर्लीन करते हुए, विदा के हाथ अभिवादन में अनायास उठ गये। कार अब उस दूधिया प्रकाश में नहाती तारा नर्सरी को पीछे छोड़कर, सुभाष मार्ग पर दौड़ने लगी है।

दोनों पति-पत्नी कुछ देर तक उसे देखते रहे, फिर उल्लसित मन अन्दर लौट आये।

तीस

पंडित नेहरू का जन्म-दिन और बाल-दिवस का सुरम्य प्रभात। एयर इन्डिया का विमान प्रदेश की राजधानी के हवाई अड्डे से ठीक सात बजकर बीस मिनिट पर, अपने सुडौल डैने पसारे, स्वच्छ आसमान पर उड़ चला। आज न जाने कितने वी. आई. पी. को लिये उड़ा जा रहा है, यह।

और नीचे?

आज प्रदेश का हर विद्यालय अपने बालकों के साथ बाल-दिवस का आयोजन कर रहा है। प्रभात-फेरियों के गीतों भरा प्रभात है, यह।

गुलाब के फूलों की मीठी गंध से विद्यालयों के प्रांगण महक रहे है। प्रार्थनाएँ, गीत, नृत्य-नाट्य और भाषण— और अन्त मे फल और मिठाईयों के वितरण से चाचा नेहरू के हजारों नन्हे-नन्हे भतीजो का मन, आज किसी अजानी आशा और उल्लास से कैसा लहलहा उठा है? बैन्ड की धुनों पर सामूहिक व्यायाम के करतब, आज बड़े आकर्षक लग रहे हैं। लगता है कि जैसे आज का यह वातावरण, मोहक, निश्छल और बेदाग है लेकिन— लेकिन ऐसा सचमुच ही है, कहाँ? यह तो केवल राजधानियों के गुलाब जो हैं तो इतने महक रहे है, आज।

पर, प्रदेश का समूचा ग्राम-संसार हर तरह के अभावों से ग्रस्त हो जी रहा है तो सचमुच, ऐश्वर्य के इन गुलाबों की गंध के गाहक ये गंवई लोग कैसे हो सकते हैं ?

लेकिन जिसका आज जन्मदिन है, उसने कभी एक सुखद स्वप्न भी देखा था—देश में पंचायती राज का स्वप्न। इस प्रदेश की भूमि पर दीप जलाकर उसने उसका उद्‌घाटन भी किया था। आज फिर इसी प्रदेश के उस सुदूर महानगर में पंचायत की वही राजनीति अपना अलग ही जश्न मना रही है। हजारों पंच, सरपंच और जिला परिषदों के प्रधानों के साथ, देश-प्रदेश के सैंकड़ों नेताओं का यह विशाल जमघट भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है। दो-एक विशेष उड़ानों का प्रबन्ध भी एयर इन्डिया को करना पड़ा है।

इसी वक्त हवाई अड्डे पर प्रतीक्षारत अनेक निगाहों ने देखा कि आसमान के पूर्वी छोर से एक यान उड़ता हुआ, शहर पर धीरे-धीरे चक्कर काट रहा है। संकेत मिलते ही वह हवाई पट्टी की ओर कुछ झुका, और घरघराता हुआ उतर कर, कुछ दूर दौड़ते हुए, अपने स्थान पर आकर रुक गया। सीढ़ी लगी तो लोग-बाग अपना बैग वगैरह लिये उतरने लगे। थोड़ी ही देर में आयंगर और उल्लास भी अपने भाई साहब को लिये लाउन्ज से बाहर निकल आये तो लोगों के एक बड़े प्रतीक्षारत हुजूम ने हाथ जोड़कर अपने भूतपूर्व मुख्यमंत्री का अभिवादन किया। तभी एम. पी. ने तपाक से आगे आकर सैल्यूट किया—'पधारिये, कार प्रतीक्षा कर रही है।'

भाई साहब मुस्करा उठे। एस. पी. के कंधे पर धीरे से हाथ रखते हुए कहा—'सावंतसिंहजी, सब आनंद-मंगल है न ? आजकल सुधांशु और रेखा बिटिया क्या कर रही है ?'—उस प्रसन्न दृष्टि ने फिर पूछा।

'बी. ई. इलेक्ट्रोनिक्स के फाइनल में है, सुधांशु। रेखा ने एम. एस-सी. की परीक्षा भौतिक विज्ञान लेकर दी है।'

'बहुत अच्छा, शादी करें तब हमें न भूलियेगा!'— विहँसती दृष्टि उन की ओर मुड़ पड़ी।

'सर ! यह सब आपकी कृपा का फल है।'—कृतज्ञता भाव से वह वाणी कह पड़ी। वे कार के समीप आ पहुँचे तो एस. पी. ने बैठने का अनुरोध करते हुए अगला फाटक खोल दिया। पूल की वह कार सर्किट हाऊस की ओर तुरन्त

रवाना हो गई। बी एस. पी. की जीप भी उनके पीछे पीछे दौड़ पड़ी। पंद्रह मिनिट ही में वे सब सर्किट हाऊस आ पहुँचे। उतरते ही उस भवन के पोर्टिको की दीवार पर सभी की दृष्टि अनायास ही आ टिकी। संगमरमर के पट्ट पर लिखा था—इस भवन का शिलान्यास—सन् 1966, उद्घाटन—सन् 1967 माननीय राज्यपाल और भू.पू. मुख्यमंत्री महोदय के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न।

आयंगर ने उल्लास का हाथ दबाते हुए धीरे से फुसफुसाया —'देखा।'

'देखा भई!'—उल्लास ने दृष्टि चुराते हुए उसी ओर देख लिया। स्वागताधिकारी भी तभी बाहर अगवानी के लिए आ गये। उन्हें अपने स्वागत कक्ष मे ले गये। सोफा चेयर पर बैठते हुए भाईसाहब ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से पूछा 'आप सभी अब तक ·······?'

'जी हाँ, यही हूं।' —संकोच भरी वाणी ने धीरे से कह दिया।

'कोई प्रमोशन ·····नहीं हुआ अब तक? ······· आपके विभाग के निदेशक तो वर्मा साहब ही होंगे?'

'जी हाँ, वे ही —हैं, पर ·······।'

'मैं समझता हूं, गुप्ता साहब! देखिये, कुछ हो सका तो अवश्य करूंगा ही।'

तभी आयंगर ने उत्सुकतावश पूछ लिया —'भाईसाहब को कौनसा चैम्बर 'अलाट' किया गया है, गुप्ता साहब!'

'जी, चैम्बर?' ··· ···जहाँ तक मुझे मालूम है, सर्किट हाउस मे तो कोई नही है। यहाँ तो केवल मुख्यमंत्री महोदय और अन्य मंत्रीगण ही ठहरेंगे। हाँ, एक चैम्बर जज साहब नत्थूसिंह जैन के लिए अवश्य आरक्षित है। वैसे सब पहले ही से 'बुक' है न, सर!'

'हमने तो दस दिन पहले ही भाई साहब के यहाँ आगमन की सूचना भिजवा दी थी न?'

'जी, सर!—वह मालूम था मुझे, और बड़ी कोशिश से मैंने चैम्बर 'बुक' कर दिया था। पर मुख्यमंत्री जी ही का ऐसा आदेश है कि—'और वह दृष्टि मौन हो गई।

'ऐसा क्या आदेश है?'—आयंगर ने पूछ ही लिया।

'कि कोई भी सांसद् यहाँ नहीं ठहराया जाये। उनके लिए गवर्नमेंट गेस्ट हाऊस ही में प्रबंध हो।'''''' मैंने तो सी. एम. साहब से भाई साहब के लिए, फोन कर खास तौर से 'रिक्वेस्ट' की थी, पर, उन्होंने साफ मना ही कर दिया।'—कहते-कहते वह दृष्टि विवश-सी फ़र्श पर बिखर गयी।

'ठीक होता है, गुप्ता साहब! हम अब सांसद् मात्र हैं। आओ, कोई और ठौर खोजें न?'--बड़ी सहजता से कहते हुए वे तुरंत उठ खड़े हो गये। आसपास बैठे सभी सकते में आ गये, वे उठ खड़े हुए।

'सर! · मेरा पूरा आवास आपकी सेवा में है, अवसर दीजिए न कभी?'—सावंतसिंह ने आगे बढ़ते हुए कहा। भाई साहब ने आयंगर और उल्लास की ओर देखा, तो वे मुस्करा उठे।

—'तो ठीक ही है, आज का यह मुबारक दिन हमारे अजीज ठाकुर साहब के यहीं सही—आतिथ्य की सस्कृति और उसकी कुलीनता अब भी जिन्दा है यह, उल्लास।'—वे सभी तुरंत स्वागत कक्ष से बाहर निकल आये। आयगर ने एस. पी. साहब की ओर देखते हुए पूछा—'ठाकुर साहब! वक्त की तब्दीली का रंग देख लिया है न? नत्थूसिहजी जैसों से तो भली-भाँति परिचित हैं न, आप? उनके लिए सर्किट हाउस मे भी जगह है, क्योंकि सी. एम. के दिल में जगह है उनकी। यह सब समय की बलिहारी ही है कि—

उनकी तुरबत पर नही है आज एक भी दीया।

जिनके खू ँ से जले थे चिराग ए वतन!

लेकिन आज तो 'जो शहीदों के कफन बेचा करते थे कभी,'—उनके मकबरे तक इस तरह जगमगा रहे है?'

और अंततः वह कारवाँ एस पी. के बंगले पर आ टिका। नहाये-धोये और नाश्ते से निपट कर तुरंत वे सम्मेलन विशाल और भव्य पाण्डाल में आ पहुँचे। भाई साहब ज्योंही मच पर चढ आये तो उनके हमनवाओं ने दौड़कर उन्हें घेर लिया।

तभी मुख्यमंत्री और उनके सहयोगी सत्ता के राजकुमार की अगवानी में ऊपर चढ़ आये। जय ध्वनि का तुमुल कोलाहल सरजमी को कई बार गूंजा गया। मंच की हिम धवल पृष्ठभूमि की पिछवई पर पं. जवाहरलाल

नेहरू और महात्मा गाँधी के आदम कद चित्र जैसे उस विशाल जन समूह को विस्मय से निहार रहे है।

सत्ता के वे राजकुमार मसनद पर पीठ टिकाये मंच के बीचोंबीच आ बिराजे तो 'वन्देमातरम् गीत' की वह मधुर और प्रेरक स्वर-लहर माइक के माध्यम से दूर-दूर तक संचरित हो उठी। पार्टी के प्रदेशाध्यक्ष तत्काल उठ खड़े हुए, और धीरे-धीरे उन्होंने स्वागत भाषण पढ़ा जिसमें पार्टी, मुख्यमंत्री और सत्ता के इस राजकुमार की भूरी-भूरी प्रशंसा के कुलाबे धरती और आकाश एक करते हुए बाँधे गये।

और फिर तो भाषणों का दौर ही शुरू हो गया। पार्टी के प्रदेशाध्यक्ष की सदारत में सारा कार्यक्रम चल रहा है। मुख्यमंत्री शर्माजी ने आभार विह्वल शब्दों में देर तक सत्ता के राजकुमार के सुयोग्य नेतृत्व और सुदृढ विवेक की प्रशंसा ही करते रहे, और बीच-बीच में तालियों की गड़गड़ाहट का भारी शोरगुल होता रहा।

तभी उन्होंने बड़े विनम्र शब्दों मे सत्ता के उस राजकुमार से, सामने बैठे हुए विशाल जन-समूह के समक्ष सम्मेलन के उद्घाटन के लिए प्रार्थना की। तालियों की गड़गड़ाहट का जैसे ज्वार उफन पड़ा, और कुछ क्षणों तक उनकी जयजयकार ही होती रही। दीप जलाकर गाँधीजी के उस रेशमी खद्दर पर अंकित चित्र को माल्यार्पण किया गया। तब तक जय ध्वनि का ज्वार फिर थम गया तो उनका उद्घाटन भाषण आरंभ हुआ। वक्ता का सुदर्शनीय व्यक्तित्व उसकी आवाज-सा ही प्रभावशाली है। उसने पार्टी के अतीत की प्रेरणास्पद यादो को दोहराते हुए, गाँधी-नेहरू युग की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला, और आज की सत्ता के शासन की मूत्रमयी प्रवृत्तियों और उसकी सफलताओं की विवेचना की, और बड़ी देर तक उनके महत्व पर प्रकाश डालते रहे। गाँधी और नेहरु के सिवाय और नाम उस जबान पर आ ही कैसे सकता था? और इसीलिए उस उपस्थित जन-मानस को ऐसा लग रहा था कि यह सब आगामी चुनाव की केवल भूमिका मात्र है।

वह आवाज माइक पर साफ-साफ कह रही है—'सच ही तो है, आज का यह समय साधारण नहीं। खालिस्तान और पंथ की मुक्ति के ये विस्फोटक आयोजन कैसी विभीषिका पैदा करते रहे हैं। लेकिन हमारी सरकार ने

सद्भाव और सदाशयता के कारण ही उस सुनहरे मन्दिर के उस पवित्र तख़्त का करोड़ों रुपया लगाकर पुनर्निर्माण करवा दिया है।

—यही नहीं, उसका सारा परिसर ग्रंथियों को सौंपकर सेना हटा ली गई है। लेकिन''' लेकिन सरकार की यह विनम्र भावना उसकी कमजोरी नहीं समझी जाना चाहिये!—मैं इसी दिशा में जनता को सावधान करना चाहता हूँ।

हमें किसी भी मजहब, धर्म और विश्वास से कोई बैर नहीं, बशर्ते कि वह देश में विघटनकारी भावना नहीं फैलायें। ऐसे तत्वों को, यह मेरा विशाल देश कभी बर्दाश्त नहीं करेगा'—कहते ही फिर तालियों की तुमुल गड़गड़ाहट से पंडाल प्रकम्पित हो गया। उन्होंने फिर कहना शुरू किया—'और यह असम, यह मिजोरम और नागालैंड आज भी इन देशी-विदेशी हथकण्डों के शिकार जो बने हुए हैं। उन्होंने एक-एक कर सभी समस्याओं पर बड़ी मुस्तैदी से रोशनी डाली। विपक्षियों की कथित और मौकापरस्त एकता की धज्जियाँ उड़ाते हुए पैने प्रहार किये, और अन्त मे जंगखोर पाकिस्तान के शासकों के खतरनाक इरादों का पर्दाफाश करते हुए, उनकी पार्टी की सत्ता को भरपूर समर्थन देने की अपील की।

'जयहिन्द' के उद्घोष के साथ भाषण समाप्त हुआ तो वह विशाल पण्डाल तालियों की गड़गड़ाहट से देर तक थरथराता रहा। तभी न जाने क्या सोचकर प्रदेशाध्यक्ष उठकर माइक पर आये। बोले—'अब आपके समक्ष एक ऐसा व्यक्ति आ रहा है, जो जन-जन मे अत्यंत प्रिय रहा है, और जिसे हम 'भाई साहब' के नाम से बड़े आत्मीय भाव से पहचानते है।''''' जिन्होंने इस देश में सर्व प्रथम जागीरदारी प्रथा को इस प्रदेश से विदा किया, और पंचायती राज इसी तरह। इसी देश की धरती पर पंडितजी के कर-कमलों द्वारा दीप प्रज्वलित करवा कर, उसका सूत्रपात किया। मैं उन्हीं को पुकार रहा हूँ—भाई साहब!'

—एक मुस्कराता हुआ व्यक्तित्व धीरे से उठकर माइक पर आ, उसे थाम लिया तो उस विशाल उपस्थित जन-समाज ने तालियों की गड़गड़ाहट के बीच, कई बार जिन्दाबाद के नारे लगाये। वह वाणी तो हो गई। आभार से शीश सहज ही झुक गया, आँखें नम हो गई।

तो धीरे-धीरे बोलना आरंभ किया—'आज मैं सबसे पहले आजादी के उस दीवाने भगतसिंह के साथ, सेना के उन जवानों को भी श्रद्धाञ्जली अर्पित करता हूँ, जो अपने देश की एकता के लिए, उस दिन स्वर्ण मंदिर में शहीद हो गये।

—सुनते ही भारी हर्ष-ध्वनि के साथ तालियों की जोरदार गड़गड़ाहट गूंज उठी। वक्ता का हृदय भावावेग से उद्वेलित हो उठा, वह पीड़ा से व्यथित हो उठा तो उसने अध्यक्ष की ओर हताश और आहत दृष्टि से देख लिया। लपककर माइक थाम लिया। 'पानी ! पानी !' की पीड़ा भरी आवाज के साथ 'धम्म' से वह नीचे बैठ गया और तड़पते हुए अचेत हो गया। आयंगर और उल्लास लपक कर मंच पर आ गये। जरा देर के लिए वहाँ हड़कम्प मच गयी। साथी लोग भाई साहब को गोद में भर कर मंच से नीचे उतार लाये। एम्बुलेंस बाहर खड़ा ही था, संकेत पाते ही डॉक्टरों के साथ आ गयी। प्रारंभिक उपचार के तुरंत बाद उन्हें राजकीय चिकित्सालय ले आया गया, जहाँ 'इन्टेंजिव केअर' के चैम्बर में ला सुलाया।

सम्मेलन इसी भगदड़ के बीच समाप्त-सा हो गया। सैकड़ों लोग उठ-उठकर हॉस्पिटल की ओर भागने लगे। अध्यक्ष ने समय का रुख पहचान, माइक पर आकर मुख्य अतिथि का आभार प्रदर्शन करते हुए, समाप्ति की घोषणा कर दी। क्षण-क्षण ट्रंक-कॉलों का तांता ही लग गया। बम्बई, वाराणसी, कलकत्ता—हृदय विशेषज्ञों की प्रतीक्षा दम साधे की जा रही है।

पहले ही ट्रंक ने तारा नर्सरी के कण-कण को जैसे झकझोर दिया। डॉ. साधना और ऋता ने तुरंत पहुँचकर बुरी तरह बिसूरती विधुजी और अम्माजी को ढाढस बँधाया। वे कहती रहीं कि माँ ने पहले ही कह दिया था कि वे उन्हें अपने ही साथ ले जा रही हैं ...... मैं तो समझी थी साधना कि वे उन्हें उस सम्मेलन में लिये जा रही हैं। यदि मैं ऐसा जानती तो उन्हें वहाँ कभी भेजती ही नहीं।'—कहते-कहते सिसकती हुई वे फिर अचेत हो गईं। साधना और ऋता के तो होश ही उड़ गये थे। लेकिन किसी कदर अपने को सम्हाले वे उन्हें फिर चेत में लाने का प्रयत्न कर रही थीं। काँपती हुई अम्मा निरंतर रो रही हैं—हे भगवान् ! इन बूढ़ी आँखों के इकलौते सितारे को उनके बुझने के पहले ही न छीन लेना ...... उसकी जगह मुझे ही उठा ले ......मेरे प्रभु !'—फफकती ही रही हैं वे। ऋता और साधना की जान

तो आज सांसत ही में है। काफी दौड़-भाग के बाद जब विधुजी की पलकें फिर उगड़ीं तो उनकी जान में जान आई। चेतना लौट आई तो पूछा—'कोई खबर ?'

'आई है, भाई साहब होश में हैं...... मेरी प्यारी भाभी ! चिन्ता न करो अब—सब ठीक ही होगा। बनारस और बम्बई के विख्यात डॉक्टर उनकी देखरेख और चिकित्सा में लगे हैं। कल तक सब फिर सामान्य हो जायेगा...... और... ...और भाई साहब जल्दी ही घर लौट आयेंगे।'

'सच ?......... मेरी ऋतु, सच ?'– छलछलाती दृष्टि से देखती हुई विधुजी उससे लिपट गयी। फफक-फफक कर रोती रहीं।

सच, मेरी भाभीजी, सच है यह। आयंगर भैया का ट्रंक अभी हाल आया था, कह रहे थे कि बी. पी., सुगर आदि ठीक हैं, केवल आराम की जरूरत है।'—साधना ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कह दिया। अम्माजी को भी ढांढस बधाते हुए यही बात कही गयी। फिर दोनों—सास और बहू को जैसे विश्वास ही नहीं हो पा रहा है। बड़ी देर तक अश्रुलाप करती रही। दिन बड़ी ही परेशानियों के साथ धीरे-धीरे बीत गया तो रात आ ही गई। रात अमावस की—वैसे भी घनी अंधेरी होती है, लेकिन आज वह और भी घनीभूत लग रही है। संध्या हुई तो विधुजी ने उठकर सजलाई दृष्टि से माँ तारा के आगे सिर रखकर आँचल पसारा, और अपने सुहाग की भीख अपनी ही माँ से बराबर मांगती रही। हृदय भर आया तो मुँह छूट गया और वे उनके आगे फूट-फूटकर रोने लगी। साधना और ऋता ने इस भारतीय नारी की ऐसी करुणा विगलित अवस्था को देखा तो वे दोनों भी रोने लगी।

तभी मेहरिया ने आरती सजाकर रोती हुई विधुजी के हाथों में थमा दी। लेकिन वे काँपकँपाते हाथ जैसे उसे आज थाम ही नहीं पा रहे हैं। बड़ी मुश्किल से माँ तारा के उस भव्य विग्रह के चारो ओर एक बार वह आरती घूमती ही थी कि हठात बुज गयी। न हवा ही का उसे झोंका लगा, न और कुछ। साधना ने तुरन्त ही तूली से उसे फिर जला दिया तो वह सातवीं आवृति तक जलती ही रही।

उस सांध्यारती के दर्शन करके विधुजी के साथ ऋतू—और साधना बैठक से लौट रही थी कि टेलीफोन की घंटी ट्रिन ट्रिन ट्रिन कर उठी। साधना ने

लपक कर रिसीवर उठा लिया —'हलो ! हाँ, मैं साधना ...... आप उल्लास भाई ? ...... इतनी जल्दी भी ......हाँ ......है ? ...... ऐसा है ? ...... अच्छा ! हवाई अड्डे पर अभी हाल पहुँच रहे हैं ...... अभी हाल ...... !' ...... झट से चोंगा रखते ही ये तीनों उठ खड़ी हुईं। साधना ने विधुजी को देखा तो लगा कि करुणा स्वयं साकार हो सामने ही खड़ी है। उनसे रहा ही न गया और उनसे लिपट लिपटकर रोने लगी।

लेकिन आश्चर्य कि उन बिसुरती आँखों के आँसू तत्काल रुक गये। न वे चीखीं, न चिल्लाईं ही। धीरे से फुसफुसा भर दिया—'आरती तो बुझ ही गई न, मेरी माँ ! ...... कैसी काल रात्रि है माँ, कि तेरी आरती भी आज बुझ गई है !'

वे साहस के साथ तत्काल कह उठीं —'अब क्या लिपट रही हो—इस अभागी देह से —मेरी बहन ? उठो न भई, अब ले न आयें उसे —चाहे वह बुझी हुई ही क्यों न हो।'

वे सब तत्काल बाहर निकल आईं। उनकी कार अब हवाई अड्डे की ओर उस बुझी हुई आरती के लिए— बेतहाशा भगी जा रही है।

△△